सचित्र

संक्षिप्त रामायण

अर्थात्

प्रयाग के इंडियन प्रेस में प्रकाशित

गोस्वामी तुलसीदास कृत

रामचरितमानस का

संक्षिप्त संस्करण

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

प्रथम बार

१९२०

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at
the Indian Press, Ld., Allahabad.

सूची

चित्र-सूची

प्रस्तावना

भारतवर्ष की भाषाएँ मुख्य पाँच भागों में विभक्त की जा सकती हैं—आर्य्य, द्रविड़, मुंडा, मानखमेर और तिब्बती चीनी।

यदि हम प्राचीनता के ध्यान से भाषाओं का परस्पर क्रम स्थिर करें तो हमको सब से पहला स्थान मुंडा * भाषाओं को देना पड़ेगा, परंतु आर्य्य भाषाओं का भारतवर्ष की सभ्यता पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है, और उनके बोलनेवालों की संख्या सबसे अधिक † है तथा उनका साहित्य भी सर्वोत्कृष्ट है। इसलिये हमें सबसे पहला स्थान उन्हीं को देना पड़ता है।

आर्य्य लोगों का आदि स्थान कहाँ था इसके विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कुछ लोगों का कहना है कि वे काकेशस और हिंदूकुश पहाड़ों पर रहते थे। दूसरे कहते हैं उनका आदि स्थान उत्तर पश्चिम योरप में था। तीसरे कहते हैं कि वे आरमिनिया में आकसस और ज़रकसीज़ नदियों के आस पास रहते थे। इधर जो नए अनुसंधान हुए हैं उनसे यह सिद्ध होता है कि वे एशिया और योरप के उन मध्यवर्ती मैदानों में, जो रूस के दक्षिण में हैं, रहते थे।

यहाँ वे भेड़-बकरियाँ चराते और खेती करते थे। यहाँ से वे पूर्व

---

* मुंडा भाषाओं का मुख्य स्थान छोटा नागपुर है। सन् १९११ की मनुष्य-गणना के अनुसार इन भाषाओं के बोलनेवाले लगभग १३१००० हैं जो बंगाल, उड़ीसा, मद्रास, मध्य प्रांत और बिहार के उत्तर में पाए जाते हैं।

† सन् १९११ की मनुष्य-गणना के अनुसार इनकी संख्या २१९७२५००० है।

और पश्चिम की ओर फैले। जो पूर्व की ओर आए उन्हीं से हमारा संबंध है। वे पहले पहल आक्सस और ज़रकसीज़ नदियों के किनारे आकर बसे, अतएव हम यह कह सकते हैं कि उनका प्रथम निवास-स्थान खीवा के शाद्वल में था, यहां से उन नदियों के किनारे उनके उद्गम की ओर बढ़ते बढ़ते वे खोकन और बदख़शाँ की ऊँची भूमि में आ बसे। यहां तक उनमें फूट न पड़ी। वे मिले जुले रहे। पर यहां से उनके दो भाग हो गए——एक तो फ़ारस की ओर गया और दूसरा काबुल नदी की उपत्यका में होता हुआ भारतवर्ष में आ बसा।

जो लोग फारस की ओर गए उनकी भाषा में क्रम क्रम से परिवर्तन होता गया और अंत में वह ईरानी भाषा के नाम से प्रख्यात हुई। जो भारतवर्ष में आए उनकी भाषा ने आर्य्य भाषा का नाम ग्रहण किया।

भाषा उन निर्धारित वाक्-चिह्नों का नाम है जिनके द्वारा मनुष्य अपने मनोगत भावों को एक दूसरे पर प्रकट कर सकता है। जल-वायु और प्रकृति के प्रभाव तथा अन्य-भाषा-भाषी लोगों के मेल-मिलाप से भाषा का रूप क्रम क्रम से बदलता रहता है और समय पाकर वह उस स्थिरता को ग्रहण करता है जिसके द्वारा उसका एक निश्चित रूप माना जाता है। पर फिर भी यदि हम एक ही उद्गम से निकली हुई एक नदी की दो शाखाओं को उनके स्रोत की ओर मिलाते चले जाँय तो अंत में हमें उनकी समानोत्पत्ति का निश्चय हो जायगा।

यही अवस्था ईरानी और आर्य्य भाषाओं की भी है।

अस्तु—विद्वानों का मत है कि जो आर्य्य लोग पश्चिम की ओर से काबुल नदी की उपत्यका के मार्ग द्वारा भारतवर्ष में आए वे एक ही बेर यहां नहीं आ बसे वरन कई टोलियों में धीरे धीरे आए। ज्यों

ज्यों वे आगे बढ़ते गए त्यों त्यों उनकी रहन सहन तथा भाषा में धीरे धीरे परिवर्तन होता गया और यही कारण है कि हम आज भारतवर्ष के आर्य्य लोगों को भिन्न भिन्न देश-भाषाओं को बोलते हुए पाते हैं।

विद्वानों का मत है कि जब आर्य्य लोग कई शताब्दियों में पंजाब में पहुँचे उस समय उनकी भाषा का रूप आसुरी से बदल कर वैदिक संस्कृत हो गया था, जिसमें ऋग्वेद के प्राचीनतम भाग निर्माण हुए हैं। पंजाब के आदिम निवासियों के संसर्ग से इस पुरानी संस्कृत में उनकी भाषा का मेल बढ़ने लगा।

यह उन प्राचीन आर्य्यों को सह्य न हुआ और उन्होंने व्याकरण के नियमों से परिवेष्टित कर अपनी भाषा की रक्षा करनी चाही। धीरे धीरे ये नियम इतने जटिल और संकुचित हो गए कि इनसे संस्कृत भाषा के भावी विकास में बाधा उपस्थित होने लगी। यह बाधा समय पाकर यहाँ तक बढ़ी कि अंत में संस्कृत भाषा का विकास एक प्रकार से रुक गया और वह जहाँ की तहाँ स्थिर रह गई।

प्रकृति का यह नियम है कि किसी की वृद्धि तभी तक होती है जब तक उसके विकास की सामग्री उपस्थित रहे। जहाँ उसमें बाधा पड़ी कि विकास बंद हुआ। जब तक संस्कृत स्वच्छंद रही और उसे हाथ पैर हिलाने का अवसर मिलता रहा, वह फलती फूलती रही। जहाँ इस स्वच्छंदता में बाधा उपस्थित की गई और उसके स्वतंत्र जीवन की सीमाएँ निर्धारित हुईं कि उसका फलना फूलना बंद हो गया। परंतु इस प्रकार व्याकरण के नियमों से परिवेष्टित होकर संस्कृत ने अपना पूर्व पवित्र रूप स्थिर रक्खा और वह आज तक अपने संस्कृत (संस्कारयुक्त) रूप में वर्तमान है।

यद्यपि प्राचीन आर्य्य लोग अपने उद्योग में एक प्रकार से सफल

हुए पर वे प्राचीन प्राकृत के स्वाभाविक प्रवाह को न रोक सके। प्राकृत तो संस्कृत में बिना संस्कार के न घुस सकी, पर संस्कृत प्राकृत में घुस गई। संस्कृत की उन्नति रुक गई, पर प्राकृत दिनों दिन उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होने लगी। काल पाकर वह जन-साधारण के बोल चाल की भाषा हो गई। ज्यों ज्यों यह प्राकृत आगे बढ़ती गई और देश के भिन्न भिन्न भागों में इसका साम्राज्य स्थापित होता गया त्यों त्यों उन उन भागों की प्राकृतिक अवस्था के कारण उसमें परिवर्तन होता गया और वह समय पाकर मागधी, सौरसेनी, महाराष्ट्री आदि कई रूपों और नामों से प्रख्यात हुई।

व्रजभाषा इसी सौरसेनी प्राकृत का रूपांतर है जिससे हमारी आधुनिक हिंदी उत्पन्न हुई। हिंदी पद्य दो प्रकार की बोलियों में विशेष कर लिखा गया है—व्रजभाषा और अवधी, बुँदेलखंडी दोनों का मिश्रण सी जान पड़ती है। व्रजभाषा तो सौरसेनी से जनमी और अवधी की उत्पत्ति सौरसेनी तथा मागधी के संयोग से हुई।

हिंदी का उत्पत्ति-काल ८०० ईसवी के लगभग माना जाता है। प्राकृत का अंतिम व्याकरण (हेमचंद कृत) सन् ११५० ई० के लगभग रचा गया। शिवसिंह-सरोज के अनुसार हिंदी का आदि-कवि पुष्प था, पर न तो उसके किसी ग्रंथ का कहीं पता लगता है और न उसकी भाषा का नमूना ही कहीं देखने में आता है। दूसरा ग्रंथ खुमानरासो है, पर वह भी अपने प्राचीन रूप में कहीं नहीं मिलता। तीसरा ग्रंथ जिसका पता चलता है और जो हमें प्राप्य है वह कविचंद कृत पृथ्वीराजरासो है। यद्यपि इस समय जो हस्तलिखित प्रतियाँ इसकी मिलती हैं वे क्षेपकों से भरी हुई हैं तथापि इसमें संदेह नहीं कि यह ग्रंथ बारहवीं शताब्दी में पहले पहल रचा

गया था। चंद ने अपने ग्रंथ में जो पूर्व-कवियों की वंदना की है उसमें अंतिम नाम जयदेव का (जिन्ह कीन्ह गित्त गोविंद गायं) है जो बारहवीं शताब्दी में वर्तमान थे। अतएव हिंदी भाषा का जो रूप पृथ्वीराजरासो में मिलता है वह बारहवीं शताब्दी का है और वह ऐसा है जिससे यह अनुमान होता है कि उस भाषा की उत्पत्ति हुए बहुत काल बीत चुका हो। किसी भाषा की उत्पत्ति सहसा नहीं हो जाती। उसका रूपांतर क्रम क्रम से होता है। यही अवस्था प्राकृत से क्रमशः बदल कर हिंदी हो जाने की है। इस क्रमशः विकास या रूप-परिवर्तन में कई शताब्दियों का समय लग जाता है तब कहीं परिवर्तित भाषा स्वतंत्र रूप धारण करती है। अतएव हिंदी की उत्पत्ति का समय आठवीं शताब्दी के लगभग मानना पड़ता है।

स्थूल रूप से हम हिंदी-साहित्य के इतिहास को पांच भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(१) उत्पत्तिकाल—८०० ई० से १२०० ई० तक
(२) प्रारंभिक काल—१२०० ई० से १५०० ई० तक
(३) प्रौढ़ काल—१५०० ई० से १७०० ई० तक
(४) उत्तर काल—१७०० ई० से १८५० ई० तक
(५) वर्तमान काल—१८५० ई० से १९२० ई० तक

उत्पत्तिकाल के कवियों में चंद, जल्ह और जगनिक मुख्य हैं। प्रारंभिक काल के कवियों में अमीर खुसरो, गोरखनाथ, कबीरदास, नानक और वल्लभाचार्य प्रधान हैं। प्रौढ़ काल में अनेक अच्छे अच्छे कवि हुए, जिनके कारण हिंदी का प्राचीन साहित्य अनेक रत्नों से परिपूर्ण हुआ। इस काल के मुख्य कवियों में ये हैं—सूरदास, तुलसीदास, गंग, तानसेन, रहीम, रसखान, केशवदास, नाभादास,

सुंदरदास, सेनापति, विहारी, भूषण, मतिराम, देव, लाल आदि। उत्तर काल के कवियों में ठाकुर, दूलह, बेनी, पद्माकर, सरदार और द्विज आदि हैं। इसी काल में हिंदी गद्य परिमार्जित रूप में प्रचलित हुआ जिसके लेखकों में लल्लूलाल, सदल मिश्र और राजा लक्ष्मणसिंह आदि प्रधान हैं। आधुनिक काल के लेखकों और कवियों में भारतेंदु हरिश्चंद्र सबसे प्रधान हैं। यदि हम इस काल को हरिश्चंद्र-काल कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी। वास्तव में इन्हीं के प्रदर्शित पथ पर चल कर हिंदी उन्नति कर रही है और उसमें नित्य नए ग्रंथ-रत्नों का आविर्भाव हो रहा है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि हिंदी-साहित्य के इतिहास का १५०० से १७०० ई० तक का समय बड़ा ही विचित्र हुआ है। इन शताब्दियों में ही हिंदी ने उन कवि-रत्नों को उत्पन्न किया था जिनके कारण उसका नाम चिरस्थायी हुआ है और वह देश-भाषाओं में ऊँचे आसन पर विराजने की अधिकारिणी हुई है। यदि हम समस्त भूमंडल के इतिहास पर ध्यान देते हैं तो यह विदित होता है कि इसी समय में अनेक देशों ने अद्भुत उन्नति की है और ऐसे ऐसे लोगों को उत्पन्न किया है जो अपने अपने देशों के इतिहास पर अपनी अपनी छाप छोड़ गए हैं। यह समय भूमंडल में एक विचित्र, चिरस्थायी और उपकारी परिवर्तन करने में समर्थ हुआ है। भारतवर्ष में यह समय अकबर के राजत्वकाल से मिलता है। जो उन्नति हिंदी इस काल में कर सकी है वह अतुलनीय है। इसके कई कारण हैं जिनमें से मुख्य मुख्य का उल्लेख नीचे किया जाता है—

(१) इन दिनों हिंदी के मुख्य क्रीड़ाक्षेत्र में शांति का अटल राज्य स्थापित रहना।

(२) अकबर तथा उसके दर्बारियों का हिंदी के कवियों का आदर-सत्कार करना और स्वयं हिंदी कविता करने में अनुराग दिखाना।

(३) अकबर की राजधानी का हिंदी के केंद्रस्थल व्रजमंडल. में होना।

(४) वल्लभीय और रामानुज संप्रदाय का इन दिनों जोर पकड़ना और कृष्ण तथा राम की भक्ति का विशेष प्रवाह होना।

(५) भाषा का प्रौढ़ तथा शक्तिसंपन्न होना।

(६) उन्नति और अभ्युदय की एक प्रबल लहर का भूमंडल में व्याप्त होना।

ये ही कारण हैं जो हिंदी की उन्नति के सहायक तथा मार्गदर्शक हुए हैं। इस काल में सबसे प्रधान कवि गोस्वामी तुलसीदासजी हुए हैं। जितना प्रचार अब तक तुलसीदासजी के 'रामचरितमानस' का भारतवर्ष के उत्तर खंड में बना हुआ है उतना और किसी ग्रंथ का कहीं भी आज तक नहीं हुआ। कहते हैं कि संसार में जितना प्रचार इंजील (बाइबिल) का है उतना और किसी ग्रंथ का नहीं। यह हो सकता है, पर तुलसीदासजी की रामायण का प्रचार भारवर्ष में अपेक्षाकृत यदि अधिक नहीं तो कम भी नहीं है। क्या राजा महाराजा, सेठ साहूकार, दंडी, मुनि, साधु और क्या दीन हीन साधारण जन-समुदाय सब में उनके मानस का पूर्ण प्रचार है। बड़े बड़े विद्वान् से लेकर निरक्षर भट्टाचार्य तक उनके मानस से अपने मानस की तृप्ति करते और अपनी अपनी विद्या-बुद्धि के अनुसार उसका रसास्वादन कर अपने को परम कृतकृत्य मानते हैं। इस ग्रंथ-रत्न ने भारतवर्ष और विशेष कर उसके उत्तर भाग का बड़ा उपकार

भी किया है। रीति, नीति, आचरण, व्यवहार सब बातों में मानों तुलसीदास ही हिंदू प्रजा मात्र के पथप्रदर्शक हैं। प्रत्येक विषय में उनकी चौपाइयाँ उद्धृत की जाती हैं और जन-साधारण के लिये धर्म-शास्त्र का काम देती हैं। न जाने इस ग्रंथ ने कितनों को डूबते से बचाया, कितनों को कुमार्ग पर जाने से रोका, कितनों के निराशामय जीवन में आशा का संचार किया, कितनों को घोर पाप से बचा कर पुण्य का संचय करने में लगाया और कितनों को धर्मपथ पर डगमगाते चलने में सहारा देकर सम्हाला। कविता की दृष्टि से देखा जाय तो भी तुलसीदासजी का 'रामचरितमानस' उपमाओं और रूपकों का मानों भांडार है। चरित्र-चित्रण में भी वह बहुत बढ़ा चढ़ा है। परंतु क्या कारण है कि यह मानस ऐसे आदरणीय और श्लाघनीय आसन पर आसीन हो सका ? सूरदास की कविता मधुरता में कम नहीं, केशवदास में पांडित्य की न्यूनता नहीं, बिहारी का अर्थ-गौरव और कहीं मिलता नहीं। फिर क्या कारण है कि तुलसीदास के सम्मुख इन कवियों की उपेक्षा की जाती है। कुछ लोग कहते हैं कि तुलसीदास में अनेक गुणों का समावेश है जो और कवियों में नहीं पाया जाता। इसी से उनकी चाह अधिक है। पर जन-साधारण तो इन गुणों की तुलना कर नहीं सकते। मेरी समझ में तुलसीदास की सर्व-प्रियता और मनोहरता का मुख्य कारण उनका चरित्र-चित्रण और मानवीय मनोविकारों का स्पष्टीकरण है। इन दोनों बातों में वे इस पृथ्वी के जीवधारियों को नहीं भूलते। उनके पात्र स्वर्ग के निवासी नहीं, पृथ्वी से असंपृक्त नहीं। उनके कार्य, उनके चरित्र, उनकी भावनाएँ, उनकी वासनाएँ, उनके विचार, उनका व्यवहार सब मानवीय हैं। यही कारण है कि वे मनुष्यों के मन में चुभ जाते, उन्हें प्रिय लगते और उन

पर अपना प्रभाव डालते हैं। कभी कभी यह देखा जाता है कि लेखक या कवि सर्वप्रियता प्राप्त करने के लिये अपने ऊँचे सिद्धांत से गिर जाता है, पाठकों में कुरुचि उत्पन्न करता और उनकी रक्षा करने की अपेक्षा उन्हें और भी गढ़े में ढकेल देता है। पर तुलसीदास जी अपने सिद्धांत पर सदा अटल रहते हैं, वे कहीं आगा पीछा नहीं करते। सदा सुरुचि उत्पन्न करते, सदुपदेश देते और सन्मार्ग पर लगाते हैं। यह कृतकार्थता कम नहीं। इसके लिये कोई भी गौरवान्वित हो सकता है। फिर तुलसीदास जी से महात्मा कवि और देशानुरागी का कहना ही क्या है! अस्तु! अब हम तुलसीदास जी की जीवन-संबंधिनी घटनाओं का उल्लेख करेंगे।

भाषा के कवि प्रायः लोभवश अपना और अपने आश्रयदाता का वृत्तांत अपने ग्रंथ में लिखा करते थे, परंतु गोसाईं जी ने मनुष्यों का चरित्र न लिखने का पण किया था; इसलिये उन्हों ने अपना कुछ भी वृत्तांत नहीं लिखा। कहीं कहीं जो अपने चरित्र का आभास मात्र उन्होंने दिया भी है तो वह केवल अपनी दीनता और हीनता दिखलाने के लिये दिया है। किसी किसी ग्रंथ का समय भी उन्होंने लिख दिया है। इसलिये उनका चरित्र वर्णन करने के लिये दूसरे ग्रंथों और किंवदंतियों का आश्रय लेना पड़ता है। सब से प्रामाणिक वृत्तांत बतलानेवाला ग्रंथ वेणीमाधवदास कृत गोसाईं-चरित्र है, जिसका उल्लेख बाबू शिवसिंह सेंगर ने शिवसिंहसरोज में किया है। कवि वेणीमाधवदास पसकाग्राम-निवासी थे और गोसाईं जी के साथ सदा रहते थे। परंतु खेद का विषय है कि न तो अब वह ग्रंथ कहीं मिलता है और न शिवसिंहसरोजकार ने उसका सारांश ही अपने ग्रंथ में लिखा है। अस्तु, उसकी आशा छोड़नी पड़ती है।

दूसरा ग्रंथ नाभाजी का "भक्तमाल" है। यह बात प्रसिद्ध है कि नाभाजी से और गोसाईं जी से वृंदावन में भेंट हुई थी। नाभाजी वैरागी थे और तुलसीदास जी स्मार्त्त वैष्णव, खाने पीने में संयम रखनेवाले थे, इसलिये पहले दोनों में न बनी: पीछे से तुलसीदास के विनीत स्वभाव को देख नाभाजी बहुत प्रसन्न हुए। अतः उनका लिखना भी बहुत कुछ ठीक हो सकता था, परंतु उन्होंने चरित्र कुछ भी न लिख कर केवल गोसाईं जी की प्रशंसा में एक छप्पय लिख दिया है।

इस छप्पय से गोसाईंजी के विषय में कुछ भी पता नहीं चलता। भक्तमाल में उसके बनने का कोई समय नहीं दिया है, परंतु अनुमान से यह जान पड़ता है कि यह ग्रंथ संवत् १६४२ के पीछे और संवत् १६८० के पहले बना, क्योंकि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के पुत्र गोस्वामी गिरिधर जी का वर्णन उसमें वर्तमान क्रिया में किया है। गिरिधर जी ने श्रीनाथ जी की गद्दी की टिकैती अपने पिता के परमधाम पधारने पर संवत् १६४२ में पाई थी। इधर गोसाईं तुलसीदास जी का भी वर्त्तमान रहना जान पड़ता है, क्योंकि "रामचरणरसमत्त रहत अहनिसि व्रतधारी" इस पद से गोसाईं जी के जीते रहते ही भक्तमाल का बनना सिद्ध होता है। फिर यह प्रसिद्ध ही है कि गोसाईंजी का परलोक संवत् १६८० में हुआ। अतएव भक्तमाल के दिए हुए पद से केवल यह सिद्ध होता है कि भक्तमाल के बनने के समय (संवत् १६४२-१६८०) तुलसीदासजी वर्तमान थे।

तीसरा ग्रंथ भक्तमाल पर प्रियादास जी की टीका है। प्रियादासजी ने संवत् १७६९ में यह टीका नाभाजी की आज्ञा से बनाई थी, और जो सब चरित्र उन्होंने भक्त महात्माओं के मुख से सुने थे उन्हें

उन्होंने विस्तार के साथ लिखा है। प्रियादास जी ने गोसाईं जी का कुछ चरित्र लिखा है।

प्रियादास जी की टीका के आधार पर राजा प्रतापसिंह ने अपने "भक्तकल्पद्रुम" और महाराज विश्वनाथसिंह ने अपने "भक्तमाल" में गोस्वामी जी के चरित्र लिखे हैं। इनमें जो बातें विशेष हैं वे यथास्थान लिख दी गई हैं। डाक्टर ग्रिअर्सन ने गोस्वामीजी के विषय में जो नोट्स इंडियन ऐंटीकेरी में छपवाए हैं उनसे भी अनेक घटनाओं का पता लगता है। इनका भी यथास्थान समावेश किया गया है।

मर्य्यादा पत्रिका की ज्येष्ठ १९६९ की संख्या में श्रीयुत इंद्रदेव-नारायणजी ने हिंदी-नवरत्न पर अपने विचार प्रकट करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवन-संबंध में अनेक बातें ऐसी कही हैं जो अब तक की निर्धारित बातों में बहुत उलट-फेर कर देती हैं। इस लेख में गोस्वामी तुलसीदास जी के एक नवीन "चरित" का वृत्तांत लिखा है और उसके उद्धरण भी दिए गए हैं। इस लेख में लिखा है—

"गोस्वामी जी का जीवनचरित उनके शिष्य महानुभाव महात्मा रघुवरदासजी ने लिखा है। इस ग्रंथ का नाम "तुलसीचरित्र" है। यह बड़ा ही बृहद् ग्रंथ है। इसके मुख्य चार खंड हैं--(१) अवध, (२) काशी, (३) नर्मदा और (४) मथुरा; इनमें भी अनेक उपखंड हैं। इस ग्रंथ की संख्या इस प्रकार लिखी हुई है—"चौ०—एक लाख तैंतीस हज़ारा, नौसै बासठ छंद उदारा"। यह ग्रंथ महाभारत से कम नहीं है। इसमें गोस्वामी जी के जीवनचरित-विषयक मुख्य मुख्य वृत्तांत नित्य प्रति के लिखे हुए हैं। इसकी कविता अत्यंत मधुर, सरल और मनोरंजक है। यह कहने में अत्युक्ति नहीं होगी कि गोस्वामी जी के प्रिय शिष्य महात्मा रघुवरदास जी विरचित इस आदरणीय ग्रंथ की कविता

श्रीरामचरितमानस के टक्कर की है और यह "तुलसीचरित" बड़े महत्त्व का ग्रंथ है। इससे प्राचीन समय की सभी बातों का विशेष परिज्ञान होता है। इस माननीय बृहद् ग्रंथ के 'अवध-खंड' में लिखा है कि जब श्रीगोस्वामी जी घर से विरक्त होकर निकले तो रास्ते में एक रघुनाथ नामक पंडित से भेंट हुई और गोस्वामी जी ने उनसे अपना सब वृत्तांत कहा।"

इस वृत्तांत का सारांश यह है कि सरयू नदी के उत्तर भागस्थ सरवार देश में मझौली से तेईस कोस पर कसेयां ग्राम में गोस्वामी के प्रपितामह परशुराम मिश्र का जन्मस्थान था और यहीं के वे निवासी थे। एक बार वे तीर्थयात्रा के लिये घर से निकले और भ्रमण करते हुए चित्र-कूट में पहुँचे, वहाँ हनुमानजी ने स्वप्न में आदेश दिया कि तुम राजा-पुर में निवास करो, तुम्हारी चौथी पीढ़ी में एक तपोनिधि मुनि का जन्म होगा। इस आदेश को पाकर परशुराम मिश्र सीतापुर में उस प्रांत के राजा के यहाँ गए और उन्होंने हनुमानजी की आज्ञा को याथातथ्य राजा से कह कर राजापुर में निवास करने की इच्छा प्रकट की। राजा इनको अत्यंत श्रेष्ठ विद्वान् जान कर अपने साथ तीखनपुर अपनी राजधानी में ले आए और बहुत सम्मानपूर्वक उन्होंने राजा-पुर में उन्हें निवास कराया। उनके तिरसठ वर्ष की अवस्था तक कोई संतान नहीं हुई; इससे वे बहुत खिन्न होकर तीर्थयात्रा को गए तो पुनः चित्रकूट में स्वप्न हुआ और वे राजापुर लौट आए। उस समय राजा उनसे मिलने आया। तदनंतर इन्होंने राजापुर में शिव-शक्ति के उपासकों की आचरण-भ्रष्टता से दुःखित हो राजापुर में रहने की अनिच्छा प्रकट की; परंतु राजा ने इनके मत का अनुयायी हो कर बड़े सम्मानपूर्वक इनको रक्खा और भूमिदान दिया; परंतु इन्होंने उसे ग्रहण

नहीं किया। इनके शिष्य मारवाड़ी बहुत थे; उन्हीं लोगों के द्वारा इनको धन, गृह और भूमि का लाभ हुआ। अंतकाल में काशी जाकर इन्होंने शरीर त्याग किया। ये गाना के मिश्र थे और यज्ञ में गणेशजी का भाग पाते थे।

इनके पुत्र शंकर मिश्र हुए, जिनको वाक्‌सिद्धि प्राप्त थी। राजा और रानी तथा अन्यान्य राज्यवर्ग इनके शिष्य हुए और राजा से इन्हें बहुत भूमि मिली। इन्होंने दो विवाह किए। प्रथम से आठ पुत्र और दो कन्याएँ हुईं; दूसरे विवाह से दो पुत्र हुए—(१ संत मिश्र, २) रुद्रनाथ मिश्र। रुद्रनाथ मिश्र के चार पुत्र हुए। सब से बड़े मुरारी मिश्र थे। इन्हीं महाभाग्यशाली महापुरुष के पुत्र गोस्वामी जी हुए।

गोस्वामी जी चार भाई थे (१) गणपति, (२) महेश, (३) तुला-राम, (४) मंगल।

यही तुलाराम तत्त्वाचार्यवर्य भक्त चूडामणि गोस्वामीजी हैं। इनके कुल-गुरु तुलसीराम ने इनका नाम तुलाराम रक्खा था। गोस्वामी जी के दो बहिनें भी थीं। एक का नाम वाणी और दूसरी का विद्या था। गोस्वामी जी के तीन विवाह हुए थे। प्रथम स्त्री के मरने पर दूसरा विवाह हुआ और दूसरी स्त्री के मरने पर तीसरा। यह तीसरा ब्याह कंचनपुर के लछमण उपाध्याय की पुत्री बुद्धिमती से हुआ। इस विवाह में इनके पिता ने छः हज़ार मुद्रा लिए थे। इसी स्त्री के उपदेश से गोस्वामी जी विरक्त हुए।

इस ग्रंथ में दी हुई घटनाएँ और किसी ग्रंथ में नहीं मिलतीं। इसमें संदेह नहीं कि यदि यह चरित गोस्वामी तुलसीदासजी के शिष्य महात्मा रघुवरदासजी का लिखा है तो इसमें दी हुई घटनाएँ अवश्य

प्रामाणिक मानी जायँगो। परंतु इस ग्रंथ का पहला उल्लेख मर्यादा पत्रिका में ही हुआ है तथा अन्य किसी महाशय को इस ग्रंथ के देखने, पढ़ने या जाँचने का अब तक सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ है। अतएव उसके विषय में निश्चित रूप से अभी कोई सम्मति नहीं दी जा सकती।

जन्म-समय

गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म-समय किसी ग्रंथ में लिखा नहीं मिलता। पंडित रामगुलाम द्विवेदी की सुनी सुनाई बातों के अनुसार उनका जन्म संवत् १५८९ में हुआ। इसे डा० ग्रिअर्सन ने भी माना है और मिश्रबंधुविनोद में भी यही स्वीकार किया गया है। इसके विपरीत शिवसिंहसरोज में लिखा है कि वे संवत् १५८३ के लगभग उत्पन्न हुए थे। पहले से गोसाईंजी की आयु ९१ और दूसरे से ९७ वर्ष आती है। अब तक विद्वानों ने गोसाईंजी का जन्म संवत् १५८९ में ही माना है।

श्रीयुत इंद्रदेवनारायण जी इस संबंध में लिखते हैं:—"श्रीगोस्वामीजी की शिष्य-परंपरा की चौथी पुश्त में काशी-निवासी विद्वद्वर श्रीशिवलाल जी पाठक हुए, जिन्होंने वाल्मीकीय रामायण पर संस्कृत-भाष्य तथा व्याकरणादि विषय पर भी अनेक ग्रंथ निर्माण किए हैं। उन्होंने रामचरितमानस पर भी मानसमयंक नामक तिलक रचा है। उसमें लिखा है कि सं० १५५४ में गोस्वामीजी प्रकट हुए और पाँच वर्ष की अवस्था में गुरु से कथा सुनी, पुनः चालीस वर्ष की अवस्था में संतों से भी वही कथा सुनी और उन्होंने सतहत्तरवें वर्ष के बाद अठहत्तरवें वर्ष में रामचरितमानस को रचना प्रारंभ किया। उनकी अठहत्तर

वर्ष की अवस्था संवत् १६३१ में थी और १६८० संवत् में वे परमधाम सिधारे। इस प्रकार १५५४ में ७७ जोड़ने से १६३१ संवत् हुआ। संवत् १५५४ वाँ साल मिला कर अठहत्तर वर्ष की अवस्था गोस्वामी जी की थी जब मानस आरंभ हुआ और १२७ वर्ष की दीर्घ आयु भोग कर गोस्वामी जी परमधाम सिधारे।" १२७ वर्ष की आयु होना कोई असंभव बात नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता कि महात्मा रघुवरदास जी ने अपने तुलसीचरित में गोस्वामी जी के जन्म का कोई संवत् दिया है या नहीं। इस अवस्था में यह बात बड़ी संदिग्ध हो जाती है और निश्चय-पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। जो कुछ हम दृढ़ता-पूर्वक अब कहने में समर्थ हैं वह इतना ही है कि गोस्वामीजी का जन्म सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ और वे बड़ी आयु भोग कर परमधाम को सिधारे।

जन्म-स्थान

इनके जन्म-स्थान के विषय में भी कहीं कोई लिखा प्रमाण नहीं मिलता। कोई कहता है कि इनका जन्म तारी में हुआ। कोई हस्तिनापुर, कोई चित्रकूट के पास हाजीपुर और कोई बाँदा ज़िले में राजापुर को इनका जन्म-स्थान बतलाता है। बहुत से लोग तारी को प्रधानता देते हैं। परंतु पं० रामगुलाम के मत से राजापुर ही इनका जन्मस्थान है। शिवसिंह-सरोज में भी प० वेणीमाधवदास के आधार पर इसी स्थान को माना है, तथा महात्मा रघुवरदास जी के लेख से भी यही प्रमाणित होता है। इसके अतिरिक्त राजापुर में गोस्वामी जी की कुटी मंदिर आदि हैं। अतएव इसमें संदेह नहीं कि गोस्वामी जी का जन्म राजापुर में हुआ।

जाति

कोई इन्हें कान्यकुब्ज ब्राह्मण और कोई सरयूपारी कहता है। राजा प्रतापसिंह ने भक्तकल्पद्रुम में इन्हें कान्यकुब्ज लिखा है, पर शिवसिंहसरोज में इन्हें सरयूपारी माना है। डाक्टर ग्रिअर्सन पं० रामगुलाम द्विवेदी के आधार पर इन्हें पराशर गोत्र के सरयूपारी दुबे लिखते हैं। "तुलसी पराशर गोत दूबे पतिऔजा के" ऐसा प्रसिद्ध भी है। विनयपत्रिका में तुलसीदास जी स्वयं लिखते हैं—"दियो सुकुल जन्म सरीर सुंदर हेतु जो फल चारि को।" पर यहाँ "सुकुल" से उत्तम कुल का अर्थ ही लगाना युक्ति-संगत जान पड़ता है।

हिंदी-नवरत्न में लिखा है कि "इनको सरयूपारीण मानने में दो आपत्तियाँ हैं। एक यह कि ज़िला बाँदा में और राजापुर के इर्द-गिर्द कान्यकुब्ज द्विवेदियों की बस्ती है न कि सरवरिया ब्राह्मणों की। सो यदि गोस्वामी जी द्विवेदी थे तो उनका कान्यकुब्ज होना विशेष माननीय है। दूसरे इनका विवाह पाठकों के यहाँ हुआ था जिनका कुल सरवरिया ब्राह्मणों में बहुत ऊँचा है और द्विवेदियों का उनसे नीचा। सो पाठकों की कन्या द्विवेदियों के यहाँ नहीं ब्याही जा सकती, क्योंकि कोई भी उच्च वंशवाला मनुष्य अपनी कन्या नीच कुल में नहीं ब्याहता। कनौजियों में पाठकों का घराना द्विवेदियों से नीचा है। अतएव पाठकों की लड़कियों का द्विवेदियों के यहाँ ब्याहा जाना उचित है।" पर तुलसीचरित से इनका सरवरिया ब्राह्मण गाना के मिश्र होना स्पष्ट है। इस बात का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता कि गोस्वामी जी का विवाह पाठकों के यहाँ हुआ। इसलिये इस संबंध में मिश्र-बंधुओं का कथन प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। मेरे विचार में गोस्वामी जी सरवरिया ब्राह्मण थे।

माता-पिता

गोस्वामी जी ने स्पष्ट रूप से कहीं अपने ग्रंथों में अपने माता-पिता का नाम नहीं लिखा है। लोक में यह बात प्रसिद्ध है कि इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे था और माता का हुलसी। नीचे लिखा दोहा इसके प्रमाण में उद्धृत किया जाता है—

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहत अस होय।
गोद लिये हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय॥

इस दोहे का उत्तरांश रहीम खानखाना का बनाया कहा जाता है। लोगों का कथन है कि इसमें "हुलसी" शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, जिसका यह प्रमाण है कि इनकी माता का नाम हुलसी था। यह कथन केवल अनुमान है। इसकी पुष्टि और कहीं से नहीं होती। "तुलसीचरित" में स्पष्ट लिखा है कि तुलसीदास ने स्वयं कहा है कि मेरे प्रपितामह परशुराम मिश्र थे, जिनके पुत्र शंकर मिश्र हुए। इनके दो पुत्र संत मिश्र और रुद्रनाथ मिश्र हुए। रुद्रनाथ मिश्र के चार पुत्र और दो कन्याएँ हुईं। पुत्रों के नाम गणपति, महेश, तुलाराम और मंगल और कन्याओं के वाणी और विद्या थे। ये तुलाराम हमारे चरित्रनायक गोस्वामी तुलसीदास जी हैं।

विनयपत्रिका में तुलसीदास जी स्वयं लिखते हैं "राम को गुलाम नाम रामबोला राम राख्यो।" इससे इनका एक नाम रामबोला होना स्पष्ट है। पर तुलसीचरित में लिखा है कि इनके गुरु तुलसीराम थे जिन्होंने इनका तुलसी नाम रक्खा। पहले इनका नाम तुलाराम था, पीछे से अपनी दीनता दिखाने के लिये अथवा यों ही ये अपने

को तुलसीदास कहने लगे। विनयपत्रिका से उद्धृत पद का यही अर्थ माना जा सकता है कि रामचंद्रजी ने इनका नाम रामबोला रक्खा।

कवितावली में तुलसीदास जी स्वयं लिखते हैं—मातु-पिता जग जाइ तज्यो विधि हू न लिख्यो कछु भाल भलाई। विनयपत्रिका में भी तुलसीदासजी स्वयं कहते हैं—जनक-जननि तज्यो जनमि करम बिनु विधि सिरज्यो अवडेरे। पुनः उसी ग्रंथ में ये लिखते हैं--तनु तज्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मात-पिता हूँ।

इनसे स्पष्ट है कि माता-पिता ने इन्हें छोड़ दिया था। पंडित सुधाकर द्विवेदी के आधार पर डाक्टर ग्रिअर्सन अनुमान करते हैं कि अभुक्त मूल में जन्म होने के कारण इनके माता-पिता ने इन्हें त्याग दिया था। मूल में जन्मे लड़कों की मूल-शांति और गोमुख-प्रसव-शांति भी शास्त्र के लेखानुसार होती है; कोई लड़के अनाथ की तरह नहीं छोड़ दिए जाते। इसलिये यह भी अनुमान किया जाता है कि या तो माता-पिता ने इन्हें कबीर जी की तरह फेंक दिया हो, या इनके जन्म के पीछे ही उनकी मृत्यु हो गई हो। परंतु यह बात ठीक नहीं जान पड़ती। क्योंकि इनके जन्म लेते ही यदि माता-पिता मर जाते या उन्होंने उन्हें फेंक दिया होता तो तुलसीदास जी के कुल, वंश आदि का पता लगना कठिन होता। तुलसीचरित से यह स्पष्ट है कि तीसरे विवाह तक तुलसीदास जी अपने माता-पिता के साथ थे। तीसरा विवाह होने पर वे उनसे अलग हुए। दोनों बातें अर्थात् तुलसीदास जी का स्वयं कथन और तुलसीचरित का वर्णन एक दूसरे के विपरीत पड़ती हैं और माता-पिता के छोड़ने की घटना को स्पष्ट नहीं करतीं। तुलसीदास जी के स्वयं कथन के अनुसार जन्म देकर

माता-पिता ने उन्हें छोड़ दिया था और तुलसीचरित के अनुसार तीसरा व्याह होने पर माता-पिता से वे विमुख हुए। दोनों कथनों में समानता इतनी ही है कि ये माता-पिता से अलग हुए, पर कब हुए? इसमें दोनों कथनों में आकाश-पाताल का अंतर है। यदि तुलसीचरित पूरा प्राप्त होता तो संभव था कि यह समस्या कुछ हल हो जाती, पर उसके अभाव में तुलसीदास के स्वयं कथन को प्रधानता देनी पड़ती है, जब तक यह सिद्ध न हो जाय कि जो अंश इस संबंध में उद्धृत किए गए हैं वे प्रक्षिप्त हैं, तुलसीदास जी के स्वयं लिखे हुए नहीं हैं, पर इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। इस अवस्था में हमें यह मानना पड़ता है कि इनके माता-पिता ने इन्हें छोड़ दिया था। संभव है कि किसी कारण से ये बालपन से ही माता-पिता के जीवित रहते ही अपने गुरु के यहाँ रहते हों। इस अवस्था में दोनों कथनों की सत्यता सिद्ध हो सकती है।

गुरु का नाम

तुलसीदास जी रामायण में लिखते हैं—

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत॥

तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी कछु बुधि अनुसारा॥
भाषा बंध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध अस होई॥

परंतु गुरु का नाम उन्होंने कहीं नहीं दिया है। रामायण के आदि में मंगलाचरण में यह सोरठा लिखा है—

"बंदउँ गुरु पद कंज कृपासिंधु नर रूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबिकर निकर"॥

इसी "नर रूप हरि" से लोगों ने निकाला है कि नरहरिदास इनके गुरु थे। नरहरिदास रामानंदजी के बारह शिष्यों में से थे।

स्वामी रामानंद जी का समय संवत् १४५० के लगभग माना जाता है। इस हिसाब से नरहरिदास जी का सोलहवीं शताब्दी में होना संभव है। पर यह सब अनुमान केवल "नरहरि" शब्द पर है जो रामायण के आदि में आया है। तुलसीचरित में इसके संबंध में लिखा है कि गोस्वामीजी के गुरु रामदास जी थे।

भृगु-आश्रम ब्रह्मपुर-यात्रा

कहते हैं कि एक समय गोसाइँ जी भृगु-आश्रम, हंसनगर और परसिया[1] होते, गायघाट[2] के राजा गंभीरदेव का आतिथ्य-सत्कार स्वीकार करते, ब्रह्मपुर[3] में ब्रह्मेश्वरनाथ महादेव का दर्शन करके कांत[4] नाम के गाँव में आए। वहाँ उन्हें भोजन का कोई पदार्थ न मिला और वहाँ के लोगों को राक्षसी भाव में लिप्त देखकर वे आगे बढ़े। थोड़ा आगे जाकर उन्हें उसी गाँव का रहनेवाला सावँरू[5] अहीर का लड़का मँगरू अहीर मिला। उसने वहाँ एक गोशाला बना रक्खी थी जहाँ कि वह साधु महात्माओं का आतिथ्य-सत्कार करता था। उसने बड़े आदर के साथ गोसाइँ जी को बुलाया और थोड़ा दूध दिया,

---

१ भृगु-आश्रम, हंसनगर और परसिया ज़िला बलिया में है।

२ गायघाट में अब कोई राजधानी नहीं है। गायघाट का राजवंश, जो हैहय-वंशी क्षत्रिय है, अब हल्दी ज़िला बलिया में रहता है।

३ ब्रह्मपुर ज़िला बलिया में है; यहाँ शिवरात्रि पर बड़ा मेला होता है।

४ यह भी ज़िला बलिया में है; लोग प्रायः इसको कांत ब्रह्मपुर कहते हैं।

५ सावँरू नाम के दो अहीरों का वर्णन लोरिक के गीतों में है।

जिसका खोश्रा बनाकर गोसाईंजी ने खाया। गोसाईंजी ने मँगरू से कहा कि कुछ वर माँगो। मँगरू ने प्रार्थना की कि "महाराज, एक तो मेरा दृढ़ विश्वास प्रभु के चरणारविंद में हो और दूसरे मेरा वंश बढ़े"। गोसाईं जी ने कहा कि "जो तुम और तुम्हारे वंशवाले चोरी न करेंगे और किसी को दुःख न देंगे तो ऐसा ही होगा"। कहते हैं कि यह आशीर्वाद फलीभूत हुआ। यह बात बलिया और शाहाबाद ज़िले में अब तक प्रसिद्ध है और उसके वंशवाले अब तक वर्त्तमान हैं, जिनका आतिथ्य-सत्कार प्रसिद्ध है और जिनके वंश में अब तक कोई चोरी नहीं करता, यद्यपि उस ज़िले के अहीर चोरी में प्रसिद्ध हैं।

वहाँ से गोसाईं जी बेलापतौत में आए। वहाँ गोविंद मिश्र नामक एक शाकद्वीपी ब्राह्मण और रघुनाथसिंह नामक क्षत्रिय से भेंट हुई। इन लोगों ने बड़े आदर से गोसाईं जी को अपने यहाँ ठहराया। गोसाईं जी ने उस स्थान का नाम बेलापतौत से बदलकर रघुनाथपुर रक्खा, जिसमें एक तो रघुनाथसिंह का यह स्मारक हो, दूसरे इसी बहाने से लाखों मनुष्य भगवान् का नाम लें। यह स्थान रघुनाथपुर के नाम से अब तक प्रसिद्ध है और ब्रह्मपुर से एक कोस पर है। यहाँ पर गोसाईं जी का चौरा अब तक है। इसी के पास एक गाँव कैथी है। कहते हैं कि यहाँ के प्रधान जोरावरसिंह ने भी गोसाईं जी का आतिथ्य किया था और वे इनके शिष्य हुए थे।

विवाह, संतान और वैराग्य

यह प्रसिद्ध है कि इनका विवाह दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था, जिससे तारक नामक एक पुत्र भी हुआ था, जो

बचपन ही में मर गया। परंतु तुलसीचरित में लिखा है कि इनके तीन विवाह हुए थे—तीसरा विवाह कंचनपुर ग्राम के उपाध्याय लछमन की कन्या बुद्धिमती से हुआ था। इसी के उपदेश से गोस्वामी जी विरक्त हुए थे। कहते हैं कि गोस्वामी जी इस स्त्री पर बहुत आसक्त थे। एक दिन स्त्री बिना कहे नैहर चली गई। गोसाईं जी से पत्नी-वियोग न सहा गया, वहाँ जाकर वे स्त्री से मिले। स्त्री ने लजा कर ये दोहे कहे—

"लाज न लागत आपु को दौरे आएहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहहुँ मैं नाथ॥
अस्थि-चरम-मय देह मम ता मैं जैसी प्रीति।
तैसी जौं श्रीराम महँ होत न तौ भवभीति"॥

यह बात गोसाईं जी को ऐसी लगी कि वे वहाँ से सीधे काशी चले आए और विरक्त हो गए। स्त्री ने बहुत कुछ विनती की और भोजन करने को कहा परंतु उन्होंने एक न सुनी। अयोध्या और काशी में तो गोसाईं जी प्रायः रहा ही करते थे, परंतु मथुरा, वृंदावन, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, चित्रकूट, पुरुषोत्तमपुरी (जगन्नाथ जी), सोरों (शूकरक्षेत्र), आदि तीर्थस्थानों में भी वे प्रायः घूमा करते थे।

घर छोड़ने के पीछे एक बेर स्त्री ने यह दोहा गोसाईं जी को लिख भेजा—

कटि की खीनी कनक सी रहति सखिन संग सोइ।
मोहि फटे की डर नहीं अनत कटे डर होइ॥

इसके उत्तर में गोसाईं जी ने लिखा—

कटे एक रघुनाथ संग बाँधि जटा सिर केस।
हम तो चाखा प्रेमरस पत्नी के उपदेस॥

बहुत दिनों के पीछे वृद्धावस्था में एक दिन तुलसीदास जी चित्रकूट से लौटते समय अनजानते अपने ससुर के घर आकर टिके। उनकी स्त्री भी बूढ़ी हो गई थी। वह बिना पहचाने हुए ही उनके अतिथि-सत्कार में लगी और उसने चौका आदि लगा दिया। दो चार बात होने पर उसने पहचाना कि ये तो मेरे पति हैं। उसने इस बात को गुप्त रक्खा और उनका चरण धोना चाहा; पर उन्होंने धोने न दिया। पूजा के लिये उसने कपूर आदि ला देने को कहा; परंतु गोसाइँ जी ने कहा कि यह सब मेरे झोले में साथ है। स्त्री की इच्छा हुई कि मैं भी इनके साथ रहती तो श्रीरामचंद्र जी और अपने पति की सेवा करके जन्म सुधारती। रात भर बहुत कुछ आगा-पीछा सोच विचार कर उसने सबेरे अपने को गोसाइँ जी के सामने प्रकट किया, और अपनी इच्छा कह सुनाई। गोसाइँजी ने उसको साथ लेना स्वीकार न किया, तब उसने कहा—

*खरिया खरी कपूर लौं उचित न पिय तिय त्याग।
कै खरिया मोहि मेलि कै अचल करहु अनुराग॥

यह सुनते ही गोसाइँजी ने अपने झोले की वस्तुओं को ब्राह्मणों को बाँट दिया।

कुछ लोग यह भी अनुमान करते हैं कि तुलसीदास जी का विवाह ही नहीं हुआ था। क्योंकि उन्होंने विनयपत्रिका में लिखा है—"ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चाहत हौं।" परंतु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि उनका विवाह हुआ ही नहीं था। यह कथन तो संसार

---

* यह दोहा दोहावली में इस प्रकार है—

खरिया खरी कपूर सब उचित न पिय तिय त्याग।
कै खरिया मोहि मेलि कै विमल विवेक बिराग॥ २५५ ॥

की माया छोड़ कर बैरागी होने के पीछे का है। विवाह की कथा पहले पहल प्रियादासजी ने "भक्तमाल" की टीका में लिखी है। तभी से गोस्वामी जी के प्रत्येक जीवन-चरित्र में इसका उल्लेख होता आया है।

गोसाईं जी के वासस्थान

यद्यपि पहले गोसाईं जी अयोध्या में आकर रहे थे, और चित्रकूट में भी प्रायः रहना उनकी कविता से पाया जाता है, परंतु अधिक निवास उनका काशी में होता था। और अंत में उन्हें काशीवास हुआ। काशी में चार स्थान गोसाईं जी के प्रसिद्ध हैं—

१—अस्सी पर–तुलसीदासजी का घाट प्रसिद्ध है। इस स्थान पर गोसाईंजी के स्थापित हनुमान्‌जी हैं और उनके मंदिर के बाहर बीसा यंत्र लिखा है जो पढ़ा नहीं जाता। यहाँ गोसाईं जी की गुफा है। यहाँ पर विशेष करके गोसाईं जी रहते थे, और अंत समय में भी यहीं थे।

२—गोपालमंदिर में। यहाँ श्रीमुकुंदराय जी के बाग़ के पश्चिम-दक्षिण के कोने में एक कोठरी है, यह तुलसीदास जी की बैठक है। यह सदा बंद रहती है, झरोखे में से लोग दर्शन करते हैं, केवल श्रावण सु० ७ को खुलती है और लोग जाकर पूजा आदि करते हैं। यहाँ बैठ कर यदि सब "विनयपत्रिका" नहीं तो उसका कुछ अंश उन्होंने अवश्य लिखा है, क्योंकि यह स्थान बिंदुमाधवजी के निकट है और पंचगंगा, बिंदुमाधव का वर्णन गोसाईं जी ने विनयपत्रिका में पूरा पूरा किया है। बिंदुमाधवजी के अंग के चिह्नों का जो वर्णन गोसाईं जी ने किया है वह पुराने बिंदुमाधवजी से, जो अब एक गृहस्थ के यहाँ हैं, अविकल मिलता है।

३—प्रह्लादघाट पर।

४—संकट-मोचन हनुमान। यह हनुमान् जी नगवा के पास अस्सी के नाले पर गोसाईं जी के स्थापित हैं। कहते हैं कि प्रह्लादघाट के ज्यो० गंगारामजी ने जो राजा के यहाँ से द्रव्य पाया था उसमें से १२ हज़ार गोसाईंजी की भेंट बहुत आग्रह करके किया। गोसाईंजी ने उससे बारह मूर्तियाँ श्रीहनुमान् जी की स्थापित की थीं, जिन में से एक यह भी है।

पहला निवास-स्थान हनुमान-फाटक है। मुसलमानों के उपद्रव से वहाँ से उठ कर वे गोपालमंदिर आए। वहाँ से भी वल्लभकुल वाले गोसाईंयों से विरोध हो जाने के कारण उठ कर अस्सी आए और मरण पर्यंत वहीं रहे।

अस्सी पर आपने अपनी रामायण के अनुसार रामलीला आरंभ की। सबसे पुरानी रामलीला अस्सी ही की है। आज तक अस्सी के दक्षिण ओर कुछ दूर पर जो तुलसीदास जी की रामलीला की लंका थी उस स्थान का नाम लंका है।

हनुमान्‌जी के द्वारा रामचंद्र जी का दर्शन

गोसाईं जी शौच के लिये नित्य गंगा पार जाया करते थे और लौटते समय लोटे का बचा हुआ जल, रास्ते में जो एक आम का पेड़ था, उसकी जड़ में डाल देते थे। उस पेड़ पर एक प्रेत रहता था। एक दिन वह उस जल से तृप्त हो कर गोसाईं जी के सामने आया और उसने कहा कि कुछ माँगो। गोसाईं जी ने कहा कि हमें श्रीरामचंद्रजी के दर्शन के सिवाय और कुछ इच्छा नहीं है। प्रेत ने कहा इतनी शक्ति तो मुझे नहीं है, पर मैं तुम्हें रास्ता बतला देता हूँ। अमुक मंदिर में

रामायण की कथा होती है, वहाँ एक मनुष्य बहुत ही मैला कुचैला कोढ़ी नित्य कथा सुनने आता है; सबसे पहले आता है और सबसे पीछे जाता है। वह साक्षात् हनुमान् जी हैं, उन्हीं का चरण पकड़ कर विनती करो, उनके जी में आजायगा तो दर्शन करा देंगे। गोसाइँजी ने ऐसा ही किया और हनुमान् जी को पहचान कर अकेले में उनका पैर पकड़ लिया। उन्होंने लाख लाख जी बचाना चाहा पर गोसाइँ जी ने न छोड़ा। अंत में हनुमान् जी ने आज्ञा दी कि "जाओ चित्रकूट में दर्शन होगा"। गोसाइँ जी चित्रकूट आकर रहे। एक दिन वे वन में घूम रहे थे कि एक हरिण के पीछे दो सुंदर राजकुमार एक श्याम और एक गौर धनुष बाण लिए घोड़ा दौड़ाए जाते दिखलाई दिए। गोसाइँ जी रूप देख मोहित तो हो गए पर यह न जान सके कि यही श्रीराम-लक्ष्मण हैं। इतने में हनुमान्‌जी ने आकर पूछा "कुछ देखा ?" गोसाइँ जी ने कहा "हाँ, दो सुंदर राजकुमार घोड़े पर गए हैं"। हनुमान् जी ने कहा "वही राम-लक्ष्मण थे"। गोसाइँ जी ने उसी मनमोहनी मूर्ति का ध्यान चित्त में रख लिया। यह कथा प्रियादासजी ने लिखी है और यही "भक्तकल्पद्रुम" में भी है। परंतु डाक्टर ग्रिअर्सन इसको दूसरे ही प्रकार से लिखते हैं। वे लिखते हैं कि गोसाइँ जी चित्रकूट में एक दिन बस्ती के बाहर घूम रहे थे कि उन्होंने वहाँ रामलीला होती हुई देखी। प्रसंग यह था कि लंका जीत कर, राज्य विभीषण को देकर, सीता, लक्ष्मण और हनुमान् जी के साथ भगवान् अयोध्या को लौट रहे हैं। लीला समाप्त होने पर वे लौटे। रास्ते में ब्राह्मण के रूप में हनुमान् जी मिले। गोसाईं जी ने कहा "यहाँ बड़ी अच्छी लीला होती है"। ब्राह्मण ने कहा "कुछ पागल हो गए हो, आज कल रामलीला कहाँ ? रामलीला तो आश्विन कार्तिक

में होती है"। गोसाईं जी ने चिढ़ कर कहा "हमने अभी देखी है, चलो तुम्हें भी दिखा दें"। यह कह कर वे ब्राह्मण को लेकर रामलीला के स्थान पर आए। वहाँ कुछ भी न था। लोगों से पूछा तो लोगों ने कहा "आज कल रामलीला कहाँ?" तब गोसाईं जी को हनुमान् जी की बात स्मरण आई और वे बहुत उदास होकर लौट आए; कुछ खाया पिया नहीं; रोते रोते सो गए। स्वप्न में हनुमान् जी ने कहा "तुलसी, पछताओ मत, इस कलियुग में प्रत्यक्ष दर्शन किसी को नहीं होते; तुम बड़े भाग्यवान् हो जो तुम्हें दर्शन हुए। सोच छोड़ो, उठो और उनकी सेवा करो"। तुलसीदास जी का चित्त शांत हुआ और वे काशी में आ कर भगवत्सेवा में समय बिताने लगे। कहते हैं कि इसी समय रास्ते में वन से अपनी स्त्री से भेंट हुई थी।

तुलसीदास जी को पहले ही से हनुमान् जी की उपासना थी। बहुत से लोग कहते हैं कि बालकांड में जो लिखा है कि 'करउँ कथा हरि पद धरि सीसा' यहां हरि का अर्थ वानर—हनुमान् जी है।

कहावत है कि गोसाईं जी रामायण बनाते बनाते जब बालकांड के २९४ वें सोरठे तक पहुँचे तो "बूड़ सो सकल समाज" इतना लिख कर उनकी कलम रुक गई कि समाज में विश्वामित्र, राम, लक्ष्मण भी हैं; सो ये लोग भी डूब गए; यह अनर्थ हो गया। इस पर हनुमान् जी की आकाशवाणी हुई कि रुको मत, आगे लिखो कि, 'चढ़े जो प्रथमहिं मोहबस'। दूसरी यह कथा भी बहुत प्रसिद्ध है कि युद्ध में हनुमान् को अंतरंग भक्त जान लक्ष्मण-शक्ति के प्रसंग में राम ने हनुमान् से कहा कि मैं वाल्मीकि के लिखे अनुसार चलता हूँ। इसको सुन हनुमान् ने एक रामायण अपने नहों से शिलाओं पर लिख तैयार कर सही के

लिये श्रीराम के पास उपस्थित की। श्रीराम ने देख कर कहा—ग्रंथ अच्छा बना है, परंतु मैं वाल्मीकि-रामायण पर सही कर चुका हूँ, सो तुम वाल्मीकि से सही कराओ। हनुमान् जी ने उसे वाल्मीकि को दिखाया। वाल्मीकि ने उस उत्तम ग्रंथ को देख कर विचारा कि इसका प्रचार होने से मेरी रामायण नष्ट हो जायगी; इसलिये वे हनुमान् जी की स्तुति करने लगे। हनुमान् जी प्रसन्न होकर बोले कि वर माँगिए। वाल्मीकि ने कहा कि इस अपने ग्रंथ को समुद्र में डुबा दीजिए। हनुमान् जी ने कहा कि मैं इस को तो समुद्र में डुबा देता हूँ; परंतु कलि में एक तुलसी नाम के ब्राह्मण की जिह्वा पर बैठ कर भाषा रामायण कहूँगा, जिसके प्रचार से तुम्हारी रामायण नष्टप्राय हो जायगी।

चोरों का आक्रमण

एक दिन चोर तुलसीदास जी के यहाँ चोरी करने गए तो देखा कि एक श्यामसुंदर बालक धनुषबाण लिए पहरा दे रहा है। चोर लौट गए। दूसरे दिन वे फिर आए और उन्होंने फिर उसी पहरेदार को देखा। तब उन्होंने सबेरे गोसाईं जी से पूछा कि "आप के यहाँ श्यामसुंदर बालक कौन पहरा देता है?" गोसाईं जी समझ गए कि मेरे कारण प्रभु को कष्ट उठाना पड़ता है। बस जो कुछ उनके पास था सब उन्होंने लुटा दिया। चोर भी इस घटना से गोसाईं जी के चेला हो गए।

डाक्तर ग्रिअर्सन ने एक कहानी और भी चोरों की लिखी है। वे लिखते हैं कि एक दिन काशी में अँधेरी रात के समय गोसाईं जी घर लौट रहे थे कि रास्ते में चोरों ने आकर घेर लिया। गोसाइंजी ने अविचलितभाव से हनुमान् जी का स्मरण किया और यह दोहा कहा—

"वासर ढासनि से ढका, रजनी चहुँ दिसि चोर।
दलत दयानिधि देखिए, कपि केसरीकिसोर" ॥*

हनुमान् जी ने प्रकट होकर चोरों को भगा दिया और गोसाईं जी बेखटके चले गए।

रामलीला और कृष्णलीला

यद्यपि जनश्रुति से यह बात प्रसिद्ध है कि मेघा भगत की रामलीला, जो अब काशी में चित्रकूट की लीला के नाम से प्रसिद्ध है, गोसाईं जी के पहले से होती थी, परंतु वर्तमान शैली की रामलीला, गोसाईं जी की रामायण गाकर, गोसाईं जी के ही समय से आरंभ हुई है। यह लीला अब तक अस्सी पर होती है और गोसाईं जी के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें और लीलाओं से एक बात की विलक्षणता यह है कि और लीलाओं में जो खर दूषण की सेना निकलती है तो उसमें राक्षस विमान पर निकाले जाते हैं, पर यहाँ पर राक्षस, जैसा कि रामायण में लिखा है, भैंसे, घोड़े आदि पर निकलते हैं। इसकी लंका अब तक लंका के नाम से प्रसिद्ध है।

रामलीला के अतिरिक्त गोसाईं जी कृष्णलीला भी कराते थे। अब तक उनके घाट पर कार्तिक कृष्ण ५ को "कालियदमन" लीला बहुत सुंदर रीति से होती है।

टोडर के साथ स्नेह

टोडर नाम के एक बड़े ज़मींदार काशी में थे, इन्हें गोसाइयों ने

---

* यह दोहा दोहावली में है। कहावत है कि जब गोसाईं जी हनुमान-फाटक पर रहते थे, तब अलईपुर के जोलाहों ने इन्हें बहुत तंग किया था, इसी पर उन्होंने यह दोहा बनाया।

तलवार से काट डाला था। इनके पास पाँच गाँव थे जो काशी के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैले हैं। इनका नाम भदैनी, नदेसर, शिवपुर, छीतूपुर और लहरतारा है। भदैनी अब काशिराज के पास है और इसी में अस्सीघाट है। नदेसर में अब तक सरकारी दीवानी कचहरी थी। शिवपुर पंचकोश में है, यहाँ पाँचों पांडवों का मंदिर और द्रौपदीकुंड है। इस द्रौपदीकुंड का जीर्णोद्धार राजा टोडरमल ने कराया था। छीतूपुर भदैनी से और पश्चिम है। लहरतारा काशी के कंटूनमेंट स्टेशन के पास है। इसी लहरतारा की झील में कबीर जी को बहता हुआ "नीमा" ने पाया था। यहाँ कबीर जी की एक मढ़ी बनी है। टोडर के मरने पर उनके पौत्र कँधई और बेटे आनंद-राम में झगड़ा हुआ था; इसमें गोसाईं जी पंच हुए थे और जो पंचा-यती फैसला उन्होंने लिखा था, वह ११ पीढ़ी तक टोडर के वंश में रहा; ११ वीं पीढ़ी में पृथ्वीपालसिंह ने उसको महाराज काशिराज को दे दिया जो अब काशिराज के यहाँ है। टोडर के वंशज अब तक अस्सी पर हैं।

इन टोडर के मरने पर कहते हैं कि गोसाईंजी ने ये दोहे कहे थे—

चार गाँव को ठाकुरो * मन के महा महीप।
तुलसी या कलिकाल में अथए टोडर दीप॥
तुलसी रामसनेह को सिर पर भारी भार।
टोडर काँधा ना दियो सब कहि रहे उतार॥
तुलसी उर थाला विमल टोडर गुनगन बाग।

---

* महतो चारो गावों को—पाठांतर।

ये दोउ नयनन सींचिहौं समुझि समुझि अनुराग ॥
रामधाम टोडर गये तुलसी भये असोच।
जियबो मीत पुनीत विनु यही जानि संकोच ॥

डाक्तर ग्रिअर्सन अनुमान करते हैं कि यह टोडर अकबर के प्रसिद्ध मंत्री महाराज टोडरमल थे, और उनके जन्मस्थान लाहरपुर (अवध) को वे लहरतारा अनुमान करते हैं। परंतु ऐसा नहीं है। टोडरमल टन्नन खत्री थे, जिसके प्रमाण में शिवपुर के द्रौपदीकुंड का शिलालेख वर्तमान है। टोडर के वंशज क्षत्रिय हैं। दूसरे यह कभी संभव नहीं है कि महाराज टोडरमल ऐसे भारी मंत्री का नाम एक नगर का काजी ऐसी साधारण रीति पर लिखे कि "आनंदराम बिन टोडर बिन देवराय व कंधई बिन रामभद्र बिन टोडर मजकूर दर हुजूर आमद:" इत्यादि। तीसरे महाराज टोडरमल का कोई चिह्न काशी में वर्तमान नहीं है। जान पड़ता है कि बंगाल पर चढ़ाई के समय महाराज ने द्रौपदीकुंड का जीर्णोद्धार कराया हो। निदान यह निश्चय है कि महाराज टोडरमल और यह टोडर दो व्यक्ति थे।

राजा टोडरमल के दो लड़कों का नाम धरु टन्नन और गोवर्धनधारी टन्नन था और इस टोडर के लड़कों का नाम आनंदराम और रामभद्र था। तथा रामभद्र संवत् १६५९ के पहले मर चुका था। परंतु राजा टोडरमल के दोनों लड़के उनके पीछे तक जीते रहे। इससे भी यही निकलता है कि ये दोनों टोडर दो भिन्न पुरुष थे।

खानखाना से स्नेह

कहते हैं कि अकबर के प्रसिद्ध वज़ीर नवाब खानखाना से तुलसीदासजी से बड़ा स्नेह था। एक ग़रीब ब्राह्मण को कन्या का विवाह

करना था, उसने तुलसीदासजी को घेरा, उन्होंने एक पुर्जे पर यह आधा दोहा लिख कर दिया कि खानखाना के पास ले जाओ—

"सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहत अस होय"।

खानखाना ने ब्राह्मण को बहुत कुछ धन देकर तुलसीदासजी को उत्तर लिख दिया—

"गोद लिए हुलसी फिरै तुलसी सों सुत होय"॥

महाराज मानसिंह से स्नेह

कहते हैं कि आमेर के महाराज मानसिंह और उनके भाई जगतसिंह प्रायः गोसाईं जी के पास आया करते थे। एक मनुष्य ने एक दिन गोसाईं जी से पूछा कि "महाराज, पहले तो आपके पास कोई भी नहीं आता था और अब ऐसे ऐसे बड़े लोग आपके यहाँ आते हैं, इसमें क्या भेद है?" गोसाईं जी ने कहा—

"लहै न फूटी कौड़िहू को चाहै केहि काज † ।
सो तुलसी महँगो कियो राम गरीबनिवाज ॥
घर घर माँगे टूक पुनि भूपति पूजे पाय ।
ते तुलसी तब राम बिन ते अब राम सहाय" ॥

मुर्दे का जिलाना

एक समय एक ब्राह्मण मर गया था उसकी स्त्री सती होने के लिये जाती थी, गोसाईंजी को उसने प्रणाम किया, इनके मुँह से निकल गया कि "सौभाग्यवती हो"। लोगों ने कहा कि "महाराज, इसका पति तो मर गया है, यह सती होने जाती है, और आपका आशीर्वाद

---

† खानखाना का दोहा है—"मनि मानिक महँगे किए ससते तृन जल नाज ।
रहिमन यातें कहत हैं राम गरीबनेवाज ॥"

कभी झूठा नहीं हो सकता"। गोसाईं जी यह कहकर कि "अच्छा, जब तक मैं न आऊँ तब तक इसे मत जलाना" गंगा-स्नान को चले गए और तीन घंटे तक भगवत्स्तुति करते रहे। मुर्दा जी उठा और जैसे कोई सोते से जागा हो उसी प्रकार उठ कर कहने लगा कि "मुझ को यहाँ क्यों लाए हो ?"

यह कथा प्रियादास जी ने भी लिखी है।

बादशाह की क़ैद

मुर्दा जिलाने की बात बादशाह के कान तक पहुँची, उसने इन्हें बुला भेजा और कहा कि "कुछ करामात दिखलाइए"। इन्होंने कहा कि "मैं सिवाय रामनाम के और कोई करामात नहीं जानता"। बादशाह ने उन्हें क़ैद कर लिया और कहा कि "जब तक करामात न दिखाओगे छूटने न पाओगे"। तुलसीदास जी ने हनुमान् जी की स्तुति की, हनुमान् जी ने अपनी वानरों की सेना से कोट का विध्वंस करना प्रारंभ किया, और ऐसी दुर्गति की कि बादशाह आकर पैरों पर गिरा और बोला कि 'अब मेरी रक्षा कीजिए।' तब फिर गोसाईंजी ने हनुमान् जी से प्रार्थना की, और वानरों का उपद्रव कम हुआ। गोसाईं जी ने कहा कि अब इसमें हनुमान् जी का वास हो गया, इसलिये इसको छोड़ दो, नया कोट बनवाओ। बादशाह ने ऐसा ही किया। प्रियादासजी ने भी इस कथा को लिखा है और लिखा है कि अब तक भी कोई उसमें नहीं रहता। परंतु जान पड़ता है कि दिल्ली के नए क़िले के बनने पर पुराने क़िले में वानरों के अधिक निवास करने और कोट को तहस नहस कर देने से ही यह बात प्रसिद्ध हो गई है। यह भी संभव है कि जहाँगीर ने इन्हें बुलाया हो

और कुछ दिनों क़ैद रक्खा हो। तुलसीदास की मृत्यु संवत् १६८० में हुई और बादशाह शाहजहाँ संवत् १६८५ में गद्दी पर बैठा और इसी ने नई दिल्ली (शाहजहाँनाबाद) बसाई और क़िला बनवाया। बैजनाथदास ने लिखा है कि जहाँगीर ने अपने बेटे शाहजहाँ के नाम से नगर बसाया; परंतु ऐसा नहीं है, नई दिल्ली को शाहजहाँ ने ही बनवाया था।

कृष्णमूर्ति का राममूर्ति हो जाना

दिल्ली से गोसाइँ जी वृंदावन गए। वहाँ वे एक मंदिर में दर्शन को गए। श्रीकृष्णमूर्ति का दर्शन कर के यह दोहा उन्होंने कहा—

"का बरनउँ छबि आज की भले बिराजेउ नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै (जब) धनुष बान लेउ हाथ" ॥

कहते हैं कि उस समय भगवान् ने वहाँ श्रीरामचंद्र जी के स्वरूप में दर्शन दिया, तब तुलसीदास जी ने दंडवत् किया। इस कथा को प्रियादास जी ने भी लिखा है, परंतु इसमें बड़ा संदेह होता है, क्योंकि गोसाइँ जी ने कृष्णगीतावली बनाई, सैकड़ों स्थानों पर अपने विनय के पदों में कृष्णगुणानुवाद किया और वे स्वयं कृष्णलीला (नागदमन-लीला) कराते थे, फिर वे ऐसी द्वेष की बात क्यों कर करेंगे ?।

मधुसूदन सरस्वती से मित्रता

बैजनाथदास ने लिखा है कि शंकरमतानुयायी श्रीमधुसूदन सरस्वती ने वाद में प्रसन्न होकर यह श्लोक इनकी प्रशंसा में बनाया—

"आनन्दकानने कश्चिज्जङ्गमस्तुलसीतरुः।
कवितामञ्जरी यस्य राम-भ्रमर-भूषिता ॥"

पंडित महादेवप्रसाद ने भी भक्तिविलास में लिखा है कि "एक पंडित दिग्विजय की इच्छा से काशी में आया था, परंतु गोसाईं जी का प्रताप देख कर उसने हार मान ली और यह श्लोक बनाया—

"आनन्दकानने ह्यस्मिन् जङ्गमस्तुलसीतरुः ।
कवितामञ्जरी यस्य राम-भ्रमर-भूषिता ॥"

गोपालदास जी ने भी यही पाठ "रामायण-माहात्म्य" में दिया है और लिखा है कि रामायण का आदर काशी के पंडितों ने नहीं किया, उन्होंने कहा कि यदि इसको आनन्दकानन ब्रह्मचारी मानें तो हम लोग भी मानेंगे। ब्रह्मचारी ने रामायण की बड़ी प्रशंसा की और यह ऊपर का श्लोक लिख दिया। काशिराज महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह ने इस श्लोक का अनुवाद इस प्रकार किया है—

"तुलसी जंगम तरु लसे आनँदकानन खेत ।
कविता जाकी मंजरी राम-भ्रमर-रस लेत ॥"

नन्ददास जी

यह बात प्रसिद्ध है कि ब्रज के प्रसिद्ध कवि "रासपंचाध्यायी" के कर्त्ता नंददास जी इनके भाई थे, परंतु इसका कुछ प्रमाण नहीं मिलता। बैजनाथदास ने नंददास जी को इनका गुरुभाई लिखा है। नंददास जी गोकुलस्थ गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथ जी के शिष्य थे और गोसाईं जी के गुरु दूसरे थे। इससे यह भी ठीक नहीं ठहरता। यह संभव है कि दोनों के विद्यागुरु कोई एक हों, या नंददास जी भी पहले नरहरिदास जी के शिष्य रहे हों, पीछे श्रीकृष्णानुरक्ति के कारण गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य हो गए हों।

नंददास जी के विषय में यह कहावत प्रसिद्ध है कि "और सब गड़िया, नंददास जड़िया"।

"दोसौ बावन वैष्णव की वार्त्ता" में इनको तुलसीदास जी * का सगा भाई लिखा है।

नाभा जी से भेंट

"भक्तमाल" के कर्त्ता नाभा जी इनसे मिलने काशी में आए थे, परंतु उस समय गोसाईं जी ध्यान में थे, नाभा जी से कुछ बात न कर सके, नाभा जी उसी दिन वृंदावन चले गए। गोसाईं जी ने जब यह सुना तो वे बहुत पछताए और नाभा जी से मिलने वृंदावन गए। नाभा जी के यहाँ वैष्णवों का भंडारा था, बिना बुलाए गोसाईं जी उसमें गए, नाभा जी ने जान बूझ कर इनका कुछ आदर न किया। परोसने के समय खीर के लिये कोई बर्तन न था, गोसाईं जी ने तुरंत एक साधु का जूता लेकर कहा कि इससे बढ़ कर कौन उत्तम बर्तन है। इस पर नाभा जी ने उन्हें हृदय से लगा लिया और कहा कि आज मुझे भक्तमाल का सुमेरु मिल गया।

मीराबाई का पत्र

मेवार के राजकुमार भोजराज की वधू मीराबाई बड़ी ही भगवद्भक्त थीं। साधुसमागम में उनका समय बीतता था, इससे संसार के उपहास के कारण राणाजी को बहुत बुरा लगता था। उन्होंने बहुत कुछ समझाया बुझाया पर मीराजी ने एक न मानी; तब मीरा को मारने के बहुत उपाय किए गए, परंतु भगवत्कृपा से सब व्यर्थ हो गए।

---

* ये दूसरे तुलसीदास सनाढ्य ब्राह्मण थे जैसा कि नन्ददास के जीवनचरित्र स्पष्ट है। वल्लभसम्प्रदाय में नन्ददास का जीवनचरित्र प्रसिद्ध है।

अंत में कुटुंबवालों की ताड़ना सहते सहते मीराबाई का चित्त बड़ा दुखी हुआ। उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास जी का यश सुना था, उनको पत्र भेजा और पूछा कि मुझको क्या करना चाहिए ?

"स्वस्ति श्रीतुलसी गुण दूखनहरण गुसाईं ।
बारहिँ बार प्रणाम करहुँ अब हरहु सोक समुदाई ॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबन उपाधि बढ़ाई ।
साधुसंग अरु भजन करत मोहिं देत कलेस महाई ॥
बालपने ते मीरा कीन्हीं गिरधरलाल मिताई ।
सो तो अब छूटत नहिँ क्योंहूं लगी लगन बरियाई ॥
मेरे मात पिता के सम हौ हरिभक्तन सुखदाई ।
हम को कहा उचित करिबो है सो लिखिये समुझाई" ॥

गोसाईं जी ने उत्तर में यह पद लिख भेजा—

"जिनके प्रिय न राम बैदेही ।
तजिये तिन्हें कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ॥
* तात मात भ्राता सुत पति हित इन समान कोउ नाहीं ।
* रघुपति विमुख जानि लघु तृन इव तजत न सुकृत डेराहीं ॥
तज्यो पिता प्रहलाद बिभीषन बंधु भरत महतारी ।
गुरु बलि तज्यो कंत व्रज बनितन भे सब मंगलकारी।
नातो नेह राम को मानिय सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं ।
अंजन कौन आँखि जौं फूटै बहुतै कहौं कहाँ लौं ॥
तुलसी सोइ सब भांति आपनो पूज्य प्रान ते प्यारो ।
जा ते होइ सनेह राम सों सोई मतो हमारो ॥"

---

* बहुत पुस्तकों में ये दो चरण नहीं हैं ।

इसको पाकर मीरा जी ने घर छोड़ दिया और वे तीर्थाटन को निकल गईं।

यह आख्यायिका बहुत प्रसिद्ध है, परंतु मीरा जी के समय में और इनके समय में बड़ा अंतर है। मीराबाई की मृत्यु संवत् १६०३ में हुई, इससे तुलसीदास जी की आयु हम कितनी बड़ी मानें—उनका मीराजी के समकालीन होना असंभव है। जान पड़ता है कि तुलसीदास जी और मीराबाई के पत्रव्यवहार की बात बिलकुल मनगढ़ंत है।

अंतकाल

जहाँगीर सन् १६०५ (संवत् १६६२) में गद्दी पर बैठा और सन् १६२७ (संवत् १६८४) में उसकी मृत्यु हुई। इसके राजत्वकाल में सन् १६१६ (संवत् १६७३) में पंजाब में महामारी (प्लेग) फैली और सन् १६१८ (संवत् १६७५) से ८ वर्ष तक आगरे में इसका प्रकोप रहा। तुजुक जहाँगीरी में इसकी भीषणता का पूरा वर्णन है। आगरे में इससे १०० मनुष्य नित्य मरते थे, लोग घरद्वार छोड़ कर भाग गए थे, मुर्दों को उठानेवाला कोई नहीं था, कोई किसी के पास नहीं जाता था।

कवितावली के ३१२ वें कवित्त में तुलसीदास जी ने लिखा है— "बीसी विश्वनाथ की विषाद बड़ो बारानसी बूझिए न ऐसी गति शंकर-सहर की।" इससे यह सिद्ध होता है कि इस समय रुद्रबीसी थी। ज्योतिष की गणना के अनुसार यह समय संवत् १६६५ से १६८५ तक का है।

कवित्त ३१८ में तुलसीदास जी काशी में महामारी होने का वर्णन इस प्रकार करते हैं— शंकर-सहर नर नारि बारि चर गर बिकल

सकल महामारी माया भई है। उछरत, उतरात, हहरात, मरिजात, भभरि भगात जल थल मीचु मई है। देव न दयाल, महिपाल न कृपाल चित, वारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है। पाहि रघुराज पाहि कपिराज रामदूत राम हू की बिगरी तुही सुधारि लई है।

इससे स्पष्ट है कि संवत् १६६५ और १६८५ के बीच में काशी में महामारी का उपद्रव हुआ था। यह समय पंजाब और आगरे में उसके प्रकोप-काल से जो ऊपर दिया है मिलता है।

कवित्त ३१९ में तुलसीदास जी लिखते हैं—

एक तो कराल कलिकाल सूलमूल तामें
कोढ़ में की खाज सी सनीचरी है मीन की।
बेद धर्म दूरि गए भूपचोर भूप भए
साधु सिद्ध मान जात बीते पाप पीन की॥
दूसरे को दूसरो न धाम राम दयाधाम
रावरोई गति बल बिभव बिहीन की॥
लागैगी पै लाज बिराजमान बिरदहिं
महाराज आजु जो न देत दाद दीन की॥

इससे यह प्रकट है कि जिस समय का यह वर्णन है उस समय मीन के शनिश्चर थे। गणना के अनुसार मीन के शनिश्चर संवत् १६६९ से १६७१ तक हुए थे। अतएव यह संभव जान पड़ता है कि काशी में महामारी का प्रकोप उसके आगरे में फैलने के ४-५ वर्ष पहले हुआ था। जो हो इसमें संदेह नहीं कि सत्रहवीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश में काशी में प्लेग फैला हुआ था।

कवितावली का अंतिम अंश हनुमानबाहुक है जो ३२२ वें कवित्त

से आरंभ होता है। इसके कुछ अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं जिससे यह विदित होगा कि तुलसीदास जी को महामारी रोग होगया था।

साहसी समीर के दुलारे रघुबीर जी के **बाँहपीर महाबीर बेगही निबारिये** ॥२४५॥ बाहुतरुमूल बाहु सूल कपि **कछु बेलि उपजी सकेलि कपि केलि ही उपारिये** ॥२४६॥ **आन हनुमान की दोहाई बलवान की सपथ महाबीर की जो रहे पीर बाँह की** ॥२५१॥ आपने ही पाप तें त्रिताप तें कि साप तें **बढ़ी है बाँह बेदन सही न कही जाति है** ॥२५४॥ **पाय पीर पेट पीर बाँह पीर मुंह पीर ज्वराजूर सकल सरीर पीरमई है** ॥३६२॥ **भारी पीर दुसह सरीर ते बिहाल होत सोऊ रघुबीर बिनु दूरि सकै करि को** ॥२६५॥

अंतिम कवित्त यह है—

कहौं हनुमान सों सुजान राम राय सों।
कृपानिधान शंकर सों सावधान सुनिये।
हरष विषाद राग रोष गुन दोषमई।
बिरची बिरंचि सब देखियत दुनिये।
माया जीव काल के करम के सुभाउ के।
करैया राम बेद कहै ऐसी मन गुनिये।
तुम्ह ते कहा न होइ हाहा सो बुझैये मोहि।
हौंहूँ रहौं मौन ही बयो सो जानि लूनिये॥ २६७॥

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि तुलसीदास जी की बाँह में पीड़ा प्रारंभ हुई, फिर कोख में गिलटी हुई। धीरे धीरे पीड़ा बढ़ती गई, ज्वर भी आने लगा, सारा शरीर पीड़ामय हो गया। अनेक उपाय

किए, जंत्र, मंत्र, टोटका, ओषधि, पूजा, पाठ सब कुछ किया पर किसी से कुछ लाभ न हुआ। बीमारी बढ़ती ही गई। सब तरह की प्रार्थना कर जब वे थक गए तो अंत में यही कह कर संतोष करते हैं कि जो बोया है सो काटते हैं। कवित्त २६७ बीमारी के बहुत बढ़ जाने और जीवन से निराश होने पर कहा गया था। ऐसा जान पड़ता है कि इसके अनंतर तुलसीदास जी गंगा तट पर आ पड़े। वहाँ पर क्षेमकरी का दर्शन करके उन्होंने यह कवित्त कहा था जो कवितावली का अंतिम कवित्त है।

कुंकुम रंग सुअंग जितो मुखचंद सो चंदन होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्ध चवै अवलोकत सोच विचार हरी है।
गौरो कि गंग विहंगिनि वेष कि मंजुल मूरति मोद भरी है।
पेपु सपेम पयान समै सब सोच-विमोचन छेमकरी है॥

इस कवित्त में "पेपु सपेम पयान समै" से स्पष्ट है कि यह कवित्त मरने के कुछ ही पूर्व कहा गया था।

कहते हैं कि तुलसीदास जी का अंतिम दोहा यह है—

रामनाम जस बरनि कै, भयउ चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिये, अब ही तुलसी सोन॥

इन सब बातों पर ध्यान देकर यही सिद्धांत निकलता है कि गोस्वामी तुलसीदास जी की मृत्यु काशी में प्लेग के कारण हुई। इनकी मृत्यु के संबंध में यह दोहा प्रसिद्ध है—

संवत सोरह सै असी असी गंग के तीर।
सावन सुकला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर॥

हनुमानबाहुक का ३५९ वाँ कवित्त यह है—

घेरि लियो रोगनि कुजोगनि कुजोगनि ज्यों
बासर सजल घन घटा धुकि धाई है।
बरखत बारि पीर जारिये जवास ज्यों
सरोष बिनु दोष धूम मूल मलिनाई है॥
करुनानिधान हनुमान महाबलवान
हेरि हँसि हाँकि फूँकि फौज तें उड़ाई है।
खाये हुती तुलसी कुरोग राँड राकसिनि
केसरी किसोर राखे बीर बरिआई है॥

इससे यह निकलता है कि तुलसीदास जी वर्षा-ऋतु में रोग-ग्रसित हुए थे, इससे श्रावण मास में उनकी मृत्यु का होना ठीक जान पड़ता है।

ग्रंथ

गोस्वामी जी के बनाए १२ ग्रंथ प्रसिद्ध हैं जिनमें ६ बड़े और ६ छोटे हैं। बड़े ६ ये हैं—

१—दोहावली ३—गीतावली ५—विनयपत्रिका
२—कवित्तरामायण ४—रामाज्ञा ६—रामचरितमानस वा रामायण

छोटे ६ ये हैं—

१—रामलला नहछू ३—बरवै रामायण ५—जानकीमंगल
२—वैराग्यसंदीपनी ४—पार्वतीमंगल ६—कृष्णावली

यों तो गोस्वामी जी के सभी ग्रंथ अच्छे हैं परंतु इनके सर्वोत्तम ग्रंथ रामचरितमानस और विनयपत्रिका हैं।

रामचरितमानस वा रामायण—

इस अद्भुत ग्रंथ को गोसाईं जी ने संवत् १६३१ चैत्र शुक्ल ९ (रामनवमी मंगलवार) को प्रारंभ किया—

संवत सोरह सै इकतीसा। करउँ कथा हरि पद धरि सीसा।
नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

* * * * * * *

विमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम-मद-दंभा।

यह ग्रंथ गोसाईं जी का सर्वोत्तम ग्रंथ है और इसे बनाने का उन्होंने छोटी ही अवस्था में संकल्प किया था। वे स्वयं लिखते हैं—

जागवलिक जो कथा सोहाई। भरद्वाज मुनिवरहि सुनाई।

* * * * * * *

संभु कीन्ह यह चरित सोहावा। बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा।
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। रामभगत अधिकारी चीन्हा॥
तेहि सन जागवलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥

* * * * * * *

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत॥

* * * * * * *

तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा।

उसी समय उन्होंने यह विचार किया—

भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई। ३१।

इससे जान पड़ता है कि गोस्वामीजी को बचपन ही से इस कथा को लिखने की इच्छा थी। नीचे लिखे दोहों से यह जान पड़ता है कि या तो इसको उन्होंने छोटी ही अवस्था में बनाया था अथवा अपनी नम्रता दिखाने के लिये उन्होंने ऐसा कहा है—

संत सरल चित जगतहित जानि सुभाउ सनेहु।
बालविनय सुनि करि कृपा राम-चरन-रति देहु॥ ४॥

कवि कोविद रघुबर चरित मानसु मंजु मराल ।
बाल बिनय सुनि सुरुचि लखि मो पर होहु कृपाल ॥१४॥

यह पता नहीं लगता कि इस ग्रंथ को गोस्वामी जी ने कब और कहाँ पूरा किया, क्योंकि अंत में समय और स्थान नहीं लिखा है, केवल महिमा लिख कर उसे समाप्त कर दिया है। अनुमान से लोग यह कहते हैं कि गोस्वामी जी ने इसे अरण्यकांड तक अयोध्या में और किष्किंधा से उत्तर तक काशी में बनाया, क्योंकि और कहीं काशी का वर्णन न करके किष्किंधाकांड के मंगलाचरण में लिखा है—

मुक्तिजन्म महि जानि ज्ञानखानि अघहानि कर ।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइय कस न ॥

इस ग्रंथ का नाम गोसाईंजी ने राम-चरित-मानस रक्खा परंतु लोकप्रसिद्ध नाम हुआ रामायण। यों ही इसके सात भाग कर के गोसाईं जी ने उन भागों का नाम सोपान अर्थात् सीढ़ी रक्खा परंतु लोकप्रसिद्ध नाम हुआ कांड।

भाषा

यद्यपि हिंदी ग्रंथों में देश-भेद से अनेक प्रकार की भाषाओं का प्रचार पाया जाता है, परंतु सोलहवीं शताब्दी में सूरदासादिक महान् कवियों का उदय व्रज में हुआ और व्रजभाषा ही में हिंदी कविता लिखी जाने लगी। पद्य क्या गद्य भी व्रजभाषा में लिखा जाता था। तुलसीदास जी के समय तक व्रजभाषा का बड़ा प्राबल्य रहा। परंतु तुलसीदास जी ने एक नई ही भाषा की सृष्टि की। उन्होंने व्रजभाषा या किसी विशेष भाषा का बंधन न रक्खा, केवल भावों के प्रकट करने और ग्रंथ को सरल बनाने पर ध्यान दिया और यही कारण है कि

इनका ग्रंथ सर्व-जन-मनोरंजक और आबालवृद्ध-वनिता सब को रुचिकर हुआ। वे स्वयं कहते हैं—

भनिति भदेस वस्तु भलि बरनी। राम कथा जग-मंगल-करनी।

* * * * *

गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान।

* * * * *

सरल कवित कीरति विमल सोइ आदरहिं सुजान।

इनकी भाषा न तो शुद्ध इस देश की भाषा है न व्रजभाषा, इसमें व्रजभाषा के भी शब्द और क्रियाएँ हैं और इस देश के भी, यहाँ तक कि ग्राम्य भाषा (गवाँरी) के शब्द भी दिए हैं। फिर भी समष्टिरूप से यह कहा जा सकता है कि इनकी भाषा अवधी है और उसकी कविता का एक बहुत अच्छा नमूना है। दोहे और चौपाई जैसे इस भाषा में बन सकते हैं वैसे दूसरी में नहीं होते। इसका बड़ा भारी प्रमाण यह है कि सूरदासजी के पद यद्यपि अत्यंत मनोहर हैं पर उनकी चौपाइयाँ किसी काम की नहीं। छंद-विशेष के लिये भाषा-विशेष भी आवश्यक जान पड़ती है।

छंदों की रचना में चंद आदि राजपूताने के कवियों की भाँति भाषा को क्लिष्ट करके अनुस्वार लगा कर संस्कृत के ढँग पर गोसाईंजी ने छंद बनाए हैं।

मंगलाचरण और ग्रंथ की समाप्ति में कुछ श्लोक शुद्ध संस्कृत के भी रक्खे हैं जिनसे यह प्रकट होता है कि ये संस्कृत के ज्ञाता थे और संस्कृत में भी कविता कर लेते थे।

मूलकथा

यद्यपि गोसाईं जी ने वाल्मीकि जी की वंदना भी की है और प्रधान

आश्रय वाल्मीकि रामायण का लिया है तथापि न तो यह उसका अनुवाद है और न कथा-प्रसंग ही उसके अनुसार लिखा गया है। पुराण, अध्यात्मादिरामायण, रघुवंश आदि काव्य, और हनुमन्नाटक आदि नाटकों के आश्रय पर भक्ति की प्रधानता लिए हुए अपनी रुचि के अनुसार तुलसीदासजी ने कथाप्रसंग लिखा है। इस विषय में वे स्वयं भी लिखते हैं —

" नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि। स्वान्तःसुखाय तुलसीरघुनाथगाथाभाषानिबंधमतिमञ्जुलमातनोति " ॥ (बा० कां० ७ वाँ श्लोक)

"यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्नोति रामायणम्। मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्" ॥ (उ० कां० १ श्लोक)

रामायण का महत्त्व।

कहते हैं कि तुलसीदास जी की इस कृति से उस समय के बहुत से काशी के पंडित उनसे असंतुष्ट हो गए थे और उनका विरोध करने पर उद्यत थे। इस कारण गोस्वामी जी को बहुत कष्ट भी सहन करने पड़े, परंतु वे अपने सिद्धांत पर दृढ़ रहे और अंत में उन्हें वह सफलता प्राप्त हुई जिसका सौभाग्य आज तक हिंदी के दूसरे किसी कवि को नहीं प्राप्त हुआ। कहते हैं कि रामायण की प्रामाणिकता पर बहुत से पंडित सहमत नहीं होते थे तब यह निश्चय हुआ कि यदि विश्वनाथ जी इसे स्वीकार करें तो यह सब को मान्य हो। निदान रामायण विश्वनाथ जी के मंदिर में रात को रख दी गई। सबेरे देखा गया कि विश्वनाथ जी ने उस पर अपनी स्वीकृति लिख दी है।

डाक्टर ग्रिअर्सन ने बहुत ही ठीक लिखा है कि यद्यपि तुलसीदास जी ने कबीर आदि की तरह अपना कोई अलग मत नहीं चलाया परंतु चाहे किसी मत और धार्मिक विश्वास का हिंदू क्यों न हो वह गोस्वामी तुलसीदास जी के दिखाए मार्ग का अवश्य अनुसरण करेगा। इन्होंने धर्मनीति, समाजनीति और राजनीति को आर्ष ग्रंथों के अनुसार सीधी सादी भाषा में इस प्रकार से उदाहरण के साथ लिखा है कि शैव, शाक्त, स्मार्त, वैष्णव किसी के सिद्धांत से विरोध नहीं पड़ता और सभी उसका सम्मान करते हैं, तथा साधारण लोगों की समझ में भी सब कठिन बातें खचित हो जाती हैं।

रामायण का प्रभाव यद्यपि थोड़ा या बहुत सारे भारतवर्ष पर है, परंतु विहार से पंजाब और हिमालय से विंध्याचल तक तो नौ करोड़ मनुष्यों पर इसका पूरा राज्य है। ऐसा कोई गाँव नहीं है जहाँ रामायण की पुस्तक न हो और ऐसा कोई अनपढ़ मनुष्य भी नहीं है जिसकी ज़बान पर दो चार दोहे चौपाई न हों। कहावत (मसल), उदाहरण और नीति के लिये रामायण के दोहे चौपाई रात दिन काम में लाए जाते हैं। केवल रामायण पढ कर हज़ारों मनुष्य बड़े ज्ञानी बन जाते हैं और हज़ारों ही प्रेम में मग्न होकर पूरे विरक्त हो जाते हैं। धर्मानुशासन के लिये तो यह पूरे धर्मशास्त्र का काम देती है। हिंदूसमाज मुसल्मानों के समय में जैसा शिथिल हो गया था यदि यह अपूर्व ग्रंथ न बना होता तो आज दिन धर्मभाव तो जैसे शिथिल हो गए होते वे तो हो ही जाते परंतु चरित्र भी बहुत कुछ बिगड़ गया होता। लोग रामायण के उपदेशों से बुरे कामों से बहुत कुछ बचते हैं। इसके उपदेश स्त्री और पुरुष दोनों के लिये समान हैं।

धर्म और चारित्र्य के अतिरिक्त विद्याप्रचार में भी इसने बहुत

कुछ सहायता दी। लाखों मनुष्य केवल रामायण ही पढ़ने के लिये पढ़ना लिखना सीखते हैं। निदान रामायण का इतना बड़ा उपकार हिंदुओं के सिर पर है कि वे कभी गोसाईं जी से उऋण नहीं हो सकते।

डाक्टर ग्रिअर्सन इसको हिंदुओं की बाइबिल कहते हैं, वास्तव में इसका आदर राजाधिराज के महलों से लेकर कंगाल की झोपड़ी तक में एक सा है।

रामायण के अर्थ की गंभीरता

यद्यपि रामायण बहुत ही सीधी सादी भाषा में लिखी गई है परंतु उसके भाव और अर्थ बहुत ही गंभीर हैं, इस पर न जाने कितनी ही टीकाएँ बन गईं और हर एक टीकाकार अपना पांडित्य और चतुरता दिखलाने के लिये सैकड़ों नई कल्पनाएँ कर गया है, परंतु तो भी शंकाओं और अर्थों की इति नहीं होती। पंडित लोग जैसे ही इसके अनेक अर्थ करने में अपना पांडित्य खर्च करते हैं, वैसे ही गँवार लोग अपना गवाँरपन दिखाने में भी नहीं चूकते। एक गवैया पंडित जो एक दिन कथा कह रहे थे, प्रसंग था विभीषण का श्रीरामचंद्रजी की शरण में आना, विभीषण ने कहा—

"तात लात रावन मोहिं मारा"

पंडितजी ने अर्थ किया कि "भैया हो, जाड़ा क दिन रहल, रवनवाँ आग तापत रहल, सो ताते (गरम ही गरम) लात मरलेस"।

निदान जो अर्थ कभी गोसाईं जी ने सोचा भी न था वह अब लोग अपनी बुद्धिमत्ता से निकालते हैं।

पहले के भाषा कवि

गोसाईं जी के पहले भाषा के बहुतेरे कवि हो गए थे। परंतु

गोसाईं जी ने उनका कहीं नाम नहीं लिखा, केवल इन्हीं दो चौपाइयों में उनका उल्लेख कर दिया है–

"जे प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने॥
भए जे अहहिं जे होइहहिं आगे। प्रनवउँ सबनि कपट छल त्यागे॥

सांसारिक लोगों की प्रशंसा

गोसाईं जी ने लिखा है कि "कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लागि पछिताना"। इस बात का निवाह उन्होंने आजन्म किया। कई ग्रंथ उन्होंने बनाए परंतु कहीं एक छंद भी किसी मनुष्य की प्रशंसा में नहीं बनाया, केवल मित्रता के नाते टोडर के लिये इनके लिखे चार दोहे मिलते हैं। लोकप्रसिद्धि के अनुसार बादशाह से लेकर कंगाल तक बड़े से बड़े भक्त महात्मा तथा पंडितों से इनका हेल मेल था, परंतु किसी प्रकार से किसी के विषय में इन्होंने कभी कुछ न लिखा। उन्होंने अपनी कवितारूप सरस्वती से सारे देश को भगवद्भक्ति रूपी धारा से प्लावित कर दिया।

निरभिमानता

रामायण में गोसाईं जी ने अपनी हीनता बहुत ही दिखलाई है, उन्होंने यहां तक लिख दिया है कि—

"कवि न होउँ नहिँ चतुर प्रवीनू। सकल कला सब विद्याहीनू।
\+ + + + + +
कवित विवेक एक नहिँ मोरे। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे।
\+ + + + + +
वंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के।
तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी। धिग धरमध्वज धँधरकधोरी।
जौं अपुन अवगुन सब कहऊँ। बाढ़इ कथा पार नहिँ लहऊँ"।

निदान तुलसीदासजी ने अपने को सब से हीन समझा था और इसी से भगवान ने उनको सब से ऊँचा पद दिया।

गोसाईंजी का मत

गोसाईं जी स्मार्त्त वैष्णव थे। जिस दिन उन्होंने रामायण आरंभ की उस दिन मंगलवार को उदयकाल में रामनवमी नहीं थी किंतु मध्याह्नव्यापिनी थी, इसलिये स्मार्त्त वैष्णवों ही के मत से उस दिन रामनवमी होती है। और वैष्णवों के मत से दूसरे दिन बुधवार को अविद्धा होने से रामनवमी होती है। स्मार्त्त वैष्णव सब देवताओं का पूजन जप करते हैं, किसी से विरोध नहीं रखते। यही रीति तुलसीदास की भी थी जोकि उनके प्रत्येक ग्रंथ से स्पष्ट है।

इसमें संदेह नहीं कि तुलसीदास जी का यदि पूर्ण रूप से वर्णन किया जाय और उनके काव्य के गुण-दोषों पर विचार किया जाय तो एक बहुत बड़ा ग्रंथ बन जाय। दु:ख की बात है कि हिंदी के ऐसे बड़े कवि के जीवनचरित्र को जानने के लिये हमें किंवदंतियों का ही आश्रय लेना पड़ता है। जिन घटनाओं का निदर्शन स्थूल रूप से गोस्वामी जी ने अपने ग्रंथों में आप किया है उनको छोड़ कर अन्य किसी घटना का कोई भी दृढ़ प्रमाण हमें नहीं मिलता। अतएव हमने इस निबंध के लिखने में यही सिद्धांत रक्खा है कि जो जो बातें तुलसीदास जी के विषय में प्रसिद्ध हैं उनका उल्लेख मात्र कर दें। उन पर अपना दृढ़ मत देने या उनकी पूरी पूरी छान बीन करने का हमने उद्योग नहीं किया, क्योंकि इससे कोई फल नहीं निकलता। पहले सिद्ध महात्मा यों ही अद्भुत जीव होते हैं, फिर उनके भक्त अनुयायी उनकी अद्भुतता की मात्रा को इतना बढ़ा देते हैं कि सत्यासत्य का निर्णय करना कठिन हो जाता है।

रही तुलसीदास जी की कवित्व-शक्ति, इसके लिये किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं ? जो प्रत्यक्ष है उसके लिये किसी की साक्षी का प्रयोजन ही क्या हो सकता है। हाँ, यह बात अवश्य है कि इसके गुण दोष का निर्णय करना सब लोगों का काम नहीं है। सर्व-साधारण के लिये तो इतना ही अलम् है कि उनके ग्रंथों के पढ़ने से लोगों को अलौकिक आनंद प्राप्त हो। यही काव्य का मुख्य गुण भी है। रही सूक्ष्मताएँ, उनका सर्व-साधारण से कोई प्रयोजन नहीं है और न उन्हें इसकी आवश्यकता ही है। जिन महानुभावों को इसकी आवश्यकता हो वे कृपा कर मिश्र-बंधुओं के हिंदी-नवरत्न को देखें; उसमें उन्हें बहुत कुछ सामग्री इस बात के जानने को मिल जायगी।

श्यामसुंदरदास।

संक्षिप्त रामायण।

बाल कांड।

सो०—जेहि सुमिरत सिधि होइ, गन-नायक करि-बर-बदन।
करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धि-रासि सुभ-गुन-सदन॥ १॥
मूक होइ बाचाल, पंगु चढ़इ गिरि-बर गहन।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवउ सकल-कलि-मल-दहन॥ २॥
नील - सरोरुह - स्याम, तरुन - अरुन - बारिज - नयन।
करउ सो मम उर धाम, सदा छीर - सागर - सयन॥ ३॥
कुंद - इंदु - सम देह, उमा - रमन करुना - अयन।
जाहि दीन पर नेह, करउ कृपा मर्दन - मयन॥ ४॥
बंदउँ गुरु - पद - कंज, कृपा - सिंधु नर - रूप हरि।
महा- मोह - तम - पुंज, जासु बचन रवि-कर-निकर॥ ५॥

बंदउँ गुरु-पद - पदुम - परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।
अमिय-मूरि-मय चूरन चारू। समन सकल-भव-रुज-परिवारू।
सुकृत संभु-तन बिमल बिभूती। मंजुल मंगल - मोद-प्रसूती।
जन-मन-मंजु - मुकुर-मल - हरनी। किए तिलक गुन-गन-बस-करनी।
श्रीगुरु-पद-नख-मनि - गन - जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।
दलन मोह-तम सो सु - प्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू।
उघरहिँ बिमल बिलोचन ही के। मिटहिँ दोष दुख भव-रजनी के।
सूझहिँ राम-चरित-मनि-मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।

दो०—जथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं सैल बन, भूतल भूरि निधान॥ ६॥

गुरु-पद-रज-मृदु-मंजुल-अंजन। नयन-अमिय दृग-दोष-बिभंजन।
तेहि करि बिमल बिवेक बिलोचन। बरनउँ राम-चरित भव-मोचन।
बंदउँ प्रथम मही-सुर-चरना। मोह-जनित संसय सब हरना।
सुजन-समाज सकल-गुन-खानी। करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी।
साधु-चरित सुभ सरिस कपासू। निरस बिसद गुन-मय फल जासू।
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहि जग जसु पावा।
मुद-मंगल-मय संत-समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू।
राम-भगति जँह सुरसरि-धारा। सरसइ ब्रह्म-बिचार-प्रचारा।
बिधि-निषेध-मय कलि-मल-हरनी। करम-कथा रबि-नंदिनि बरनी।
हरि-हर-कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल-मुद-मंगल-देनी।
बट बिस्वासु अचल निज धर्मा। तीरथराज समाज सुकर्मा।
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा।
अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ।

दो०—सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिँ अति अनुराग।
लहहिँ चारि फल अछत तनु, साधु-समाजु प्रयाग॥ ७॥

मज्जन-फल पेखिय ततकाला। काक होहिं पिक बकउ मराला।
सुनि आचरज करइ जनि कोई। सत-संगति-महिमा नहिं गोई।
बालमीकि नारद घटजोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी।
जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना।
मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई।
सो जानब सत-संग-प्रभाऊ। लोकहु बेद न आन उपाऊ।
बिनु सत-संग बिबेक न होई। राम-कृपा बिनु सुलभ न सोई।

सत-संगति मुद-मंगल - मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला ।
सठ सुधरहिं सत-संगति पाई । पारस परसि कुधातु सोहाई ।
विधि वस सुजन कुसंगति परहीं । फनि-मनि-सम निज गुन अनुसरहीं ।
विधि-हरि-हर-कवि-कोविद-बानी । कहत साधु-महिमा सकुचानी ।
सो मो सन कहि जात न कैसे । साक-बनिक मनि-गन-गुन जैसे ।

दो०—बंदउँ संत समान - चित, हित अनहित नहिं कोउ ।
अंजुलि-गत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोउ ॥ ८ ॥
संत सरल-चित जगत-हित, जानि सुभाउ सनेहु ।
बाल-विनय सुनि करि कृपा, राम-चरन - रति देहु ॥ ९ ॥

बहुरि बंदि खल-गन सतिभायें । जे विनु काज दाहिने बायें ।
पर-हित-हानि लाभ जिन्ह केरे । उजरे हरष बिषाद बसेरे ।
हरि-हर-जस राकेस राहु से । पर-अकाज भट सहसबाहु से ।
जे पद-दोष लखहिं सहसाखी । पर-हित-घृत जिनके मन माखी ।
तेज कृसानु रोष महिषेसा । अघ-अवगुन - धन-धनी धनेसा ।
उदय केतु-सम हित सबही के । कुंभकरन सम सोवत नीके ।
पर-अकाजु लगि तनु परिहरहीं । जिमि हिम-उपल कृषी दलि गरहीं ।
बंदउँ खल जस सेष सरोषा । सहस-बदन बरनइ पर-दोषा ।
पुनि प्रनवउँ पृथुराज-समाना । पर-अघ सुनइ सहस-दस काना ।
बहुरि सक्र-सम बिनवउँ तेही । संतत सुरानीक हित जेही ।
बचन-बज्र जेहि सदा पिआरा । सहस-नयन पर-दोष निहारा ।

दो०—उदासीन-अरि-मीत-हित, सुनत जरहिं खल-रीति ।
जानि पानि-जुग जोरि जन, बिनती करउँ सप्रीति ॥ १० ॥

मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा । तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा ।
पायस पलिअहि अति अनुरागा । होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा ।

बंदउँ संत असज्जन चरना । दुख-प्रद उभय बीच कछु बरना ।
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं । मिलत एक दारुन दुख देहीं ।
उपजहिं एक संग जल माहीं । जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं ।
सुधा-सुरा-सम साधु असाधू । जनक एक जग जलधि अगाधू ।
भल अनभल निज निज करतूती । लहत सुजस अपलोक बिभूती ।
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू । गरल अनल कलि-मल सरि व्याधू ।
गुन अवगुन जानत सब कोई । जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ।

दो०—भली भलाइहि पै लहइ, लहइ निचाइहि नीचु ।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीचु ॥ ११ ॥

खल-अघ-अगुन साधु-गुन-गाहा । उभय अपार उदधि अवगाहा ।
तेहि ते कछु गुन-दोष बखाने । संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ।
भलेउ पोच सब बिधि उपजाए । गनि गुन-दोष बेद बिलगाए ।
कहहिं बेद इतिहास पुराना । बिधि-प्रपंच गुन-अवगुन-साना ।
दुख सुख पाप पुन्य दिन राती । साधु असाधु सुजाति कुजाती ।
दानव देव ऊँच अरु नीचू । अमिय सजीवन माहुर मीचू ।
माया ब्रह्म जीव जगदीसा । लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा ।
कासी मग सुरसरि कविनासा । मरु मारव महि-देव गवासा ।
सरग नरक अनुराग बिरागा । निगम अगम गुन-दोष-बिभागा ।

दो०—जड़-चेतन-गुन-दोष-मय, बिस्व कीन्ह करतार ।
संत-हंस गुन गहहि पय, परिहरि बारि-बिकार ॥ १२ ॥

अस बिबेक जब देइ बिधाता । तब तजि दोष गुनहि मनु राता ।
काल-सुभाउ करम बरियाई । भलेउ प्रकृति-बस चुकइ भलाई ।
सो सुधारि हरि-जन जिमि लेहीं । दलि दुख दोष बिमल जसु देहीं ।
खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू । मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू ।

लखि सुबेष जग-बंचक जेऊ। बेष-प्रताप पूजिअहिं तेऊ।
उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू।
किएहु कुबेषु साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू।
हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहु वेद बिदित सब काहू।
गगन चढ़इ रज पवन-प्रसंगा। कीचहि मिलइ नीच-जल-संगा।
साधु-असाधु-सदन सुक सारी। सुमिरहिं रामु देहिं गनि गारी।
धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिय पुरान मंजु मसि सोई।
सोइ जल अनल-अनिल-संघाता। होइ जलद जग-जीवन-दाता।

दो०—ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग॥ १३॥
सम प्रकास तम पाख दुहुँ, नाम भेद बिधि कीन्ह।
ससि-पोषक-सोषक समुझि, जग जस अपजस दीन्ह॥ १४॥
जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राम-मय जानि।
बंदउँ सब के पद-कमल, सदा जोरि जुग-पानि॥ १५॥
देव दनुज नर नाग खग, प्रेत पितर गंधर्ब।
बंदउँ किन्नर रजनिचर, कृपा करहु अब सर्ब॥ १६॥

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल-थल-नभ-बासी।
सीय-राम-मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग-पानी।
जानि कृपा कर किंकर मोहू। सब मिलि करहु छाँड़ि छल छोहू।
निज-बुधि-बल-भरोस मोहि नाहीं। तातें बिनय करउँ सब पाहीं।
करन चहउँ रघुपति-गुन-गाहा। लघु मति मोरि चरित अवगाहा।
सूझ न एकउ अंग उपाऊ। मन मति रंक मनोरथ राऊ।
मति अति नीच ऊँच रुचि आछी। चहिय अमिय जग जुरइ न छाछी।
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बाल-बचन मन लाई।

जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित-मन पितु अरु माता।
हँसिहहिं कूर कुटिल कुविचारी। जे पर-दूषन-भूषन-धारी।
निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका।
जे पर-भनिति सुनत हरषाहीं। ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं।
जग बहु नर सुरसरि-सम भाई। जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई।
सज्जन सुकृत-सिंधु-सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई।
दो०—भाग छोट अभिलाषु बड़, करउँ एक बिस्वास।
पैहहिं सुख सुनि सुजन सब, खल करिहहिं उपहास॥ १७॥
खल-परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिं कल-कंठ कठोरा।
हंसहिं बक दादुर चातकही। हँसहिं मलिन खल बिमल बतकही।
कवित - रसिक न राम-पद-नेहू। तिन कहँ सुखद हास-रस एहू।
भाषा-भनिति भोरि मति मोरी। हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी।
प्रभु-पद-प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहिं कथा सुनि लागिहि फीकी।
हरि-हर-पद-रति मति न कुतरकी। तिन्ह कहँ मधुर कथा रघुबर की।
राम-भगति-भूषित जिय जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी।
कवि न होउँ नहिं बचन-प्रबीनू। सकल कला सब बिद्या-हीनू।
आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक बिधाना।
भाव-भेद रस-भेद अपारा। कवित-दोष-गुन बिबिध प्रकारा।
कबित - बिबेक एक नहिं मोरे। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे।
दो०—भनिति मोरि सब-गुन-रहित, बिस्व-बिदित गुन एक।
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति, जिन्ह के बिमल बिबेक॥ १८॥
एहि महँ रघुपति-नाम उदारा। अति पावन पुरान-स्रुति-सारा।
मंगल-भवन अमंगल-हारी। उमा-सहित जेहि जपत पुरारी।
भनिति बिचित्र सु-कवि-कृत जोऊ। राम-नाम बिनु सोह न सोऊ।

विधु-बदनी सब भाँति सवाँरी। सोह न बसन बिना बर नारी।
सब-गुन-रहित कु-कबि-कृत-बानी। राम-नाम-जस-अंकित जानी।
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुन-ग्राही।
जदपि कवित रस एकउ नाहीं। राम-प्रताप प्रगट एहि माहीं।
सोइ भरोस मोरे मन आवा। केहि न सुसंग बड़प्पन पावा।
धूमउ तजइ सहज करुआई। अगरु-प्रसंग सुगंध बसाई।
भनिति भदेस वस्तु भलि बरनी। राम-कथा जग - मंगल-करनी।

छंद—मंगल-करनि कलि-मल-हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कविता-सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की॥
प्रभु-सुजस-संगति भनिति भलि होइहि सुजन-मन-भावनी।
भव-अंग भूति मसान की सुमिरत सोहावनि पावनी॥

दो०—प्रिय लागिहि अति सबहि मम, भनिति राम-जस-संग।
दारु बिचारु कि करइ कोउ, बंदिय मलय प्रसंग॥ १९॥
स्याम सुरभि पय बिसद अति, गुनद करहिं सब पान।
गिरा-ग्राम्य सिय-राम-जस, गावहिं सुनहिं सुजान॥ २०॥

मनि-मानिक-मुकुता-छवि जैसी। अहि-गिरि-गज-सिर सोह न तैसी।
नृप-किरीट तरुनी-तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई।
तैसेहि सु-कवि-कवित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छवि लहहीं।
भगति हेतु बिधि-भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई।
राम-चरित-सर बिनु अन्हवाये। सो स्रम जाइ न कोटि उपाये।
कबि कोबिद अस हृदय बिचारी। गावहिं हरि-जस कलि-मल-हारी।
कीन्हे प्राकृत-जन-गुन-गाना। सिर धुनि गिरा लागि पछिताना।
हृदय सिंधु मति सीपि समाना। स्वाती सारद कहहिं सुजाना।
जौं बरखइ बर बारि बिचारू। होहिं कवित मुकता-मनि चारू।

दो०—जुगुति बेधि पुनि पोहियहि, राम-चरित बर ताग।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर, सोभा अति अनुराग॥ २१॥

जे जनमे कलि-काल कराला। करतब बायस बेष मराला।
चलत कुपंथ बेद-मग छाँड़े। कपट-कलेवर कलि-मलि-भाँड़े।
बंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के।
तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी। धिक धरमध्वज धँधरकधोरी।
जौं अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढ़इ कथा पार नहिं लहऊँ।
तातें मैं अति अलप बखाने। थोरे महँ जानिहहिं सयाने।
समुझि बिबिध बिधि बिनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी।
एतेहु पर करिहहिं जे संका। मोहिं ते अधिक ते जड़-मति-रंका।
कबि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ। मति-अनुरूप राम-गुन गावउँ।
कहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत संसारा।
जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं।
समुझत अमित राम-प्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई।

दो०—सारद शेष महेस बिधि, आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन, करहिं निरंतर गान॥ २२॥

सब जानत प्रभु-प्रभुता सोई। तदपि कहे बिनु रहा न कोई।
तहाँ बेद अस कारन राखा। भजन-प्रभाउ भाँति बहु भाखा।
एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर-धामा।
ब्यापक बिस्व-रूप भगवाना। तेहि धरि देह चरित कृत नाना।
सो केवल भगतन्ह हित लागी। परम कृपाल प्रनत-अनुरागी।
जेहि जन पर ममता अति छोहू। जेहि करुना करि कीन्ह न कोहू।
गई बहोर गरीब-नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू।
बुध बरनहिं हरि-जस अस जानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी।

तेहि बल मैं रघुपति-गुन-गाथा। कहिहउँ नाइ राम-पद माथा।
मुनिन्ह प्रथम हरि-कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहिं भाई।

दो०—अति अपार जे सरित बर, जौं नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु, बिनु स्रम पारहि जाहिं ॥ २३ ॥

एहि प्रकार बल मनहिं देखाई। करिहउँ रघुपति-कथा सोहाई।
व्यास आदि कवि-पुंगव नाना। जिन्ह सादर हरि-सुजस बखाना।
चरन-कमल बंदउँ तिन्ह केरे। पुरवहु सकल मनोरथ मेरे।
कलि के कबिन्ह करउँ परनामा। जिन्ह बरने रघुपति-गुन-ग्रामा।
जे प्राकृत कबि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरि-चरित बखाने।
भये जे अहहिं जे होइहहिं आगे। प्रनवउँ सबहिं कपट सब त्यागे।
होहु प्रसन्न देहु बरदानू। साधु - समाज भनिति - सनमानू।
जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो स्रम बादि बाल-कबि करहीं।
कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुर-सरि-सम सब कहँ हित होई।
राम-सुकीरति भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहिं अँदेसा।
तुम्हरी कृपा सुलभ सोउ मोरे। सिअनि सोहावनि टाट पटोरे।

दो०—सरल कवित कीरति बिमल, सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बैर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहिं बखान ॥२४॥
सो न होइ बिनु बिमल मति, मोहिं मति-बल अति थोर।
करहु कृपा हरि-जस कहउँ, पुनि पुनि करउँ निहोर ॥२५॥
कबि-कोविद रघुबर-चरित, - मानस - मंजु - मराल।
बाल-बिनय सुनि सुरुचि लखि, मो पर होहु कृपाल ॥२६॥

सो०—बंदउँ मुनि-पद - कंजु, रामायन जेहिं निरमयेउ।
सखर सकोमल मंजु, दोष-रहित दूषन-सहित ॥ २७ ॥

वंदउँ चारिउ वेद, भव-बारिधि-बोहित-सरिस।
जिन्हहिं न सपनेहु खेद, बरनत रघुबर बिसद जस ॥ २८ ॥
वंदउँ बिधि-पद - रेनु, भव-सागर जेहि कीन्ह जहँ।
संत सुधा - ससि - धेनु, प्रगटे खल बिष - बारुनी ॥ २९ ॥
दो०—बिबुध-बिप्र-बुध-ग्रह-चरन, वंदि कहउँ कर जोरि।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल, मंजु मनोरथ मोरि ॥ ३० ॥
पुनि वंदउँ सारद सुर-सरिता। जुगल पुनीत मनोहर-चरिता।
मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अबिबेका।
गुरु पितु मातु महेस भवानी। प्रनवउँ दीन-बंधु दिन-दानी।
सेवक स्वामि सखा सिय-पी के। हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के।
कलि बिलोकि जग-हित हर गिरिजा। साबर-मंत्र-जाल जिन्ह सिरजा।
अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाउ महेस-प्रतापू।
सो महेस मोहिं पर अनुकूला। करहिं कथा मुद-मंगल-मूला।
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनउँ राम-चरित चित-चाऊ।
भनिति मोरि सिव-कृपा बिभाती। ससि-समाज मिलि मनहुँ सुराती।
जे एहि कथहिं सनेह-समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता।
होइहहिं राम-चरन-अनुरागी। कलि-मल-रहित सु-मंगल-भागी।
दो०—सपनेहुँ साचेहु मोहि पर, जौ हर-गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब, भाषा-भनिति-प्रभाउ ॥ ३१ ॥
जागबलिक जो कथा सोहाई। भरद्वाज मुनिबरहि सुनाई।
कहिहउँ सोइ संवाद बखानी। सुनहु सकल सज्जन सुख मानी।
संभु कीन्ह यह चरित सोहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा।
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। राम-भगति - अधिकारी चीन्हा।
तेहि सन जागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा।

ते स्रोता बकता सम-सीला । सम-दरसी जानहिं हरि-लीला ।
जानहिं तीनि काल निज ज्ञाना । कर-तल-गत आमलक-समाना ।
अउरउ जे हरि-भगत सुजाना । कहहिं सुनहिं समुझहिं बिधि नाना ।

दो०—मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकरखेत ।
समुझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत ॥ ३२ ॥
स्रोता बकता ज्ञान-निधि, कथा राम कै गूढ़ ।
किमि समुझइ यह जीव जड़, कलि-मल-ग्रसित बिमूढ़ ॥ ३३ ॥

तदपि कही गुरु बारहिं बारा । समुझि परी कछु मति अनुसारा ।
भाषाबद्ध करब मैं सोई । मोरे मन प्रबोध जेहि होई ।
जस कछु बुधि-बिवेक-बल मेरे । तस कहिहउँ हिय हरि के प्रेरे ।
निज संदेह-मोह-भ्रम-हरनी । करउँ कथा भव-सरिता-तरनी ।
संवत सोरह सै इकतीसा । करउँ कथा हरि-पद धरि सीसा ।
नौमी भौम-बार मधु-मासा । अवधपुरी यह चरित प्रकासा ।
जेहि दिन राम-जनम स्रुति गावहिं । तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं ।
असुर नाग खग नर मुनि देवा । आइ करहिं रघुनायक सेवा ।
जनम-महोत्सव रचहिं सुजाना । करहिं राम-कल-कीरति गाना ।

दो०—मज्जहिं सज्जन - बृंद बहु, पावन सरजू - नीर ।
जपहिं राम धरि ध्यान उर, सुंदर स्याम सरीर ॥ ३४ ॥

दरस परस मज्जन अरु पाना । हरइ पाप कह बेद पुराना ।
नदी पुनीत अमित महिमा अति । कहि न सकइ सारदा बिमल-मति ।
राम-धाम-दा पुरी सुहावनि । लोक समस्त बिदित जग-पावनि ।
चारि खानि जग जीव अपारा । अवध तजे तन नहिं संसारा ।
सब बिधि पुरी मनोहर जानी । सकल सिद्धि-प्रद मंगल-खानी ।
बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा । सुनत नसाहिं काम मद दंभा ।

राम-चरित-मानस एहि नामा । सुनत स्रवन पाइय बिस्रामा ।
मनि-करि विषय-अनल-बन जरई । होइ सुखी जौं एहि सर परई ।
राम-चरित-मानस मुनि-भावन । बिरचेउ संभु सुहावन पावन ।
त्रिबिध-दोष - दुख-दारिद - दावन । कलि-कुचालि कुलि-कलुष-नसावन ।
रचि महेस निज मानस राखा । पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा ।
तातें राम-चरित-मानस बर । धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर ।
कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई । सादर सुनहु सुजन मन लाई ।

दो०—अब रघुपति-पद-पंकरुह, हिय धरि पाइ प्रसाद ।
कहउँ जुगुल मुनि-वर्य कर, मिलन सुभग संवाद ॥ ३५ ॥

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा । तिन्हहिं रामपद अति अनुरागा ।
तापस सम-दम-दया-निधाना । परमारथ-पथ परम सुजाना ।
माघ मकर-गत रबि जब होई । तीरथ-पतिहि आव सब कोई ।
देव दनुज किन्नर नर-स्रेनी । सादर मज्जहिं सकल त्रिवेनी ।
पूजहिं माधव–पद–जलजाता । परसि अखय-वट हरषहिं गाता ।
भरद्वाज-आस्रम अति पावन । परम रम्य मुनिवर-मन-भावन ।
तहाँ होइ मुनि-रिषय-समाजा । जाहिं जे मज्जहिं तीरथ-राजा ।
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा । कहहिं परसपर हरि-गुन-गाहा ।

दो०—ब्रह्म-निरूपन धर्म-विधि, बरनहिं तत्त्व - विभाग ।
कहहि भगति भगवंत कै, संजुत- ज्ञान - बिराग ॥ ३६ ॥

एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं । पुनि सब निज निज आस्रम जाहीं ।
प्रति संबत अति होइ अनंदा । मकर मज्जि गवनहिं मुनि-बृंदा ।
एक बार भरि मकर नहाए । सब मुनीस आस्रमन्ह सिधाए ।
जागबलिक मुनि परम बिबेकी । भरद्वाज राखे पद टेकी ।
सादर चरन-सरोज पखारे । अति पुनीत आसन बैठारे ।

करि पूजा मुनि सुजस बखानी। बोले अति पुनीत मृदु बानी।
नाथ एक संसउ बड़ मोरे। कर-गत बेद-तत्त्व सब तोरे।
कहत सो मोहिं लाग भय लाजा। जौ न कहउँ बड़ होइ अकाजा।

दो०—संत कहहिं अस नीति प्रभु, स्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न बिमल बिबेक उर, गुरु सन किये दुराव॥ ३७॥

अस बिचार प्रगटउँ निज मोहू। हरहु नाथ करि जन पर छोहू।
राम-नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा।
संतत जपत संभु अबिनासी। सिव भगवान ज्ञान-गुन-रासी।
आकर चारि जीव जग अहहीं। कासी मरत परम पद लहहीं।
सोपि राम-महिमा मुनि-राया। सिव उपदेस करत करि दाया।
राम कवन प्रभु पूछउँ तोहीं। कहिय बुझाइ कृपा-निधि मोहीं।
एक राम अवधेस-कुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा।
नारि-बिरह दुख लहेउ अपारा। भयउ रोष रन रावन मारा।

दो०—प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्य-धाम सर्वज्ञ तुम्ह, कहहु बिबेक बिचारि॥ ३८॥

जैसे मिटइ मोर भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी।
जागबलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहिं बिदित रघुपति-प्रभुताई।
राम-भगत तुम्ह मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी।
चाहहु सुनइ राम-गुन गूढा। कीन्हहु प्रस्न मनहुँ अति मूढा।
ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी।
तात सुनहु सादर मन लाई। कहउँ राम कै कथा सुहाई।
महा-मोह-महिषेस बिसाला। राम-कथा कालिका कराला।
राम-कथा ससि-किरन समाना। संत-चकोर करहिं जेहि पाना।
अवधपुरी रघु-कुल-मनि-राऊ। बेद-बिदित तेहि दसरथ नाऊ।

धरम-धुरंधर गुन-निधि ज्ञानी। हृदय भगति मति सारँग-पानी।
दो०—कौसल्यादि नारि पिय, सब आचरन पुनीत।
पति-अनुकूल प्रेम दृढ़, हरि-पद-कमल बिनीत ॥ ३९ ॥
एक बार भूपति मन माहीं। भइ गलानि मोरे सुत नाहीं।
गुरु-गृह गयेउ तुरत महिपाला। चरन-लागि करि बिनय बिसाला।
निज दुख सुख सब गुरुहिं सुनायउ। कहि बसिष्ठ बहु बिधि समझायउ।
धरहु धीर होइहहिं सुत चारी। त्रि-भुवन-विदित भगत-भय-हारी।
सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्र-काम सुभ जज्ञ करावा।
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हे।
जो बसिष्ठ कछु हृदय बिचारा। सकल काज भा सिद्ध तुम्हारा।
यह हबि बाँटि देहु नृप जाई। जथा-जोग जेहि भाग बनाई।
दो०—तब अदृस्य भये पावक, सकल सभहि समुझाइ।
परमानंद - मगन नृप, हरष न हृदय समाइ ॥ ४० ॥
तबहि राय प्रिय नारि बोलाईं। कौसल्यादि तहाँ चलि आईं।
अरध भाग कौसल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा।
कैकेई कहँ नृप सो दयऊ। रहेउ सो उभय भाग पुनि भयऊ।
कौसल्या कैकई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि।
एहि बिधि गर्भ सहित सब नारी। भईं हृदय हरषित सुख भारी।
जा दिन तें हरि गर्भहि आये। सकल लोक सुख संपति छाये।
मंदिर महँ सब राजहिं रानी। सोभा सील तेज की खानी।
सुख-जुत कछुक काल चलि गयऊ। जेहि प्रभु प्रकट सो अवसर भयऊ।
दो०—जोग लगन ग्रह बार तिथि, सकल भये अनुकूल।
चर अरु अचर हरष-जुत, राम-जनम सुख-मूल ॥ ४१ ॥
नवमी तिथि मधु-मास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरि-प्रीता।

मध्य दिवस अति सीत न घामा । पावन काल लोक-बिस्रामा ।
सीतल मंद सुरभि वह बाऊ । हरषित सुर संतन्ह मन चाऊ ।
बन कुसुमित गिर-गन मनिआरा । स्रवहिं सकल सरितामृत-धारा ।
सो अवसर बिरंचि जब जाना । चले सकल सुर साजि बिमाना ।
गगन बिमल संकुल सुर-जूथा । गावहिं गुन गंधर्ब-बरूथा ।
बरषहिं सुमन सुअंजलि साजी । गहगहि गगन दुंदभी बाजी ।
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा । बहु बिधि लावहिं निज निज सेवा ।

दो०—सुर-समूह बिनती करि, पहुँचे निज निज धाम ।
जग-निवास प्रभु प्रगटे, अखिल–लोक–बिस्राम ॥ ४२ ॥

सुनि सिसु-रुदन परम प्रिय बानी । संभ्रम चलि आईं सब रानी ।
हरषित जहँ तहँ धाईं दासी । आनँद-मगन सकल पुर-बासी ।
दसरथ पुत्र - जनम सुनि काना । मानहुँ ब्रह्मानंद समाना ।
परम प्रेम मन पुलक सरीरा । चाहत उठन करत मति धीरा ।
जा कर नाम सुनत सुभ होई । मोरे गृह आवा प्रभु सोई ।
परमानंद पूरि मन राजा । कहा बोलाइ बजावहु बाजा ।
गुरु बसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा । आये द्विजन्ह सहित नृप-द्वारा ।
अनुपम बालक देखिन्हि जाई । रूप-रासि गुन कहि न सिराई ।

दो०—तब नंदीमुख स्राद्ध करि, जात-करम सब कीन्ह ।
हाटक धेनु बसन मनि, नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह ॥ ४३ ॥

ध्वज पताक तोरन पुर छावा । कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा ।
सुमन-बृष्टि अकास तें होई । ब्रह्मानंद-मगन सब लोई ।
बृंद बृंद मिलि चली लोगाईं । सहज सिंगार किये उठि धाईं ।
कनक-कलस मंगल भरि थारा । गावत पैठहिं भूप - दुआरा ।
करि आरति नेवछावरि करहीं । बार बार सिसु-चरनन्हि परहीं ।

मागध सूत बंदि गुन-गायक। पावन गुन गावहिं रघुनायक।
सरबस-दान दीन्ह सब काहू। जेहि पावा राखा नहिं ताहू।
मृग-मद-चंदन-कुंकुम-कीचा। मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा।

दो०—गृह गृह बाज बधाव सुभ, प्रगटे सुखमा कंद।
हरषवंत सब जहँ तहँ, नगर-नारि-नर-बृंद॥ ४४॥

कैकय-सुता सुमित्रा दोऊ। सुंदर सुत जनमत भइँ ओऊ।
वोह सुख संपति समय समाजा। कहि न सकइ सारद अहि-राजा।
अवधपुरी सोहइ एहि भाँती। प्रभुहि मिलन आई जनु राती।
देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी संध्या अनुमानी।
अगर-धूप बहु जनु अँधियारी। उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी।
मंदिर-मनि-समूह जनु तारा। नृप-गृह-कलस सो इंदु उदारा।
भवन-बेद-धुनि अति मृदु बानी। जनु खग-मुखर-समय जनु सानी।
कौतुक देखि पतंग भुलाना। एक मास तेइ जात न जाना।

दो०—मास-दिवस कर दिवस भा, मरम न जानइ कोइ।
रथ-समेत रबि थाकेउ, निसा कवन बिधि होइ॥ ४५॥

यह रहस्य काहू नहिं जाना। दिन-मनि चले करत गुन-गाना।
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा। चले भवन बरनत निज भागा।
अउरउ एक कहउँ निज चोरी। सुनि गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी।
काकभुसुंडि संग हम दोऊ। मनुज-रूप जानइ नहिं कोऊ।
परमानंद प्रेम-सुख-फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले।
यह सुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम कै जापर होई।
तेहि अवसर जो जेहि बिधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा।
गज रथ तुरग हेम गो हीरा। दीन्हे नृप नाना बिधि चीरा।

दो०—मन संतोष सबन्हि के, जहँ तहँ देहिं असीस ।
सकल तनय चिरजीवहु, तुलसिदास के ईस ॥ ४६ ॥

कछुक दिवस बीते एहि भाँती । जात न जानिय दिन अरु राती ।
नाम-करन कर अवसर जानी । भूप बोलि पठये मुनि ज्ञानी ।
करि पूजा भूपति अस भाखा । धरिय नाम जो मुनि गुनि राखा ।
इन्ह के नाम अनेक अनूपा । मैं नृप कहब स्वमति-अनुरूपा ।
जो आनंद-सिंधु सुख-रासी । सीकर तें त्रै-लोक सुपासी ।
सो सुख-धाम राम अस नामा । अखिल-लोक दायक बिस्रामा ।
बिस्व-भरन-पोषन कर जोई । ता कर नाम भरत अस होई ।
जा के सुमिरन तें रिपु-नासा । नाम सत्रुहन वेद प्रकासा ।

दो०—लच्छन-धाम राम-प्रिय, सकल-जगत-आधार ।
गुरु बसिष्ठ तेहि राखा, लछिमन नाम उदार ॥ ४७ ॥

धरे नाम गुरु हृदय बिचारी । वेद-तत्त्व नृप तव सुत चारी ।
मुनि-धन जन-सरबस सिव-प्राना । बाल-केलि-रस तेहि सुख माना ।
बारेहि तें निज हित-पति जानी । लछिमन राम-चरन-रति मानी ।
भरत सत्रुहन दूनउ भाई । प्रभु-सेवक जसि प्रीति बड़ाई ।
स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी । निरखहिं छबि जननी तृन तोरी ।
चारिउ सील-रूप-गुन-धामा । तदपि अधिक सुख-सागर रामा ।
हृदय अनुग्रह - इंदु प्रकासा । सूचत किरन मनोहर हासा ।
कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना । मातु दुलारहिं कहि प्रिय ललना ।

दो०—व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन बिगत-बिनोद ।
सो अज प्रेम-भगति-बस, कौसल्या के गोद ॥ ४८ ॥

काम-कोटि-छबि स्याम सरीरा । नील कंज बारिद गंभीरा ।
अरुन - चरन - पंकज - नखजोती । कमल-दलन्हि बैठे जनु मोती ।

रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहइ । नूपुर धुनि सुनि मुनि-मन मोहइ ।
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा । नाभि गँभीर जान जिन्ह देखा ।
भुज बिसाल भूषन-जुत भूरी । हिय हरि-नख अति सोभा रूरी ।
उर मनिहार-पदिक की सोभा । बिप्र-चरन देखत मन लोभा ।
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई । आनन अमित-मदन-छबि छाई ।
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे । नासा तिलक को बरनइ पारे ।
सुंदर स्रवन सुचारु कपोला । अति प्रिय मधुर तोतरे बोला ।
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे । बहु प्रकार रचि मातु सवाँरे ।
पीत झगुलिया तनु पहिराई । जानु-पानि-बिचरनि मोहि भाई ।
रूप सकहिं नहिं कहि स्रुति सेखा । सो जानहिं सपनेहुँ जिन्ह देखा ।

दो०—सुख-संदोह मोह-पर, ज्ञान-गिरा-गोतीत ।
दंपति परम प्रेम-बस, कर सिसु-चरित पुनीत ॥ ४९ ॥
प्रेममगन कौसल्या, निसि दिन जात न जान ।
सुत-सनेह-बस माता, बाल-चरित कर गान ॥ ५० ॥

बाल-चरित हरि बहु बिधि कीन्हा । अति आनँद दासन्ह कहँ दीन्हा ।
कछुक काल बीते सब भाई । बड़े भये परिजन-सुख-दाई ।
चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई । बिप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई ।
परम मनोहर चरित अपारा । करत फिरत चारिउ सुकुमारा ।
भये कुमार जबहिं सब भ्राता । दीन्ह जनेऊ गुरु-पितु-माता ।
गुरु-गृह गये पढ़न रघुराई । अलप काल बिद्या सब पाई ।
बिद्या - बिनय - निपुन - गुन-सीला । खेलहिं खेल सकल नृप-लीला ।
करतल बान धनुष अति सोहा । देखत रूप चराचर मोहा ।
बंधु सखा सँग लेहिं बोलाई । बन मृगया नित खेलहिं जाई ।
पावन-मृग मारहिं जिय जानी । दिन प्रति नृपहिं देखावहिं आनी ।

अनुज सखा सँग भोजन करहीं । मातु पिता अज्ञा अनुसरहीं ।
जेहि बिधि सुखी होहिं पुर-लोगा । करहिं कृपा-निधि सोइ संजोगा ।
बेद पुरान सुनहिं मन लाई । आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई ।
प्रातकाल उठि कै रघुनाथा । मातु पिता गुरु नावहिं माथा ।
आयसु माँगि करहिं पुर-काजा । देखि चरित हरषइ मन राजा ।

दो०—कोसल-पुर - बासी नर, नारि बृद्ध अरु बाल ।
प्रानहुँ ते प्रिय लागत, सब कहँ राम कृपाल ।। ५१ ।।

यह सब चरित कहा मैं गाई । आगिलि कथा सुनहु मन लाई ।
बिस्वामित्र महामुनि ज्ञानी । बसहिं बिपिन सुभ आस्रम जानी ।
जहँ जप जज्ञ जोग मुनि करहीं । अति मारीच सुबाहुहि डरहीं ।
देखत जज्ञ निसाचर धावहिं । करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं ।
गाधि - तनय-मन चिंता ब्यापी । हरि-बिनु मरिहि न निसिचर पापी ।
तब मुनिवर मन कीन्ह बिचारा । प्रभु अवतरेउ हरन महि-भारा ।
एही मिस देखउँ पद जाई । करि बिनती आनउँ दोउ भाई ।
ज्ञान - बिराग-सकल-गुन - अयना । सो प्रभु मैं देखब भरि नयना ।

दो०—बहु बिधि करत मनोरथ, जात लागि नहिं बार ।
करि मज्जन सरजू-जल, गये भूप - दरबार ।। ५२ ।।

मुनि - आगमन सुना जब राजा । मिलन गयउ लेइ बिप्र-समाजा ।
करि दंडवत मुनिहिं सनमानी । निज आसन बैठारेन्हि आनी ।
चरन पखारि कीन्ह अति पूजा । मो सम आजु धन्य नहिं दूजा ।
बिबिध भाँति भोजन करवावा । मुनि-बर हृदय हरष अति पावा ।
पुनि चरनन्हि मेले सुत चारी । राम देखि मुनि देह बिसारी ।
भये मगन देखत मुख सोभा । जनु चकोर पूरन ससि लोभा ।
तब मन हरषि बचन कह राऊ । मुनि अस कृपा न कीन्हेहु काऊ ।

केहि कारण आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावउँ बारा।
असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आयउँ नृप तोही।
अनुज-समेत देहु रघुनाथा। निसि-चर-बध मैं होव सनाथा।

दो०—देहु भूप मन हरषित, तजहु मोह अज्ञान।
धर्म सुजस प्रभु तुम कहँ, इन्ह कहँ अति कल्यान॥ ५३॥

सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख-दुति कुम्हिलानी।
चौथेपन पायउँ सुत चारी। बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी।
माँगहु भूमि धेनु धन कोसा। सरबस देउँ आज़ु सह रोसा।
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं।
सब सुत मोहिं प्रिय प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं।
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुंदर सुत परम किसोरा।
सुनि नृप-गिरा प्रेम-रस-सानी। हृदय हरष माना मुनि ज्ञानी।
तब बसिष्ठ बहु बिधि समुझावा। नृप-संदेह नास कहँ पावा।
अति आदर दोउ तनय बोलाये। हृदय लाइ बहु भाँति सिखाये।
मेरे प्रान-नाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ।

दो०—सौंपे भूप रिषिहि सुत, बहु बिधि देइ असीस।
जननी-भवन गये प्रभु, चले नाइ पद सीस॥ ५४॥

सो०—पुरुष-सिंह दोउ बीर, हरषि चले मुनि-भय-हरन।
कृपा-सिंधु मति-धीर, अखिल-बिस्व-कारन-करन॥ ५५॥

अरुन नयन उर बाहु बिसाला। नील-जलज तनु स्याम तमाला।
कटि पट पीत कसे बर भाथा। रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा।
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। बिस्वामित्र महा-निधि पाई।
प्रभु ब्रह्मन्य देव मैं जाना। मोहि हित पिता तजेउ भगवाना।
चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई।

एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा।
तब रिषि निज नाथहि जिय चीन्ही। विद्या-निधि कहँ बिद्या दीन्ही।
जा तें लाग न छुधा पिपासा। अतुलित बल तन तेज प्रकासा।

दो०—आयुध सर्व समर्पि कै, प्रभु निज आस्रम आनि।
कंद मूल फल भोजन, दीन्ह भगत-हित जानि॥ ५६॥

प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जज्ञ करहु तुम्ह जाई।
होम करन लागे मुनि-झारी। आपु रहे मख की रखवारी।
सुनि मारीच निसाचर कोही। लेइ सहाय धावा मुनि-द्रोही।
विनु फर बान राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर-पारा।
पावक-सर सुवाहु पुनि मारा। अनुज निसाचर-कटकु सँघारा।
मारि असुर द्विज-निर्भय-कारी। अस्तुति करहिं देव-मुनि-झारी।
तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्हि विप्रन्ह पर दाया।
भगति-हेतु बहु कथा पुराना। कहे विप्र जद्यपि प्रभु जाना।
तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिय जाई।
धनुष-यज्ञ सुनि रघु-कुल-नाथा। हरषि चले मुनि-बर के साथा।
चले राम लछिमन मुनि संगा। गये जहाँ जग-पावनि गंगा।
गाधि-सूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुर-सरि महि आई।
तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाये। विविध दान महि-देवन्ह पाये।
हरषि चले मुनि-वृंद - सहाया। बेगि बिदेह - नगर नियराया।
पुर-रम्यता राम जब देखी। हरषे अनुज समेत बिसेखी।
बापी कूप सरिस सर नाना। सलिल सुधा-सम मनि-सोपाना।
गुंजत मंजु मत्त रस भृंगा। कूजत कल बहु-बरन बिहंगा।
बरन बरन बिकसे बन-जाता। त्रिबिध समीर सदा सुख-दाता।

दो०—सुमन-वाटिका बाग बन, बिपुल बिहंग-निवास।
फूलत फलत सुपल्लवत, सोहत पुर चहु पास ॥ ५७ ॥
बनइ न बरनत नगर-निकाई। जहाँ जाय मन तहइँ लोभाई।
पुर बाहिर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा।
देखि अनूप एक अँवराई। सब सुपास सब भाँति सुहाई।
कौसिक कहेउ मोर मन माना। इहाँ रहिय रघुबीर सुजाना।
भलेहि नाथ कहि कृपा-निकेता। उतरे तहँ मुनि-बृंद-समेता।
बिस्वामित्र महामुनि आये। समाचार मिथिला-पति पाये।
दो०—संग सचिव सुचि भूरि भट, भू-सुर बर गुरु ज्ञाति।
चले मिलन मुनि-नायकहि, मुदित राउ एहि भाँति ॥ ५८ ॥
कीन्ह प्रनाम चरन धरि माथा। दीन्ह असीस मुदित मुनि-नाथा।
बिप्र-बृंद सब सादर बंदे। जानि भाग्य बड़ राउ अनंदे।
कुसल-प्रश्न कहि बारहिं बारा। बिस्वामित्र नृपहि बैठारा।
तेहि अवसर आये दोउ भाई। गये रहे देखन फुलवाई।
स्याम गौर मृदु बयस किसोरा। लोचन-सुखद बिस्व-चित-चोरा।
उठे सकल जब रघुपति आये। बिस्वामित्र निकट बैठाये।
भये सब सुखी देखि दोउ भ्राता। बारि बिलोचन पुलकित गाता।
मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेखी।
दो०—प्रेम-मगन मन जानि नृपु, करि बिबेकु धरि धीर।
बोलेउ मुनि-पद नाइ सिरु, गदगद गिरा गँभीर ॥ ५९ ॥
कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक। मुनि-कुल-तिलक कि नृप-कुल-पालक।
सहज बिराग-रूप मन मोरा। थकित होत जिमि चंद-चकोरा।
ता तें प्रभु पूछउँ सति-भाऊ। कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ।
इन्हहिं बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म-सुखहि मन त्यागा।

कह मुनि बिहँसि कहेहु नृप नीका । बचन तुम्हार न होइ अलीका ।
ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी । मन मुसकाहिं राम सुनि बानी ।
रघु-कुल-मनि दसरथ के जाये । मम हित लागि नरेस पठाये ।

दो०—रामु लषन दोउ बंधु बर, रूप-सील-बल-धाम ।
मख राखेउ सब साखि जगु, जिते असुर संग्राम ॥ ६० ॥

मुनि तव चरन देखि कह राऊ । कहि न सकउँ निज पुन्य-प्रभाऊ ।
सुंदर स्याम गौर दोउ भ्राता । आनँदहू के आनँद-दाता ।
इन्ह कै प्रीति परस्पर पावनि । कहि न जाइ मन-भाव सुहावनि ।
सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू । ब्रह्म-जीव-इव सहज सनेहू ।
पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू । पुलक-गात उर अधिक उछाहू ।
मुनिहि प्रसंसि नाइ पद सीसू । चलेउ लिवाइ नगर अवनीसू ।
सुंदर सदन सुखद सब काला । तहाँ बास लेइ दीन्ह भुआला ।
करि पूजा सब बिधि सेवकाई । गयउ राउ गृह बिदा कराई ।

दो०—रिषय संग रघु-बंस-मनि, करि भोजन बिस्राम ।
बैठे प्रभु भ्राता-सहित, दिवस रहा भरि जाम ॥ ६१ ॥

लषन-हृदय लालसा बिसेखी । जाइ जनक-पुर आइय देखी ।
प्रभु-भय बहुरि मुनिहि सकुचाहीं । प्रगट न कहहिं मनहिं मुसुकाहीं ।
राम अनुज-मन की गति जानी । भगत-बछलता हिय हुलसानी ।
परम बिनीत सकुचि मुसुकाई । बोले गुरु-अनुसासन पाई ।
नाथ लषन पुर देखन चहहीं । प्रभु-सकोच-डर प्रगट न कहहीं ।
जौं राउर आयसु मैं पावउँ । नगर देखाइ तुरत लेइ आवउँ ।
सुनि मुनीस कह बचन सप्रीती । कस न राम तुम्ह राखहु नीती ।
धरम-सेतु-पालक तुम्ह ताता । प्रेम-बिबस सेवक-सुख-दाता ।

दो०—जाइ देखि आवहु नगरु, सुख-निधान दोउ भाइ।
करहु सुफल सब के नयन, सुंदर बदन देखाइ॥ ६२॥

मुनि-पद-कमल बंदि दोउ भ्राता। चले लोक-लोचन-सुख-दाता।
बालक-बृंद देखि अति सोभा। लगे संग लोचन मनु लोभा।
पीत-बसन परिकर कटि भाथा। चारु चाप-सर सोहत हाथा।
तन अनुहरत सुचंदन-खोरी। स्यामल गौर मनोहर जोरी।
केहरि-कंधर बाहु बिसाला। उर अति रुचिर नाग-मनि-माला।
सुभग सोन सरसी-रुह-लोचन। बदन मयंक ताप-त्रय-मोचन।
कानन्हि कनक-फूल छबि देहीं। चितवत चितहि चोरि जनु लेहीं।
चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी। तिलक-रेख-सोभा जनु चाकी।

दो०—रुचिर चौतनी सुभग सिर, मेचक कुंचित केस।
नख-सिख सुंदर बंधु दोउ, सोभा सकल सुदेस॥ ६३॥

देखन नगर भूप-सुत आये। समाचार पुर-बासिन्ह पाये।
धाये धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी।
निरखि सहज सुंदर दोउ भाई। होहिं सुखी लोचन-फल पाई।
जुबती भवन-झरोखन्हि लागीं। निरखहिं राम-रूप अनुरागीं।
कहहिं परस्पर बचन सप्रीती। सखि इन्ह कोटि-काम-छबि जीती।
सुर नर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा असि कहुँ सुनियति नाहीं।
बिष्णु चारि-भुज बिधि मुख-चारी। बिकट-बेष मुख-पंच पुरारी।
अपर देव अस कोउ न आही। यह छबि सखी पटतरिय जाही।

दो०—बय-किसोर सुखमा-सदन, स्याम-गौर सुख-धाम।
अंग अंग पर वारियहि, कोटि कोटि सत काम॥ ६४॥

कहहु सखी अस को तनु धारी। जो न मोह अस रूप निहारी।
कोउ सप्रेम बोली मृदु-बानी। जो मैं सुना सो सुनहु सयानी।

ए दोऊ दसरथ के ढोटा । बाल-मरालन्ह के कल जोटा ।
मुनि-कौसिक-मख के रखवारे । जिन्ह रन-अजिर निसाचर मारे ।
स्याम-गात कल-कंज-बिलोचन । जो मारीच-सुभुज-मद-मोचन ।
कौसल्या-सुत सो सुख-खानी । नाम राम धनु-सायक-पानी ।
गौर किसोर बेष बर काछे । कर सर-चाप राम के पाछे ।
लछिमन नाम राम-लघु-भ्राता । सुनु सखि तासु सुमित्रा माता ।

दो०—बिप्र-काजु करि बंधु दोउ, मग मुनि-बधू उधारि ।
आये देखन चाप-मख, सुनि हरषीं सब नारि ॥६५॥

देखि राम-छबि कोउ एक कहई । जोगु जानकिहि यह बरु अहई ।
जो सखि इन्हहिं देख नर-नाहू । पन परिहरि हठि करइ बिबाहू ।
कोउ कह ए भूपति पहिचाने । मुनि-समेत सादर सनमाने ।
सखि परंतु पन राउ न तजई । बिधि-बस हठि अबिबेकहि भजई ।
कोउ कह जौं भल अहइ बिधाता । सब कहँ सुनिय उचित-फल-दाता ।
तौ जानकिहि मिलिहि बरु एहू । नाहिं न आलि इहाँ संदेहू ।
जौं बिधि-बस अस बनइ सँजोगू । तौ कृत-कृत्य होहिं सब लोगू ।
सखि हमरे आरति अति ता ते । कबहुँक ए आवहिं एहि नाते ।

दो०—नाहिं त हम कहँ सुनहु सखि, इन्ह कर दरसन दूरि ।
यह संघट तब होइ जब, पुन्य पुराकृत भूरि ॥६६॥

बोली अपर कहेउ सखि नीका । एहि बिबाह अति हित सबही का ।
कोउ कह शंकर-चाप कठोरा । ए स्यामल मृदु-गात किसोरा ।
सब असमंजस अहइ सयानी । यह सुनि अपर कहइ मृदु-बानी ।
सखि इन्ह कहँ कोउ कोउ अस कहहीं । बड़-प्रभाउ देखत लघु अहहीं ।
परसि जासु पद-पंकज-धूरी । तरी अहिल्या कृत-अघ-भूरी ।
सो कि रहिहि बिनु सिव-धनु तोरे । यह प्रतीति परिहरिय न भोरे ।

जेहि बिरंचि रचि सीय सवाँरी। तेहि स्यामल बरु रचेउ बिचारी।
तासु बचन सुनि सब हरषानी। ऐसइ होउ कहहिं मृदु-बानी।
दो०—हिय हरषहिं बरषहिं सुमन, सुमुखि-सुलोचनि-बृंद।
जाहिं जहाँ जहँ बंधु दोउ, तहँ तहँ परमानंद ॥ ६७ ॥
पुर पूरब दिसि गे दोउ भाई। जहँ धनु-मख-हित भूमि बनाई।
अति बिस्तार चारु गच ढारी। बिमल बेदिका रुचिर सवाँरी।
चहुँ दिसि कंचन-मंच बिसाला। रचे जहाँ बैठहिं महिपाला।
तेहि पाछे समीप चहुँ पासा। अपर मंच - मंडली - बिलासा।
कछुक ऊँचि सब भाँति सुहाई। बैठहिं नगर लोग जहँ जाई।
तिन्ह के निकट बिसाल सुहाये। धवल-धाम बहु बरन बनाये।
जहँ बैठे देखहिं सब नारी। जथा-जोग निज-कुल-अनुहारी।
पुर-बालक कहि कहि मृदु-बचना। सादर प्रभुहि देखावहिं रचना।
दो०—सब सिसु एहि मिस प्रेम-बस, परसि मनोहर गात।
तन पुलकहिं अति हरष हिय, देखि देखि दोउ भ्रात ॥६८॥
सिसु सब राम प्रेम-बस जाने। प्रीति-समेत निकेत बखाने।
निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई। सहित सनेह जाहिं दोउ भाई।
राम देखावहिं अनुजहि रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर बचना।
कौतुक देखि चले गुरु पाहीं। जानि बिलंबु त्रास मन माहीं।
कहि बातैं मृदु मधुर सुहाई। किये बिदा बालक बरिआई।
दो०—सभय सप्रेम बिनीति अति, सकुच-सहित दोउ भाइ।
गुरु-पद-पंकज नाइ सिर, बैठे आयसु पाइ ॥ ६९ ॥
निसि-प्रवेस मुनि आयसु दीन्हा। सबही संध्या-बंदन कीन्हा।
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग-जाम सिरानी।
मुनि-बर सयन कीन्ह तब जाई। लगे चरन चाँपन दोउ भाई।

बार बार मुनि आज्ञा दीन्ही । रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही ।
चाँपत चरन लषन उर लाये । सभय सप्रेम परम सचुपाये ।
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता । पौढ़े धरि उर पद-जल-जाता ।

दो०—उठे लषन निसि बिगत सुनि, अरुन-सिखा-धुनि कान ।
गुरु तें पहिलेहि जगत-पति, जागे राम सुजान ॥ ७० ॥

सकल सौच करि जाइ नहाये । नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाये ।
समय जानि गुरु-आयसु पाई । लेन प्रसून चले दोउ भाई ।
भूप-बाग बर देखेउ जाई । जहँ बसंत-रितु रही लोभाई ।
लागे बिटप मनोहर नाना । बरन बरन बर बेलि-बिताना ।
नव पल्लव फल सुमन सुहाये । निज संपति सुर-रूख लजाये ।
चातक कोकिल कीर चकोरा । कूजत बिहग नटत कल मोरा ।
मध्य बाग सर सोह सुहावा । मनि-सोपान बिचित्र बनावा ।
बिमल सलिल सरसिज बहु रंगा । जल-खग कूजत गुंजत भृंगा ।

दो०—बागु - तड़ाग बिलोकि प्रभु, हरषे बंधु-समेत ।
परम रम्य आराम यह, जो रामहि सुख देत ॥ ७१ ॥

चहुँ दिसि चितइ पूछि माली-गन । लगे लेन दल फूल मुदित-मन ।
तेहि अवसर सीता तहँ आई । गिरिजा-पूजन जननि पठाई ।
संग सखी सब सुभग सयानी । गावहिं गीत मनोहर बानी ।
सर-समीप गिरिजा-गृह सोहा । बरनि न जाइ देखि मन मोहा ।
मज्जन करि सर सखिन्ह समेता । गई मुदित-मन गौरि-निकेता ।
पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा । निज-अनुरूप सुभग बर माँगा ।
एक सखी सिय-संग बिहाई । गई रही देखन फुलवाई ।
तेइ दोउ बंधु बिलोके जाई । प्रेम-बिबस सीता पहिं आई ।

दो०—तासु दसा देखी सखिन्ह, पुलक-गात जल-नयन।
कहु कारन निज हरष कर, पूछहिं सब मृदु बयन॥ ७२॥
देखन बाग कुँअर दुइ आये। बय-किसोर सब भाँति सुहाये।
स्याम गौर किमि कहउँ बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी।
सुनि हरषीं सब सखी सयानी। सिय-हिय अति उतकंठा जानी।
एक कहइ नृप-सुत तेइ आली। सुने जे मुनि सँग आये काली।
जिन्ह निज रूप-मोहनी डारी। कीन्हे स्व-बस नगर-नर-नारी।
बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखियहि देखन जोगू।
तासु बचन अति सियहि सुहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने।
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातनि लखइ न कोई।
दो०—सुमिर सीय नारद-बचन, उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि, जनु सिसु मृगी सभीत॥ ७३॥
कंकन-किंकिनि-नूपुर-धुनि सुनि। कहत लषन सन राम हृदय गुनि।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व-बिजय कहँ कीन्ही।
अस कहि फिरि चितये तेहि ओरा। सिय-मुख-ससि भये नयन चकोरा।
भये बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगंचल।
देखि सीय-सोभा सुख पावा। हृदय सराहत बचन न आवा।
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई।
सुंदरता कहँ सुंदर करई। छबि-गृह दीप-सिखा जनु बरई।
सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहि पटतरउँ बिदेह-कुमारी।
दो०—सिय-सोभा हिय बरनि प्रभु, आपनि दसा बिचारि।
बोले सुचि मन अनुज सन, बचन समय-अनुहारि॥ ७४॥
तात जनक-तनया यह सोई। धनुष-यज्ञ जेहि कारन होई।
पूजन गौरि सखी लेइ आई। करत प्रकास फिरइ फुलवाई।

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा।
सो सब कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता।
रघु-बंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरैं न काऊ।
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहु पर-नारि न हेरी।
जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं लावहिं पर-तिय मन डीठी।
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं। ते नर-बर थोरे जग माहीं।

दो०—करत बतकही अनुज सन, मन सिय-रूप लुभान।
मुख-सरोज-मकरंद-छबि, करइ मधुप इव पान॥ ७५॥

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गये नृप-किसोर मन-चीता।
जहँ बिलोकि मृग-सावक-नयनी। जनु तहँ बरसि कमल-सित-स्रेनी।
लता-ओट तब सखिन लखाये। स्यामल गौर किसोर सुहाये।
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहचाने।
थके नयन रघु-पति-छबि देखे। पलकन्हिहू परहरीं निमेखे।
अधिक सनेह देह भइ भोरी। सरद-ससिहि जनु चितव चकोरी।
लोचन-मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक-कपाट सयानी।
जब सिय सखिन्ह प्रेम-बस जानीं। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानीं।

दो०—लता-भवन तें प्रगट भये, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु, जलद-पटल बिलगाइ॥ ७६॥

सोभा-सीवँ सुभग दोउ बीरा। नील-पीत-जलजाभ-सरीरा।
मोर-पंख सिर सोहत नीके। गुच्छा बिच बिच कुसुम-कली के।
भाल तिलक स्रम-बिंदु सुहाये। स्रवन सुभग भूषन छबि छाये।
बिकट भृकुटि कच घूघरवारे। नव - सरोज लोचन रतनारे।
चारु चिबुक नासिका कपोला। हास-बिलास लेत मन मोला।
मुख-छबि कहि न जाइ मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं।

उर मनि-माल कंबु-कल ग्रीवाँ। काम-कलभ-कर भुज बल-सींवाँ।
सुमन-समेत बाम कर दोना। साँवर कुअँर सखी सुठि लोना।
दो०—केहरि-कटि पट-पीत-धर, सुखमा-सील-निधान।
देखि भानु-कुल-भूषनहि, बिसरा सखिन्ह अपान॥ ७७॥
धरि धीरज एक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी।
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूप-किसोर देखि किन लेहू।
सकुचि सीय तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघु-सिंह निहारे।
नख-सिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पिता-पन मन अति छोभा।
परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भयो गहरु सब कहहिं सभीता।
पुनि आउब एहि बिरियाँ काली। अस कहि मन बिहँसी एक आली।
गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयेउ बिलंब मातु-भय मानी।
धरि बड़ि धीर राम उर आने। फिरि आपनपौ पितु-बस जाने।
दो०—देखन मिस मृग बिहँग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर-छबि, बाढ़इ प्रीति न थोरि॥ ७८॥
जानि कठिन सिव-चाप बिसूरति। चली राखि उर स्यामल मूरति।
प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख - सनेह - सोभा-गुन-खानी।
परम-प्रेम-मय मृदु मसि कीन्हो। चारु चित्त भीती लिखि लीन्हो।
गई भवानी-भवन बहोरी। बंदि चरण बोली कर जोरी।
जय जय गिरि-बर-राज-किसोरी। जय महेस - मुख -चंद - चकोरी।
जय गज - बदन-षडानन-माता। जगत-जननि दामिनि-दुति-गाता।
नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाव बेद नहिं जाना।
भव - भव -बिभव-पराभव-कारिनि। बिस्व-बिमोहनि स्व-बस-बिहारिनि।
दो०—पति-देवता सुतीय महँ, मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न कहि सकहिं, सहस सारदा सेख॥ ७९॥

सेवत तोहि सुलभ फल चारी। बर-दायिनि त्रिपुरारि-पियारी।
देवि पूजि पद-कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे।
मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उर-पुर सबही के।
किन्हेउँ प्रगट न कारन तेही। अस कहि चरन गहे बैदेही।
विनय-प्रेम-बस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी।
सादर सिय-प्रसाद सिर धरेऊ। बोली गौरि हरषु उर भरेऊ।
सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहि मन-कामना तुम्हारी।
नारद-बचन सदा सुचि साचा। सो बर मिलिहि जाहि मन राचा।

छंद—मन जाहि राचेउ मिलिहि सो बर सहज सुंदर साँवरो।
करुना-निधान सुजान सील-सनेह जानत रावरो।
एहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय-सहित हिय हरषित अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली॥

सो०—जानि गौरि अनुकूल, सिय-हिय-हरष न जात कहि।
मंजुल-मंगल-मूल, बाम अंग फरकन लगे॥ ८०॥

हृदय सराहत सीय लोनाई। गुरु-समीप गवने दोउ भाई।
राम कहा सब कौसिक पाहीं। सरल सुभाव छुआ छल नाहीं।
सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्हीं। पुनि असीस दोउ भाइन्ह दीन्हीं।
सुफल मनोरथ होहिं तुम्हारे। राम लषन सुनि भये सुखारे।
करि भोजन मुनि-बर बिज्ञानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी।
बिगत दिवस गुरु-आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई।
प्राची दिसि ससि उयेउ सुहावा। सिय-मुख-सरिस देखि सुख पावा।
बहुरि बिचार कीन्ह मन माहीं। सीय-बदन-सम हिम-कर नाहीं।

दो०—जनम सिंधु पुनि बंधु बिष, दिन मलीन सकलंक।
सिय-मुख-समता पाव किमि, चंद बापुरो रंक॥ ८१॥

घटइ बढ़इ बिरहिनि - दुखदाई। ग्रसइ राहु निज संधिहि पाई।
कोक - सोक - प्रद पंकज - द्रोही। अवगुन बहुत चंद्रमा तोही।
बैदेही - मुख - पटतर दीन्हे। होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हे।
सिय-मुख-छबि बिधु-ब्याज बखानी। गुरु पहिं चले निसा बड़ि जानी।
करि मुनि-चरन-सरोज प्रनामा। आयसु पाइ कीन्ह बिस्रामा।
बिगत निसा रघुनायक जागे। बंधु बिलोकि कहन अस लागे।
उयेउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज - लोक - कोक-सुख-दाता।
बोले लषन जोरि जुग पानी। प्रभु - प्रभाव - सूचक मृदु बानी।

दो०—अरुन-उदय सकुचे कुमुद, उडु-गन-जोति मलीन।
तिमि तुम्हार आगमन सुनि, भये नृपति बल-हीन ॥ ८२ ॥

नृप सब नखत करहिं उँजियारी। टारि न सकहिं चाप-तम भारी।
कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निसा - अवसाना।
ऐसेहि प्रभु सब भगत तुम्हारे। होइहहिं टूटे धनुष सुखारे।
उयेउ भानु बिनु स्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेज प्रकासा।
रबि निज-उदय-ब्याज रघुराया। प्रभु-प्रताप सब नृपन्ह दिखाया।
तव भुज-बल-महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु - बिघटन - परिपाटी।
बंधु-बचन सुनि प्रभु मुसुकाने। होइ सुचि सहज पुनीत नहाने।
नित्य क्रिया करि गुरु पहिं आये। चरन-सरोज सुभग सिर नाये।
सतानंद तब जनक बोलाये। कौसिक मुनि पहिं तुरत पठाये।
जनक-बिनय तिन्ह आनि सुनाई। हरषे बोलि लिये दोउ भाई।

दो०—सतानंद-पद बंदि प्रभु, बैठे गुरु पहिं जाइ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब, पठएउ जनक बोलाइ ॥ ८३ ॥

सीय - स्वयंबर देखिय जाई। ईस काहि धौं देइ बड़ाई।
लषन कहा जस-भाजन सोई। नाथ कृपा तव जा पर होई।

हरषे मुनि सब सुनि बर बानी। दीन्ह असीस सबहिं सुख मानी।
पुनि मुनि-बृंद-समेत कृपाला। देखन चले धनुष-मख-साला।
रंगभूमि आये दोउ भाई। असि सुधि सब पुर-बासिन्ह पाई।
चले सकल गृह-काज-बिसारी। बाल जुआन जरठ नर नारी।
देखी जनक भीर भइ भारी। सुचि सेवक सब लिये हँकारी।
तुरत सकल लोगन्ह पहिं जाहू। आसन उचित देहु सब काहू।
दो०—कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह, बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि॥८४॥
राज-कुअँर तेहि अवसर आये। मनहुँ मनोहरता तन छाये।
गुन-सागर नागर बर बीरा। सुंदर स्यामल-गौर-सरीरा।
राज-समाज बिराजत रूरे। उडु-गन महँ जनु जुग बिधु पूरे।
जिन्ह के रही भावना जैसी। प्रभु-मूरति तिन्ह देखी तैसी।
देखहिं भूप महा रनधीरा। मनहुँ बीर-रस धरे सरीरा।
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी।
रहे असुर छल छोनिप बेखा। तिन्ह प्रभु प्रगट काल-सम देखा।
पुर-बासिन देखे दोउ भाई। नर-भूषन लोचन-सुख-दाई।
दो०—नारि बिलोकहिं हरषि हिय, निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सृँगार धरि, मूरति परम अनूप॥८५॥
बिदुषन प्रभु बिराट-मय दीसा। बहु-मुख-कर-पग-लोचन-सीसा।
जनक-जाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे।
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु-सम प्रीति न जाय बखानी।
जोगिन्ह परम-तत्त्व-मय भासा। सांत-सुद्ध-सम सहज प्रकासा।
हरि-भगतन देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब-सुख-दाता।
रामहिं चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह सुख नहिं कथनीया।

उर अनुभवति न कहि सक सोऊ । कवन प्रकार कहइ कवि कोऊ ।
जेहि विधि रहा जाहि जस भाऊ । तेहि तस देखेउ कोसल-राऊ ।

दो०—राजत राज-समाज महँ, कोसल - राज - किसोर ।
सुंदर—स्यामल—गौर—तनु, बिस्व - बिलोचन-चोर ॥ ८६ ॥

सहज मनोहर मूरति दोऊ । कोटि—काम—उपमा लघु सोऊ ।
सरद - चंद - निंदक मुख नीके । नीरज-नयन भावते जी के ।
चितवनि चारु मार—मद-हरनी । भावत हृदय जात नहिं बरनी ।
कल कपोल स्रुति-कुंडल लोला । चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला ।
कुमुद - बंधु - कर - निंदक हासा । भृकुटी बिकट मनोहर नासा ।
भाल बिसाल तिलक झलकाहीं । कच बिलोकि अलि-अवलि लजाहीं ।
पीत चौतनी सिरन्ह सुहाई । कुसुम-कली बिच बीच बनाई ।
रेखा रुचिर कंबु कल ग्रीवाँ । जनु त्रिभुवन-सोभा की सीवाँ ।

दो०—कुंजर—मनि—कंठा-कलित, उरन्ह तुलसिका-माल ।
बृषभ-कंध केहरि-ठवनि, बल-निधि बाहु बिसाल ॥ ८७ ॥

कटि तूनीर पीत-पट बाँधे । कर सर धनुप बाम बर काँधे ।
पीत जज्ञ - उपबीत सोहाये । नख-सिख मंजु महा छबि छाये ।
देखि लोग सब भये सुखारे । एकटक लोचन टरत न टारे ।
हरषे जनक देखि दोउ भाई । मुनि-पद-कमल गहे तब जाई ।
करि बिनती निज कथा सुनाई । रंग-अवनि सब मुनिहि देखाई ।
जहँ जहँ जाहिं कुअँर बर दोऊ । तहँ तहँ चकित चितव सब कोऊ ।
निज निज रुख रामहिं सब देखा । कोउ न जान कछु मरम बिसेखा ।
भलि रचना मुनि नृप सन कहेऊ । राजा मुदित महा सुख लहेऊ ।

दो०—सब मंचन्ह तें मंच एक, सुंदर बिसद बिसाल ।
मुनि-समेत दोउ बंधु तहँ, बैठारे महिपाल ॥ ८८ ॥

दो०—जानि सुअवसर सीय तब, पठई जनक बोलाइ ।
चतुर सखी सुंदर सकल, सादर चलीं लेवाइ ॥ ८९ ॥

सिय-सोभा नहिं जाइ बखानी । जगदंबिका रूप-गुन-खानी ।
उपमा सकल मोहि लघु लागी । प्राकृत - नारि - अंग - अनुरागी ।
सीय बरनि तेहि उपमा देई । कु-कवि कहाइ अजस को लेई ।
जौं पटतरिय तीय महँ सीया । जग अस जुवति कहाँ कमनीया ।
गिरा मुखर तनु-अरध भवानी । रति अति-दुखित अतनु पति जानी ।
विष बारुनी बंधु प्रिय जेही । कहिय रमा सम किमि वैदेही ।
जौं छवि-सुधा-पयो-निधि होई । परम-रूप-मय कच्छप सोई ।
सोभा रजु मंदरु सिंगारू । मथइ पानि-पंकज निज मारू ।

दो०—एहि विधि उपजइ लच्छि जब, सुंदरता-सुख-मूल ।
तदपि सकोच-समेत कवि, कहहिं सीय सम तूल ॥ ९० ॥

चली संग लइ सखी सयानी । गावति गीत मनोहर-बानी ।
सोह नवल तनु सुंदर सारी । जगत-जननि अतुलित छवि भारी ।
भूषन सकल सुदेस सुहाये । अंग अंग रचि सखिन्ह बनाये ।
रंग-भूमि जब सिय पगु धारी । देखि रूप मोहे नर नारी ।
हरषि सुरन्ह दुंदभी बजाई । बरपि प्रसून अपछरा गाई ।
पानि-सरोज सोह जय-माला । अवचट चितये सकल भुआला ।
सीय चकित चित रामहि चाहा । भये मोह-बस सब नर-नाहा ।
मुनि-समीप देखे दोउ भाई । लगे ललकि लोचन निधि पाई ।

दो०—गुरु-जन-लाज समाज बड़, देखि सीय सकुचानि ।
लगी बिलोकन सखिन्ह तन, रघुबीरहि उर आनि ॥ ९१ ॥

राम-रूप अरु सिय-छबि देखी । नर-नारिन्ह परिहरी निमेखी ।
सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं । विधि सन विनय करहिं मन माहीं ।

हरु विधि वेगि जनक-जड़ताई। मति हमार असि देहि सुहाई।
बिनु बिचार पन तजि नर-नाहू। सीय राम कर करइ बियाहू।
जग भल कहहि भाव सब काहू। हठ कीन्हे अंतहु उर दाहू।
एहि लालसा मगन सब लोगू। बर साँवरो जानकी जोगू।
तब बंदी-जन जनक बोलाये। बिरदावली कहत चलि आये।
कह नृप जाइ कहहु पन मोरा। चले भाट हिय हरष न थोरा।
दो०—बोले बंदी बचन बर, सुनहु सकल महिपाल।
पन बिदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाइ बिसाल॥ ९२॥
नृप-भुज-बलु-बिधु सिव-धनु राहू। गरुअ कठोर बिदित सब काहू।
रावन बान महा भट भारे। देखि सरासन गवहिं सिधारे।
सोइ पुरारि-कोदंड कठोरा। राज-समाज आजु जेइ तोरा।
त्रि-भुवन-जय-समेत बैदेही। बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही।
सुनि पन सकल भूप अभिलाषे। भट मानी अतिसय मन माषे।
परिकर बाँधि उठे अकुलाई। चले इष्टदेवन्ह सिरु नाई।
तमकि ताकि तकि सिव-धनु धरहीं। उठइ न कोटि भाँति बल करहीं।
जिन्ह के कछु बिचार मन माहीं। चाप-समीप महीप न जाहीं।
दो०—तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप, उठइ न चलहिं लजाइ।
मनहुँ पाइ भट-बाहु-बल, अधिक अधिक गरुआइ॥ ९३॥
सब नृप भये जोग उपहासी। जैसे बिनु बिराग संन्यासी।
कीरति बिजय बीरता भारी। चले चाप-कर बरबस हारी।
श्री-हत भये हारि हिय राजा। बैठे निज निज जाइ समाजा।
नृपन्ह बिलोकि जनक अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने।
दीप दीप के भूपति नाना। आये सुनि हम जो पन ठाना।
देव दनुज धरि मनुज-सरीरा। बिपुल बीर आये रन-धीरा।

दो०—कुँअरि मनोहर विजय बड़ि, कीरति अति कमनीय ।
पावनिहार बिरंचि जनु, रचेउ न धनु-दमनीय ॥ ९४ ॥
कहहु काहि यह लाभ न भावा । काहु न शंकर-चाप चढ़ावा ।
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई । तिल भरि भूमि न सके छुड़ाई ।
अब जनि कोउ माखइ भट मानी । बीर-विहीन मही मैं जानी ।
तजहु आस निज निज गृह जाहू । लिखा न विधि बैदेहि-बिबाहू ।
सुकृत जाइ जौं पन परिहरऊँ । कुअँरि कुआँरि रहउ का करऊँ ।
जौं जनतेउँ बिनु भट भुवि भाई । तौ पन करि होतेउँ न हँसाई ।
जनक-बचन सुनि सब नर-नारी । देखि जानकिहि भये दुखारी ।
माखे लषन कुटिल भइँ भौंहैं । रदपट फरकत नयन रिसौहैं ।
दो०—कहि न सकत रघु-बीर-डर, लगे बचन जनु बान ।
नाइ राम-पद-कमल सिर, बोले गिरा प्रमान ॥ ९५ ॥
रघुबंसिन्ह महँ जहँ कोउ होई । तेहि समाज अस कहइ न कोई ।
कही जनक जसि अनुचित बानी । बिद्यमान रघु-कुल-मनि जानी ।
सुनहु भानु-कुल-पंकज-भानू । कहउँ सुभाव न कछु अभिमानू ।
जौं तुम्हार अनुसासन पावउँ । कंदुक इव ब्रह्मांड उठावउँ ।
काँचे घट जिमि डारउँ फोरी । सकउँ मेरु मूलक इव तोरी ।
तव प्रताप-महिमा भगवाना । का बापुरो पिनाक पुराना ।
नाथ जानि अस आयसु होऊ । कौतुक करउँ बिलोकिय सोऊ ।
कमल-नाल जिमि चाप चढ़ावउँ । जोजन सत प्रमान लेइ धावउँ ।
दो०—तोरउँ छत्रक-दंड जिमि, तव प्रताप-बल नाथ ।
जौं न करउँ प्रभु-पद-सपथ, कर न धरउँ धनु-भाथ ॥ ९६ ॥
लषन सकोप बचन जब बोले । डगमगानि महि दिग्गज डोले ।
सकल लोक सब भूप डेराने । सिय-हिय हरष जनक सकुचाने ।

गुरु रघुपति सब मुनि मन माहीं। मुदित भये पुनि पुनि पुलकाहीं।
सयनहिं रघुपति लषन निवारे। प्रेम-समेत निकट बैठारे।
बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति-सनेह-मय बानी।
उठहु राम भंजहु भव-चापा। मेटहु तात जनक-परितापा।
सुनि गुरु-बचन चरन सिरु नावा। हरष बिषाद न कछु उर आवा।
ठाढ़ भये उठि सहज सुभाये। ठवनि जुवा मृग-राज लजाये।
दो०—उदित उदय-गिरि-मंच पर, रघुबर बाल-पतंग।
बिगसे संत-सरोज सब, हरषे लोचन-भृंग॥ ९७॥
नृपन्ह केरि आसा-निसि नासी। बचन नखत-अवली न प्रकासी।
मानी-महिप-कुमुद सकुचाने। कपटी-भूप-उलूक लुकाने।
भये बिसोक कोक मुनि देवा। बरषहिं सुमन जनावहिं सेवा।
गुरु-पद बंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्ह सन आयसु माँगा।
सहजहि चले सकल-जग-स्वामी। मत्त- मंजु- बर- कुंजर- गामी।
चलत राम सब पुर-नर-नारी। पुलक-पूरि-तन भये सुखारी।
बंदि पितर सब सुकृत सँभारे। जौं कछु पुन्य प्रभाव हमारे।
तौ सिव-धनु मृनाल की नाईं। तोरहिं राम गनेस गोसाईं।
दो०—रामहिं प्रेम समेत लखि, सखिन्ह समीप बोलाइ।
सीता-मातु सनेह-बस, बचन कहइ बिलखाइ॥ ९८॥
सखि सब कौतुक देखनिहारे। जेउ कहावत हितू हमारे।
कोउ न बुझाइ कहइ नृप पाहीं। ए बालक अस हठ भल नाहीं।
रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा।
सो धनु राज-कुअँर-कर देहीं। बाल-मराल कि मंदर लेहीं।
भूप-सयानप सकल सिरानी। सखि बिधि-गति कछु जाति न जानी।
बोली चतुर सखी मृदु बानी। तेजवंत लघु गनिय न रानी।

कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा। सोखेउ सुजस सकल संसारा।
रवि-मंडल देखत लघु लागा। उदय तासु त्रि-भुवन-तम भागा।

दो०—मंत्र परम लघु जासु बस, बिधि हरि हर सुर सर्ब।
महा-मत्त-गज-राज कहँ, बस कर अंकुस खर्ब॥ ९९॥

काम कुसुम-धनु-सायक लीन्हे। सकल भुवन अपने बस कीन्हे।
देवि तजिय संसय अस जानी। भंजब धनुष राम सुनु रानी।
सखी-बचन सुनि भइ परतीती। मिटा बिषाद बढ़ी अति प्रीती।
तब रामहिं बिलोकि बैदेही। सभय हृदय बिनवति जेहि तेही।
मनहीं मन मनाव अकुलानी। होउ प्रसन्न महेस भवानी।
करहु सुफल आपन सेवकाई। करि हित हरहु चाप-गरुआई।
गन-नायक बर-दायक देवा। आजु लगें कीन्हेउँ तव सेवा।
बार बार सुनि बिनती मोरी। करहु चाप-गरुता अति थोरी।

दो०—देखि देखि रघु-बीर-तन, सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम-जल, पुलकावली सरीर॥ १००॥

नीके निरखि नयन भरि सोभा। पितु-पनु सुमिरि बहुरि मन छोभा।
अहह तात दारुन हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभ न हानी।
सचिव सभय सिख देइ न कोई। बुध-समाज बड़ अनुचित होई।
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदु गात किसोरा।
बिधि केहि भाँति धरउँ उर धीरा। सिरिस-सुमन-कन बेधिय हीरा।
सकल सभा कै मति भइ भोरी। अब मोहि संभु-चाप-गति तोरी।
निज जड़ता लोगन्ह पर डारी। होहु हरुअ रघुपतिहि निहारी।
अति परिताप सीय-मन माहीं। लव-निमेष जुग-सय-सम जाहीं।

दो०—प्रभुहि चितइ पुनि चितइ महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज-मीन-जुग, जनु बिधु-मंडल डोल॥ १०१॥

गिरा-अलिनि मुख पंकज रोकी। प्रगट न लाज-निसा अवलोकी।
लोचन-जल रह लोचन-कोना। जैसे परम कृपन कर सोना।
सकुची व्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरज प्रतीति उर आनी।
तन मन बचन मोर पन साचा। रघु-पति-पद-सरोज चितु राचा।
तौ भगवान सकल-उर-बासी। करिहहिं मोहि रघुबर कै दासी।
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू।
प्रभु-तन चितइ प्रेम-पन ठाना। कृपा-निधान राम सब जाना।
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसे। चितव गरुड़ लघु ब्यालहि जैसे।

दो०—लषन लखेउ रघु-बंस-मनि, ताकेउ हर-कोदंड।
पुलकि गात बोले बचन, चरन चापि ब्रह्मंड॥ १०२॥

दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला।
राम चहहिं शंकर-धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा।
चाप-समीप राम जब आये। नर-नारिन्ह सुर सुकृत मनाये।
सब कर संसय अरु अज्ञानू। मंद महीपन्ह कर अभिमानू।
भृगुपति केरि गरब-गरुआई। सुर-मुनि-बरन्ह केरि कदराई।
सिय करि सोच जनक-पछितावा। रानिन्ह कर दारुन-दुख-दावा।
संभु-चाप बड़ बोहित पाई। चढ़े जाइ सब संग बनाई।
राम-बाहु-बल-सिंधु अपारू। चहत पार नहिं कोउ कनहारू।

दो०—राम बिलोके लोग सब, चित्र लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन, जानी बिकल बिसेखि॥ १०३॥

देखी बिपुल बिकल बैदेही। निमिष बिहात कलप-सम तेही।
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुये करइ का सुधा-तड़ागा।
का बरषा जब कृषी सुखाने। समय चुके पुनि का पछिताने।
अस जिय जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेखी।

गुरुहिं प्रनाम मनहिं मन कीन्हा । अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा ।
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ । पुनि धनु नभ-मंडल-सम भयऊ ।
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े । काहु न लखा देख सब ठाढ़े ।
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा । भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा ।
सो०—शंकर-चाप जहाज, सागर रघुवर-बाहु-बल ।
बूड़ सो सकल समाज, चढ़े जो प्रथमहिं मोह-बस ॥ १०४ ॥
प्रभु दोउ चाप-खंड महि डारे । देखि लोग सब भये सुखारे ।
कौसिक - रूप - पयोनिधि पावन । प्रेम-बारि अवगाह सुहावन ।
राम - रूप - राकेस निहारी । बढ़त बीचि पुलकावलि भारी ।
बाजे नभ गहगहे निसाना । देव-बधू नाचहिं करि गाना ।
ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा । प्रभुहि प्रसंसहिं देहिं असीसा ।
बरषहिं सुमन रंग बहु माला । गावहिं किन्नर गीत रसाला ।
रही भुवन भरि जय जय बानी । धनुष-भंग-धुनि जात न जानी ।
मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी । भंजेउ राम संभु-धनु भारी ।
दो०—बंदी मागध सूत-गन, बिरद बदहिं मति-धीर ।
करहिं निछावरि लोग सब, हय गय मनि धन चीर ॥ १०५ ॥
झाँझ मृदंग संख सहनाई । भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई ।
बाजहिं बहु बाजने सुहाये । जहँ तहँ जुवतिन्ह मंगल गाये ।
सखिन्ह सहित हरषीं सब रानी । सूखत धानु परा जनु पानी ।
जनक लहेउ सुख सोच बिहाई । पैरत थके थाह जनु पाई ।
श्रीहत भये भूप धनु टूटे । जैसे दिवस दीप-छवि छूटे ।
सीय-सुखहि बरनिय केहि भाँती । जनु चातकी पाइ जल-स्वाती ।
रामहि लखन बिलोकत कैसे । ससिहि चकोर-किसोरकु जैसे ।
सतानंद तब आयसु दीन्हा । सीता गमन राम पहिं कीन्हा ।

दो०—संग सखी सुंदर चतुर, गावहिं मंगलचार ।
गवनी बाल-मराल-गति, सुखमा अंग अपार ॥ १०६ ॥

सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसी । छबि-गन-मध्य महा-छबि जैसी ।
कर-सरोज जय-माल सुहाई । बिस्व-बिजय-सोभा जनु छाई ।
तन सकोच मन परम उछाहू । गूढ़ प्रेम लखि परइ न काहू ।
जाइ समीप राम-छबि देखी । रहि जनु कुअँरि चित्र-अवरेखी ।
चतुर सखी लखि कहा बुझाई । पहिरावहु जय-माल सुहाई ।
सुनत जुगल-कर माल उठाई । प्रेम-बिबस पहिराइ न जाई ।
सोहत जनु जुग-जलज सनाला । ससिहि सभीत देत जय-माला ।
गावहिं छबि अवलोकि सहेली । सिय जय-माल राम-उर मेली ।

सो०—रघुबर-उर जय-माल, देखि देव बरषहिं सुमन ।
सकुचे सकल भुआल, जनु बिलोकि रबि कुमुद-गन ॥ १०७ ॥

तब सिय देखि भूप अभिलाषे । कूर कपूत मूढ़ मन माषे ।
उठि उठि पहिरि सनाह अभागे । जहँ तहँ गाल बजावन लागे ।
लेहु छँड़ाइ सीय कह कोऊ । धरि बाँधहु नृप-बालक दोऊ ।
तोरे धनुष चाँड नहिं सरई । जीवत हमहिं कुअँरि को बरई ।
जौं बिदेह कछु करइ सहाई । जीतहु समर सहित दोउ भाई ।
साधु-भूप बोले सुनि बानी । राज-समाजहिं लाज-लजानी ।
बलु प्रतापु बीरता बड़ाई । नाक पिनाकहिं संग सिधाई ।
सोइ सूरता कि अब कहुँ पाई । असि बुधि तौ बिधि मुँह मसि लाई ।

दो०—देखहु रामहिं नयन भरि, तजि इरषा मद कोहु ।
लषन-रोष-पावक-प्रबलु, जानि सलभ जनि होहु ॥ १०८ ॥

बैनतेय-बलि जिमि चह कागू । जिमि सस चहइ नाग-अरि-भागू ।
जिमि चह कुसल अकारन कोही । सब संपदा चहइ सिव-द्रोही ।

लोभी लोलुप कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई।
हरि-पद-बिमुख परम-गति चाहा। तस तुम्हार लालच नर-नाहा।
कोलाहल सुनि सीय सकानी। सखी लेवाइ गईं जहँ रानी।
राम सुभाय चले गुरु पाहीं। सिय-सनेहु बरनत मन माहीं।
रानिन्ह सहित सोच-बस सीया। अब धौं बिधिहि काह करनीया।
भूप-बचन सुनि इत उत तकहीं। लषन राम-डर बोलि न सकहीं।

दो०—अरुन नयन भृकुटी कुटिल, चितवत नृपन्ह सकोप।
मनहुँ मत्त-गज-गन निरखि, सिंह-किसोरहि चोप॥ १०९॥

खरभर देखि बिकल पुर-नारी। सब मिलि देहिं महीपन्ह गारी।
तेहि अवसर सुनि सिव-धनु-भंगा। आये भृगु-कुल-कमल-पतंगा।
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज-झपट जनु लवा लुकाने।
गौर-सरीर भूति भलि भ्राजा। भाल-बिसाल त्रिपुंड बिराजा।
सीस जटा ससि-बदन सुहावा। रिसि-बस कछुक अरुन होइ आवा।
भृकुटी कुटिल नयन रिसि राते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते।
वृषभ-कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृग-छाला।
कटि मुनि-बसन तून दुइ बाँधे। धनु सर कर कुठार कल काँधे।

दो०—संत-बेस करनी कठिन, बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनि-तनु जनु बीर-रस, आयउ जहँ सब भूप॥ ११०॥

देखत भृगु-पति-बेषु कराला। उठे सकल भय बिकल भुआला।
पितु-समेत कहि निज निज नामा। लगे करन सब दंड-प्रनामा।
जेहि सुभाय चितवहिं हित जानी। सो जानइ जनु आयु खुटानी।
जनक बहोरि आइ सिरु नावा। सीय बोलाइ प्रनाम करावा।
आसिष दीन्हि सखी हरषानी। निज समाज लेइ गईं सयानी।
बिस्वामित्र मिले पुनि आई। पद-सरोज मेले दोउ भाई।

राम लषन दसरथ के ढोटा। देख असीस दीन्हि भल जोटा।
रामहिं चितइ रहे भरि लोचन। रूप अपार मार-मद-मोचन।
दो०—बहुरि बिलोकि बिदेह सन, कहहु काह अति भीर।
पूछत जानि अजान जिमि, व्यापेउ कोप सरीर॥ १११॥
समाचार कहि जनक सुनाये। जेहि कारन महीप सब आये।
सुनत बचन तब अनत निहारे। देखे चाप-खंड महि डारे।
अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष केइ तोरा।
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटउँ महि जहँ लगि तव राजू।
अति डर उतर देत नृप नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं।
सुर मुनि नाग नगर-नर-नारी। सोचहिं सकल त्रास उर भारी।
मन पछिताति सीय-महतारी। बिधि अब सवरी बात बिगारी।
भृगुपति कर सुभाव सुनि सीता। अरध-निमेष कलप-सम बीता।
दो०—सभय बिलोके लोग सब, जानि जानकी भीर।
हृदय न हरष बिषाद कछु, बोले श्रीरघुबीर॥ ११२॥
नाथ संभु-धनु-भंजनि-हारा। होइहि कोउ एक दास तुम्हारा।
आयसु काह कहिय किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही।
सेवक सो जो करइ सेवकाई। अरि-करनी करि करिय लराई।
सुनहु राम जेइ सिव-धनु तोरा। सहस-बाहु-सम सो रिपु मोरा।
सो बिलगाउ बिहाय समाजा। न त मारे जइहैं सब राजा।
सुनि मुनि-बचन लषन मुसुकाने। बोले परसुधरहि अपमाने।
बहु धनुहीं तोरी लरिकाईं। कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं।
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगु-कुल-केतू।
दो०—रे नृप-बालक काल-बस, बोलत तोहि न सँभार।
धनुहीं सम त्रि-पुरारि-धनु, बिदित सकल संसार॥ ११३॥

लषन कहा हँसि हमरे जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना।
का छति लाभु जून धनु तोरे। देखा राम नये के भोरे।
छुवत टूट रघुपतिहु न दोषू। मुनि विनु काज करिय कत रोषू।
बोले चितइ परसु की ओरा। रे सठ सुनेहि सुभाव न मोरा।
बालक बोलि बधउँ नहिं तोही। केवल मुनि जड़ जानहि मोही।
बाल-ब्रह्मचारी अति-कोही। बिस्व-बिदित छत्रिय-कुल-द्रोही।
भुज-बल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महि-देवन्ह दीन्ही।
सहस–बाहु–भुज–छेदनि–हारा। परसु बिलोकु महीप-कुमारा।
दो०—मातु-पितहि जनि सोच-बस, करसि महीप-किसोर।
गरभन के अरभक-दलन, परसु मोर अति घोर॥ ११४॥
बिहँसि लषन बोले मृदु बानी। अहो मुनीस महा भट मानी।
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू।
इहाँ कुम्हड़-बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं।
देखि कुठार सरासन बाना। मैं कछु कहेँउ सहित अभिमाना।
भृगु-कुल समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहेउ सहउँ रिस रोकी।
सुर महि-सुर हरि-जन अरु गाई। हमरे कुल इन्ह पर न सुराई।
बधे पाप अप-कीरति हारे। मारतहू पा परिय तुम्हारे।
कोटि-कुलिस-सम बचन तुम्हारा। व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा।
दो०—जो बिलोकि अनुचित कहेउँ, छमहु महा-मुनि धीर।
सुनि सरोष भृगु–बंस-मनि, बोले गिरा गँभीर॥ ११५॥
कौसिक सुनहु मंद यह बालक। कुटिल काल-बस निज-कुल-घालक।
भानु - बंस - राकेस - कलंकू। निपट निरंकुस अबुध असंकू।
काल-कवलु होइहि छन माहीं। कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं।
अब जनि देइ दोष मोहि लोगू। कटु-बादी बालक बध-जोगू।

बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। अब यह मरनहार भा साँचा।
कौसिक कहा छमिय अपराधू। बाल-दोष-गुन गनहिं न साधू।
कर कुठार मैं अकरन-कोही। आगे अपराधी गुरु-द्रोही।
उतर देत छाँडउँ बिनु मारे। केवल कौसिक सील तुम्हारे।
न तु एहि काटि कुठार कठोरे। गुरुहि उरिन होतेउँ स्रम थोरे।
दो०—गाधि-सूनु कह हृदय हँसि, मुनिहि हरिअरइ सूझ।
अजगव खंडेउ ऊख जिमि, अजहुँ न बूझ अबूझ॥ ११६॥
लषन-उतर आहुति-सरिस, भृगु-बर-कोप कृसानु।
बढ़त देखि जल-सम-बचन, बोले रघु-कुल-भानु॥ ११७॥
नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूध-मुख करिय न कोहू।
जौं पै प्रभु-प्रभाउ कछु जाना। तौ कि बराबरि करइ अयाना।
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं।
करिय कृपा सिसु सेवक जानी। तुम्ह-सम सील धीर मुनि ज्ञानी।
राम-बचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लषन बहुरि मुसुकाने।
हँसत देखि नख-सिख रिस ब्यापी। राम तोर भ्राता बड़ पापी।
गौर सरीर स्याम मन माहीं। काल-कूट-मुख पय-मुख नाहीं।
सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही। नीच मीच-सम देख न मोही।
दो०—सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम।
गुरु-समीप गवने सकुचि, परिहरि बानी बाम॥ ११८॥
अति बिनीत मृदु सीतल बानी। बोले राम जोरि जुग-पानी।
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना। बालक-बचन करिय नहिं काना।
बररै बालक एक सुभाऊ। इन्हहि न संत बिदूषहिं काऊ।
तेहि नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा।
कृपा कोप बध बँध गोसाईं। मो पर करिय दास की नाईं।

कहिय बेगि जेहि बिधि रिस जाई। मुनि-नायक सोइ करउँ उपाई।
कह मुनि राम जाइ रिस कैसे। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे।
एहि के कंठ कुठार न दीन्हा। तौ मैं काह कोप करि कीन्हा।
दो०—गर्भ स्रवहिं अवनिप-रवनि, सुनि कुठार-गति घोर।
परसु अछत देखउँ जियत, बैरी भूप-किसोर ॥ ११९ ॥
बहइ न हाथ दहइ रिस छाती। भा कुठार कुंठित नृप-घाती।
बंधु कहइ कटु संमत तोरे। तूँ छल बिनय करसि कर जोरे।
करु परितोष मोर संग्रामा। नाहि त छाड़ कहाउब रामा।
छल तजि करहि समर सिव-द्रोही। बंधु-सहित न त मारउँ तोही।
राम कहेउ रिस तजहु मुनीसा। कर कुठार आगे यह सीसा।
जेहि रिस जाइ करिय सोइ स्वामी। मोहि जानिय आपन अनुगामी।
दो०—प्रभुहि सेवकहि समर कस, तजहु बिप्र-बर रोसु।
बेष बिलोकि कहेसि कछु, बालकहू नहिं दोसु ॥ १२० ॥
देखि कुठार-बान-धनु-धारी। भइ लरिकहि रिस बीरु बिचारी।
नाम जान पै तुम्हहिँ न चीन्हा। बंस-सुभाव उतरु तेइ दीन्हा।
जौं तुम्ह अवतेहु मुनि की नाईं। पद-रज सिर सिसु धरत गोसाईं।
छमहु चूक अनजानत केरी। चहिय बिप्र-उर कृपा घनेरी।
हमहिँ तुम्हहिँ सरबर कस नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा।
राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु-सहित बड़ नाम तुम्हारा।
देव एक-गुन धनुष हमारे। नव-गुन परम पुनीत तुम्हारे।
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे। छमहु बिप्र अपराध हमारे।
दो०—बार बार मुनि बिप्र-बर, कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष होइ, तहूँ बंधु-सम बाम ॥ १२१ ॥
निपटहि द्विज करि जानहि मोही। मैं जस बिप्र सुनावउँ तोही।

चाप सुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अति घोर कृसानू।
समिध सेन चतुरंग सुहाई। महा महीप भये पसु आई।
मैं यह परसु काटि बलि दीन्हे। समर-जज्ञ जग कोटिक कीन्हे।
मोर प्रभाव बिदित नहिँ तोरे। बोलसि निदरि बिप्र के भोरे।
भंजेउ चाप दाप बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहुँ जीति जग ठाढ़ा।
राम कहा मुनि कहहु बिचारी। रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी।
छुवतहि टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करउँ अभिमाना।

दो०—जौं हम निदरहिँ बिप्र बदि, सत्य सुनहु भृगु-नाथ।
तौ अस को जग सुभट जेहि, भय-बस नावहिँ माथ॥ १२२॥

देव दनुज भूपति भट नाना। सम-बल अधिक होउ बलवाना।
जौं रन हमहिँ प्रचारइ कोऊ। लरहिँ सुखेन काल किन होऊ।
छत्रिय-तनु धरि समर सकाना। कुल-कलंक तेहि पाँवर जाना।
कहउँ सुभाव न कुलहिँ प्रसंसी। कालहु डरहिँ न रन रघु-बंसी।
बिप्र-बंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहिँ डेराई।
सुनि मृदु-बचन गूढ़ रघुपति के। उघरे पटल परसु-धर-मति के।
राम रमा-पति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटइ मोर संदेहू।
देत चाप आपुहि चलि गयेऊ। परसुराम मन बिसमय भयेऊ।

दो०—जाना राम-प्रभाव तब, पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन, हृदय न प्रेम समात॥ १२३॥

जय रघुबंस-बनज-बन-भानू। गहन-दनुज-कुल-दहन कृसानू।
जय सुर-बिप्र-धेनु-हित-कारी। जय मद-मोह-कोह-भ्रम-हारी।
बिनय-सील - करुना-गुन - सागर। जयति बचन-रचना अति नागर।
सेवक-सुखद सुभग सब अंगा। जय सरीर-छबि कोटि अनंगा।
करउँ काह मुख एक प्रसंसा। जय महेस-मन-मानस-हंसा।

अनुचित बचन कहेउँ अज्ञाता। छमहु छमा-मंदिर दोउ भ्राता।
कहि जय जय जय रघु-कुल-केतू। भृगुपति गये बनहिं तप हेतू।
अपभय सकल महीप डराने। जहँ तहँ कायर गवहिं पराने।

दो०—देवन दीन्ही दुंदुभी, प्रभु पर बरषहिँ फूल।
हरषे पुर-नर-नारि सब, मिटा मोह-मय सूल॥ १२४॥

अति गहगहे बाजने बाजे। सबहिँ मनोहर मंगल साजे।
जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनी। करहिँ गान कल कोकिल-बयनी।
सुख बिदेह कर बरनि न जाई। जनम-दरिद्र मनहुँ निधि पाई।
बिगत-त्रास भइ सीय सुखारी। जनु बिधु-उदय चकोर-कुमारी।
जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा। प्रभु-प्रसाद धनु भंजेउ रामा।
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाई। अब जो उचित सो कहिय गोसाईं।
कह मुनि सुनु नर-नाथ प्रवीना। रहा बिवाह चाप-आधीना।
टूटतही धनु भयेउ बिवाहू। सुर नर नाग बिदित सब काहू।

दो०—तदपि जाइ तुम्ह करहु अब, जथा-बंस-ब्यवहारु।
बूझि बिप्र कुल-वृद्ध गुरु, बेद-बिदित आचारु॥ १२५॥

दूत अवधपुर पठवहु जाई। आनहिँ नृप दसरथहि बोलाई।
मुदित राउ कहि भलेहि कृपाला। पठये दूत बोलि तेहि काला।
बहुरि महाजन सकल बोलाये। आइ सबन्हि सादर सिरु नाये।
हाट बाट मंदिर सुर-बासा। नगर सवाँरहु चारिहु पासा।
हरषि चले निज निज गृह आये। पुनि परिचारक बोलि पठाये।
रचहु बिचित्र बितान बनाई। सिर धरि बचन चले सचुपाई।
पठयें बोलि गुनी तिन्ह नाना। जो बितान-बिधि-कुसल सुजाना।
बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि के खंभा।

दो०—हरित-मनिन्ह के पत्र फल, पदुमराग के फूल।
रचना देखि विचित्र अति, मन बिरंचि कर भूल ॥१२६॥

पहुँचे दूत राम-पुर पावन। हरषे नगर बिलोकि सुहावन।
भूप-द्वार तिन्ह खबर जनाई। दसरथ नृप सुनि लिये बोलाई।
करि प्रनाम तिन्ह पाती दीन्ही। मुदित महीप आपु उठि लीन्ही।
बारि बिलोचन बाँचत पाती। पुलक गात आई भरि छाती।
राम लषन उर कर बर चीठी। रहि गये कहत न खाटी मीठी।
पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची। हरषी सभा बात सुनि साँची।
तब नृप दूत निकट बैठारे। मधुर मनोहर बचन उचारे।
भैया कहहु कुसल दोउ बारे। तुम्ह नीके निज नयन निहारे।
पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ। प्रेम-बिबस पुनि पुनि कह राऊ।
कहहु बिदेह कवन बिधि जाने। सुनि प्रिय बचन दूत मुसुकाने।

दो०—सुनहु मही-पति-मुकुट-मनि, तुम्ह सम धन्य न कोउ।
राम लषन जिन्ह के तनय, बिस्व-बिभूषन दोउ ॥ १२७ ॥

पूछन जोग न तनय तुम्हारे। पुरुषसिंह तिहुँ पुर उँजियारे।
जिन के जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे।
तिन्ह कहँ कहिय नाथ किमि चीन्हे। देखिय रबि कि दीप कर लीन्हे।
दूत बचन-रचना प्रिय लागी। प्रेम - प्रताप - बीर - रस-पागी।
सभा-समेत राउ अनुरागे। दूतन्ह देन्ह निछावरि लागे।
कहि अनीति ते मूदहिँ काना। धरमु बिचारि सबहिँ सुख माना।

दो०—तब उठि भूप बसिष्ठ कहँ, दीन्हि पत्रिका जाइ।
कथा सुनाई गुरुहि सब, सादर दूत बोलाइ ॥ १२८ ॥

सुनि बोले गुरु अति सुख पाई। पुन्य-पुरुष कहँ महि सुख छाई।
जिमि सरिता सागर महँ जाहीं। यद्यपि ताहि कामना नाहीं।

तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाये। धरम-सील पहिं जाहिं सुभाये।
तुम गुरु - बिप्र - धेनु - सुर-सेवी। तसि पुनीति कौसल्या देवी।
सुकृती तुम्ह समान जग माहीं। भयउ न है कोउ होनउ नाहीं।
तुम्ह तें अधिक पुन्य बड़ काके। राजन राम सरिस सुत जाके।
बीर बिनीत धरम - ब्रत - धारी। गुन-सागर बर बालक चारी।
तुम्ह कहँ सर्ब काल कल्याना। सजहु बरात बजाइ निसाना।

दो०—चलहु बेगि सुनि गुरु-बचन, भलेहि नाथ सिरु नाइ।
भूपति गवने भवन तब, दूतन्ह बास देवाइ ॥१२६॥

राजा सब रनिवास बोलाई। जनक - पत्रिका बाँचि सुनाई।
सुनि संदेस सकल हरषानी। अपर-कथा सब भूप बखानी।
भूप भरत पुनि लिये बोलाई। हय गय स्यंदन साजहु जाई।
चलहु बेगि रघु-बीर बराता। सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता।
भरत सकल साहनी बोलायें। आयसु दीन्ह मुदित उठि धाये।
रचि रुचि जीन तुरग तिन्ह साजे। बरन बरन बर बाजि बिराजे।
सुभग सकल सुठि चंचल-करनी। अय इव जरत धरत पग धरनी।
नाना जाति न जाहिँ बखाने। निदरि पवन जनु चहत उड़ाने।
तिन्ह सब छैल भये असवारा। भरत-सरिस-बय राज-कुमारा।
सब सुंदर सब भूषन-धारी। कर सर-चाप तून कटि भारी।

दो०—छरे छबीले छैल सब, सूर सुजान नबीन।
जुग-पद-चर असवार प्रति, जे असि-कला-प्रबीन ॥ १३० ॥

बाँधे बिरद बीर रनगाढ़े। निकसि भये पुर बाहिर ठाढ़े।
फेरहिँ चतुर तुरग गति नाना। हरषहिँ सुनि सुनि पनव निसाना।
रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाये। ध्वज पताक मनि भूषन लाये।
चवँर चारु किंकिनि धुनि करहीं। भानु - जानु - सोभा अपहरहीं।

स्यामकरन अगनित हय होते । ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते ।
सुंदर सकल अलंकृत सोहे । जिन्हहिं बिलोकत मुनि-मन मोहे ।
जे जल चलहिँ थलहि की नाईं । टाप न बूड़ बेग अधिकाई ।
अस्त्र सस्त्र सब साज बनाई । रथी सारथिन्ह लिये बोलाई ।

दो०—चढ़ि चढ़ि रथ बाहिर नगर, लागी जुरन बरात ।
होत सगुन सुंदर सबन्हि, जे जेहि कारज जात ॥ १३१ ॥

कलित करि-बरन्हि परी अँबारी । कहि न जाइ जेहि भाँति सँवारी ।
चले मत्त गज घंट बिराजी । मनहुँ सुभग सावन - घन-राजी ।
बाहन अपर अनेक बिधाना । सिबिका सुभग सुखासन जाना ।
तिन्ह चढ़ि चले बिप्र - बर-बृंदा । जनु तनु धरे सकल—स्रुति-छंदा ।
मागध सूत बंदि गुन-गायक । चले जान चढ़ि जो जेहि लायक ।
बेसर ऊँट बृषभ बहु जाती । चले बस्तु भरि अगनित भाँती ।
कोटिन्ह काँवरि चले कहारा । बिबिध बस्तु को बरनइ पारा ।
चले सकल - सेवक - समुदाई । निज निज साजु समाजु बनाई ।

दो०—सब के उर निर्भर हरषु, पूरित पुलक सरीर ।
कबहि देखिबइ नयन भरि, राम लषन दोउ बीर ॥ १३२ ॥

गरजहिं गज घंटा-धुनि घोरा । रथ-रव बाजि-हिंस चहुँ ओरा ।
निदरि घनहिं घुम्मरहिं निसाना । निज पराइ कछु सुनिय न काना ।
महा भीर भूपति के द्वारे । रज होइ जाइ पषान पबारे ।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नारी । लिये आरती मंगल - थारी ।
गावहिँ गीत मनोहर नाना । अति आनंद न जाइ बखाना ।
तब सुमंत्र दुइ स्यंदन साजी । जोते रबि-हय-निंदक बाजी ।
दोउ रथ रुचिर भूप पहिँ आने । नहिं सारद पहिं जाहिं बखाने ।
राज-समाज एक रथ साजा । दूसर तेज-पुंज अति भ्राजा ।

दो०—तेहि रथ रुचिर बसिष्ठ कहँ, हरषि चढ़ाइ नरेसु ।
आप चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि, हर गुरु गौरि गनेसु ॥ १३३ ॥
सहित बसिष्ठ सोह नृप कैसे । सुर - गुरु - संग पुरंदर जैसे ।
करि कुल-रीति बेद-बिधि राऊ । देखि सबहि सब भाँति बनाऊ ।
सुमिरि राम गुरु-आयसु पाई । चले महीपति संख बजाई ।
भयउ कोलाहल हय गय गाजे । व्योम बरात-बाजने बाजे ।
सुर नर नाग सुमंगल गाई । सरस राग बाजहिं सहनाई ।
घंट-घंटि-धुनि बरनि न जाहीं । सरव करहिं पायक फहराहीं ।
करहिं बिदूषक कौतुक नाना । हास-कुसल कल-गान सुजाना ।
दो०—तुरग नचावहिं कुअँर बर, अकनि मृदंग निसान ।
नागर नट चितवहिं चकित, डगहिं न ताल-बँधान ॥ १३४ ॥
बनइ न बरनत बनी बराता । होहिं सगुन सुंदर सुभ-दाता ।
राम-सरिस बर दुलहिनि सीता । समधी दसरथ जनक पुनीता ।
सुनि अस ब्याह सगुन सब नाँचे । अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे ।
एहि बिधि कीन्ह बरात पयाना । हय गय गाजहिं हने निसाना ।
आवत जानि भानु-कुल-केतू । सरितन्हि जनक बँधाये सेतू ।
बीच बीच बर बास बनाये । सुर-पुर-सरिस संपदा छाये ।
असन सयन बर बसन सुहाये । पावहिं सब निज निज मन भाये ।
नित नूतन सुख लखि अनुकूले । सकल बरातिन्ह मंदिर भूले ।
दो०—आवत जानि बरात बर, सुनि गहगहे निसान ।
सजि गज रथ पदचर तुरग, लेन चले अगवान ॥१३५॥
अगवानन्ह जब दीखि बराता । उर आनंद पुलक भर गाता ।
देखि बनाव सहित अगवाना । मुदित बरातिन्ह हने निसाना ।
करि पूजा मान्यता बड़ाई । जनवासे कहिं चले लेवाई ।

बसन बिचित्र पाँवड़े परहीं । देखि धनद धन-मद परिहरहीं ।
अति सुंदर दीन्हेउ जनवासा । जहँ सब कहँ सब भाँति सुपासा ।
पितु-आगमन सुनत दोउ भाई । हृदय न अति आनंद अमाई ।
सकुचन्ह कहि न सकत गुरु पाहीं । पितु-दरसन-लालस मनु माहीं ।
बिस्वामित्र बिनय बड़ि देखी । उपजा उर संतोष बिसेखी ।
हरषि बंधु दोउ हृदय लगाये । पुलक अंग अंबक जल छाये ।
चले जहाँ दसरथ जनवासे । मनहुँ सरोवर तकेउ पिपासे ।

दो०—भूप बिलोके जबहिँ मुनि, आवत सुतन्ह समेत ।
उठेउ हरषि सुख-सिंधु महुँ, चले थाह सी लेत ॥ १३६ ॥

मुनिहिँ दंडवत कीन्ह महीसा । बार बार पदरज धरि सीसा ।
कौसिक राउ लिये उर लाई । कहि असीस पूछी कुसलाई ।
पुनि दंडवत करत दोउ भाई । देखि नृपति उर सुख न समाई ।
सुत हिय लाइ दुसह दुख मेटे । मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे ।
पुनि बसिष्ठ-पद सिर तिन्ह नाये । प्रेम-मुदित मुनि-बर उर लाये ।
बिप्र-बृंद बंदे दुहुँ भाई । मन-भावती असीसैं पाई ।
भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा । लिये उठाइ लाइ उर रामा ।
हरषे लषन देखि दोउ भ्राता । मिले प्रेम-परि-पूरित-गाता ।

दो०—पुर-जन परि-जन जाति-जन, जाचक मंत्री मीत ।
मिले जथा-बिधि सबहि प्रभु, परम कृपालु बिनीत ॥ १३७ ॥

रामहिं देखि बरात जुड़ानी । प्रीति की रीति न जाति बखानी ।
नृप-समीप सोहहिं सुत चारी । जनु धन-धरमादिक तन-धारी ।
सुतन्ह समेत दसरथहि देखी । मुदित नगर-नर-नारि बिसेखी ।
सुमन बरषि सुर हनहिँ निसाना । नाक-नटी नाचहिं करि गाना ।
सतानंद अरु बिप्र सचिव-गन । मागध सूत बिदुष बंदीजन ।

सहित बरात राउ सनमाना । आयसु माँगि फिरे अगवाना ।
प्रथम बरात लगन तें आई । ता तें पुर प्रमोद अधिकाई ।
ब्रह्मानंद लोग सब लहहीं । बढ़इ दिवस निसि बिधि सन कहहीं ।

दो०—रामु सीय सोभा-अवधि, सुकृत-अवधि दोउ राज ।
जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस, मिलि नर-नारि-समाज ॥ १३८ ॥

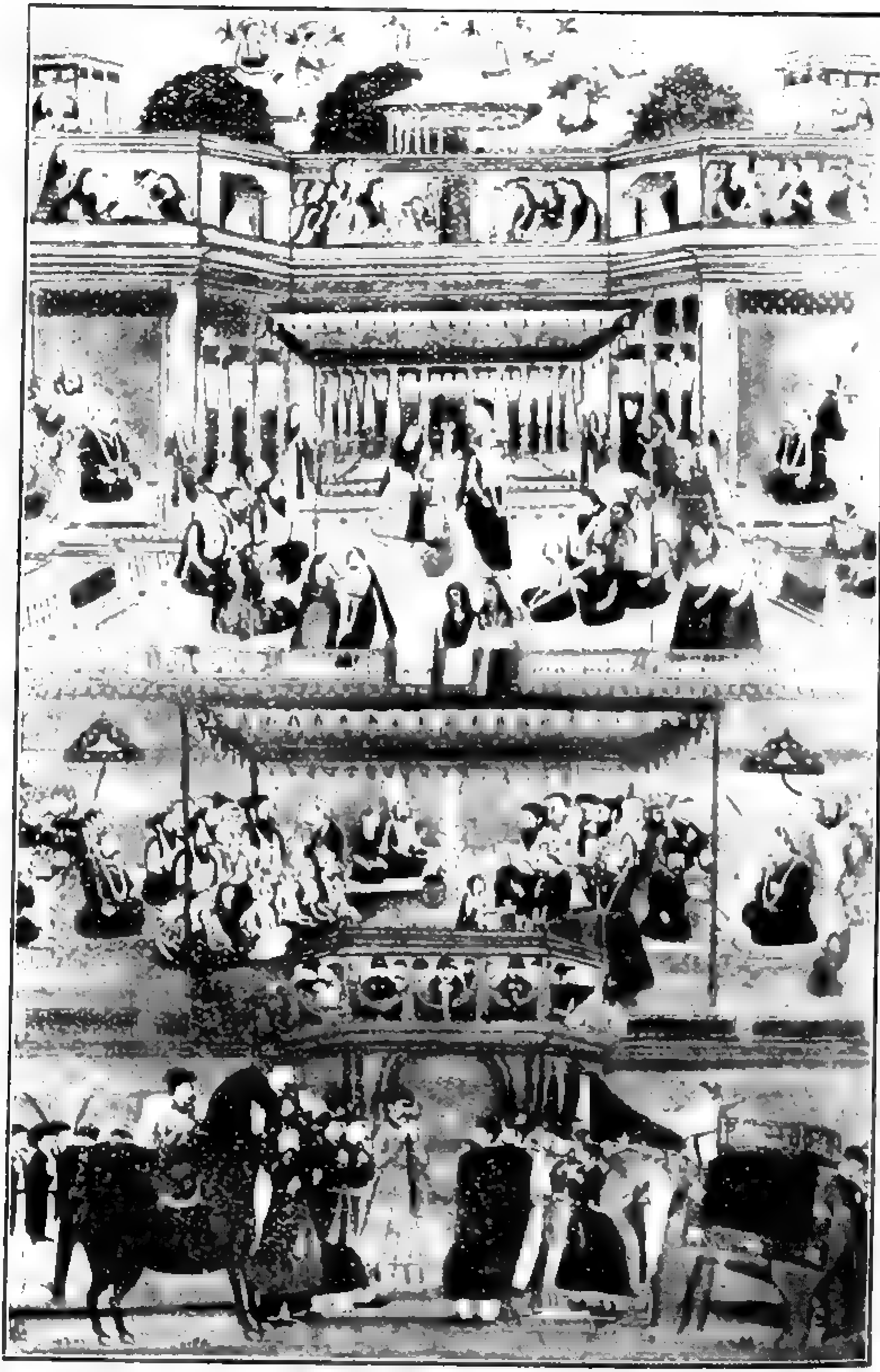
धेनु-धूलि-बेला बिमल, सकल-सुमंगल-मूल ।
बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन, जानि सगुन अनुकूल ॥ १३९ ॥

उपरोहितहि कहेउ नरनाहा । अब बिलंब कर कारन काहा ।
सतानंद तब सचिव बोलाये । मंगल सकल साजि सब ल्याये ।
संख निसान पनव बहु बाजे । मंगल कलस सगुन सुभ साजे ।
सुभग सुआसिनि गावहिँ गीता । करहिं बेद-धुनि बिप्र पुनीता ।
लेन चले सादर एहि भाँती । गये जहाँ जनवास बराती ।
कोसल-पति कर देखि समाजू । अति लघु लाग तिन्हहिं सुर-राजू ।
भयउ समउ अब धारिय पाऊ । यह सुनि परा निसानहि घाऊ ।
गुरुहि पूछि करि कुल-बिधि राजा । चले संग मुनि-साधु-समाजा ।

दो०—भाग्य-बिभव अवधेस कर, देखि देव ब्रह्मादि ।
लगे सराहन सहस-मुख, जानि जनम निज बादि ॥ १४० ॥

जेहि बर बाजि रामु असवारा । तेहि सारदउ न बरनइ पारा ।
शंकर राम-रूप-अनुरागे । नयन पंचदस अति प्रिय लागे ।
हरि हित-सहित रामु जब जोहे । रमा-समेत रमा-पति मोहे ।
निरखि राम-छबि बिधि हरषाने । आठै नयन जानि पछिताने ।
सुर-सेनप-उर बहुत उछाहू । बिधि तें डेवढ़ु सु-लोचन-लाहू ।
रामहिं चितव सुरेस सुजाना । गौतम-साप परम हित माना ।

देव सकल सुरपतिहि सिहाहीं। आजु पुरंदर-सम कोउ नाहीं।
मुदित देव-गन रामहि देखी। नृप-समाज दुहुँ हरष बिसेखी।
छंद—अति-हरष राज-समाजु दुहुँ दिसि दुंदुभी बाजहिं घनी।
बरषहिं सुमन सुर हरषि कहि जयजयति जय रघु-कुल-मनी॥
एहि भाँति जानि बरात आवत बाजने बहु बाजहीं।
रानी सुआसिनि बोलि परिछन हेतु मंगल साजहीं॥
दो०—सजि आरती अनेक बिधि, मंगल सकल सवाँरि।
चलीं मुदित परिछन करन, गज-गामिनि बर नारि॥१४१॥
बिधु-बदनी सब सब मृग-लोचनि। सब निज-तन-छबि-रति-मद-मोचनि।
पहिरे बरन बरन बर चीरा। सकल बिभूषन सजे सरीरा।
सकल सुमंगल अंग बनाये। करहिं गान कल-कंठ लजाये।
कंकन किंकिनि नूपुर बाजहिं। चाल बिलोकि काम-गज लाजहिं।
बाजहिं बाजन बिबिध प्रकारा। नभ अरु नगर सुमंगलचारा।
नयन नीर हठि मंगल जानी। परिछन करहिं मुदित मन रानी।
बेद-बिहित अरु कुल-आचारू। कीन्ह भली बिधि सब व्यवहारू।
करि आरती अरघ तिन्ह दीन्हा। राम गवन मंडप तब कीन्हा।
दो०—नाऊ बारी भाट नट, राम-निछावरि पाइ।
मुदित असीसहिं नाइ सिर, हरषु न हृदय समाइ॥ १४२॥
मिले जनकु दसरथु अति प्रीती। करि बैदिक लौकिक सब रीती।
मिलत महा दोउ राज बिराजे। उपमा खोजि खोजि कबि लाजे।
लही न कतहुँ हारि हिय मानी। इन्ह सम एइ उपमा उर आनी।
सामद देखि देव अनुरागे। सुमन बरषि जसु गावन लागे।
जगु बिरंचि उपजावा जब तें। देखे सुने ब्याह बहु तब तें।
सकल भाँति सम साज समाजू। सम समधी देखे हम आजू।



विवाह-मंडप।

देव-गिरा सुनि सुंदर साँची। प्रीति अलौकिक दुहुँ दिसि माँची।
देत पावँडे अरघु सुहाये। सादर जनकु मंडपहिँ ल्याये।

छंद—मंडप बिलोकि विचित्र रचना रुचिरता मुनि-मन हरे।
निज पानि जनक सुजान सब कहँ आनि सिंहासन धरे॥
कुल-इष्ट-सरिस बसिष्ठ पूजे बिनय करि आसिष लही।
कौसिकहिँ पूजत परम प्रीति कि रीति तौ न परइ कही॥

दो०—बामदेव आदिक रिषय, पूजे मुदित महीस।
दिये दिव्य आसन सबहि, सब सन लही असीस॥ १४३॥

बहुरि कीन्ह कोसल-पति पूजा। जानि ईस-सम भाव न दूजा।
कीन्ह जोरि कर बिनय बड़ाई। कहि निज भाग्य-बिभव-बहुताई।
पूजे भूपति सकल बराती। समधी-सम सादर सब भाँती।
आसन उचित दिये सब काहू। कहउँ कहा मुख एक उछाहू।
सकल बरात जनक सनमानी। दान मान बिनती बर बानी।
बिधि हरि हर दिसि-पति दिन-राऊ। जे जानहिँ रघु - बीर - प्रभाऊ।
कपट - बिप्र - बर- बेषु बनाये। कौतुक देखहिँ अति सचुपाये।
पूजे जनक देव-सम जाने। दिये सुआसन बिनु पहिचाने।

दो०—रामचंद्र-मुख - चंद्र-छबि, लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल, प्रेम प्रमोद न थोर॥ १४४॥

समय बिलोकि बसिष्ठ बोलाये। सादर सतानंद सुनि आये।
बेगि कुअँरि अब आनहु जाई। चले मुदित मुनि आयसु पाई।
रानी सुनि उपरोहित-बानी। प्रमुदित सखिन्ह समेत सयानी।
बिप्र-बधू कुल-बृद्ध बोलाई। करि कुल-रीति सुमंगल गाई।
नारि-बेष जे सुर-बर बामा। सकल सुभाय सुंदरी स्यामा।
तिन्हहिँ देखि सुख पावहिँ नारी। बिनु पहिचानि प्रान तें प्यारी।

बार बार सनमानहिं रानी। उमा - रमा-सारद - सम जानी॥
सीय सवाँरि समाज बनाई। मुदित मंडपहिँ चलीं लेवाई॥
छंद—चलि ल्याइ सीतहि सखी सादर सजि सुमंगल भामिनी।
नव-सप्त साजे सुंदरी सब मत्त-कुंजर - गामिनी॥
कल-गान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिँ काम कोकिल लाजहीं।
मंजीर नूपुर कलित कंकन ताल - गति बर बाजहीं॥
दो०—सोहति बनिता-बृंद महँ, सहज सुहावनि सीय।
छवि-ललना-गन-मध्य जनु, सुखमा-तिय कमनीय॥ १४५॥
सिय सुंदरता बरनि न जाई। लघु-मति बहुत मनोहरताई॥
आवत दीखि बरातिन्ह सीता। रूप-रासि सब भाँति पुनीता॥
सबहि मनहिँ मन किये प्रनामा। देखि राम भये पूरन-कामा॥
हरषे दसरथ सुतन्ह समेता। कहि न जाइ उर आनँद जेता॥
सुर प्रनामु करि बरिसहिं फूला। मुनि-असीस-धुनि मंगल-मूला॥
गान निसान कोलाहलु भारी। प्रेम - प्रमोद - मगन नर-नारी॥
एहि बिधि सीय मंडपहिँ आई। प्रमुदित सांति पढ़हिँ मुनिराई॥
तेहि अवसर कर बिधि ब्यवहारू। दुहुँ कुल-गुरु सब कीन्ह अचारू॥
छंद—आचार करि गुरु गौरि गन-पति मुदित बिप्र पुजावहीं।
सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुख पावहीं॥
मधुपर्क मंगल-द्रव्य जो जेहि समय मुनि मन महँ चहहिं।
भरे कनक-कोपर-कलस सो तब लिये परिचारक रहहिं॥
कुल-रीति प्रीति समेत रबि कहि देत सबु सादर कियो।
एहि भाँति देव पुजाइ सीतहि सुभग सिंहासन दियो॥
सिय - राम - अवलोकनि परसपर प्रेम काहु न लखि परइ।
मन - बुद्धि - बर - बानी - अगोचर प्रगट कबि कैसे करइ॥

दो०—होम समय तनु धरि अनलु, अति सुख आहुति लेहिं ।
बिप्र-बेष धरि बेद सब, कहि बिवाह-बिधि देहिं ॥ १४६ ॥

जनक-पाट-महिषी जग जानी । सीय-मातु किमि जाइ बखानी ।
सुजस सुकृत सुख सुंदरताई । सब समेटि बिधि रची बनाई ।
समउ जानि मुनि-बरन्ह बोलाई । सुनत सुआसिनि सादर ल्याई ।
जनक-बाम-दिसि सोह सुनयना । हिमि-गिरि-संग बनी जनु मयना ।
कनक-कलस मनि-कोपर रूरे । सुचि-सुगंध-मंगल-जल-पूरे ।
निज कर मुदित राय अरु रानी । धरे राम के आगे आनी ।
पढ़हिं बेद मुनि मंगल-बानी । गगन सुमन झरि अवसर जानी ।
बर बिलोकि दंपति अनुरागे । पाय पुनीत पखारन लागे ।

छंद—लागे पखारन पाय-पंकज प्रेम तनु पुलकावली ।
नभ नगर गान-निसान-जय-धुनि उमगि जनु चहुँ दिसि चली ॥
जे पद-सरोज मनोज-अरि-उर-सर सदैव बिराजहीं ।
जे सुकृत सुमिरत बिमलता मन सकल कलि-मल भाजहीं ॥
बर-कुअँरि-करतल जोरि साखोचार दोउ कुल-गुरु करहिं ।
भयो पानि-गहन बिलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आनँद भरहिं ॥
सुख-मूल दूलह देखि दंपति पुलक तनु हुलस्यो हियो ।
करि लोक-बेद-बिधान कन्या-दान नृप-भूषन कियो ॥
हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि श्री सागर दई ।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी बिस्व कल कीरति नई ॥
क्यों करहिँ बिनय बिदेह कियो बिदेह मूरति सावँरी ।
करि होम बिधिवत गाँठि जोरी होन लागी भावँरी ॥

दो०—जय-धुनि बंदी-बेद-धुनि, मंगल-गान निसान ।
सुनि हरषहिँ बरषहिँ बिबुध, सुर-तरु-सुमन सुजान ॥ १४७ ॥

वृंदारका-गन सुमन बरषहिं राउ जनवासहिं चले ।
दुंदुभी जय-धुनि बेद-धुनि नभ नगर कौतूहल भले ॥
तब सखी मंगल-गान करत मुनीस आयसु पाइ कै ।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुंदरि चलीं कोहबर ल्याइ कै ॥
दो०—पुनि पुनि रामहिं चितव सिय, सकुचति मन सकुचै न ।
हरत मनोहर-मीन-छबि, प्रेम-पियासे नैन ॥ १४९ ॥
स्याम सरीर सुभाय सुहावन । सोभा कोटि-मनोज-लजावन ।
जावक-जुत पद-कमल सुहाये । मुनि-मन-मधुप रहत जिन्ह छाये ।
पीत पुनीत मनोहर धोती । हरत बाल-रवि-दामिनि-जोती ।
कल किंकिन कटि-सूत्र मनोहर । बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर ।
पीत जनेउ महा-छबि देई । कर-मुद्रिका चोरि चित लेई ।
सोहत ब्याह-साज सब साजे । उर आयत भूषन उर राजे ।
पियर उपरना काँखा - सोती । दुहुं आँचरन्हि लगे मनि मोती ।
नयन कमल कल कुंडल काना । बदनु सकल सौंदर्ज-निधाना ।
सुंदर भृकुटि मनोहर नासा । भाल-तिलकु रुचिरता-निवासा ।
सोहत मौर मनोहर माथे । मंगल-मय मुकुता-मनि गाथे ।
छंद—गाथे महा-मनि मौर मंजुल अंग सब चित चोरहीं ।
पुर-नारि सुर-सुंदरी बरहि बिलोकि सब तृन तोरहीं ॥
मनि बसन भूषन वारि आरति करहिं मंगल गावहीं ।
सुर सुमन बरिसहिं सूत मागध बंदि सुजस सुनावहीं ॥
कोहबरहिं आने कुअँर कुअँरि सुआसिनिन्हि सुख पाइ कै ।
अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाइ कै ॥
लहकौरि गौरि सिखाव रामहिं सीय सन सारद कहहिं ।
रनि-वासु हास-बिलास-रस-बस जनम को फल सब लहहिं ॥

निज-पानि-मनि महँ देखि प्रति-मूरति सु-रूप-निधान की।
चालति न भुज-वल्ली विलोकनि-विरह-भय-बस जानकी ॥
कौतुक विनोद प्रमोद प्रेम न जाइ कहि जानहिं अली।
बर कुअँरि सुंदर सकल सखी लिवाइ जनवासहिं चली ॥
तेहि समय सुनिय असीस जहँ तहँ नगर नभ आनँद महा।
चिरजिअहु जोरी चारु चारयौ मुदित मन सबही कहा ॥
जोगींद्र सिद्ध मुनीस देव विलोकि प्रभु दुंदुभि हनी।
चले हरपि बरषि प्रसून निज निज लोक जय जय जय भनी ॥

दो०—सहित बधूटिन्ह कुअँर सब, तब आये पितु पास।
सोभा मंगल मोद भरि, उमगेउ जनु जनवास ॥ १५० ॥

पुनि जेवनार भई बहु भाँती। पठये जनक बोलाइ बराती।
परत पाँवड़े बसन अनूपा। सुतन्ह समेत गवन किय भूपा।
सादर सब के पाँय पखारे। जथा जोग पीढन बैठारे।
धोये जनक अवध-पति-चरना। सील सनेहु जाइ नहिं बरना।
बहुरि राम-पद-पंकज धोये। जे हर-हृदय-कमल महँ गोये।
तीनिउ भाइ राम-सम जानी। धोये चरन जनक निज पानी।
आसन उचित सबहि नृप दीन्हे। बोलि सूपकारी सब लीन्हे।
सादर लगे परन पनवारे। कनक-कील मनि-पान सँवारे।

दो०—सूपोदन सुरभी सरपि, सुंदर स्वाद पुनीत।
छन महँ सब के परुसि गे, चतुर सुआर बिनीत ॥ १५१ ॥

पंच-कवलि करि जेवन लागे। गारि गान सुनि अति अनुरागे।
भाँति अनेक परे पकवाने। सुधा-सरिस नहिं जाहिं बखाने।
परुसन लगे सुआर सुजाना। बिंजन बिबिध नाम को जाना।
चारि भाँति भोजन बिधि गाई। एक एक रस बरनि न जाई।

छ-रस रुचिर विंजन बहु जाती । एक एक रस अगनित भाँती ।
जेंवत देहिं मधुर धुनि गारी । लेइ लेइ नाम पुरुष अरु नारी ।
समय सुहावनि गारि बिराजा । हँसत राउ सुनि सहित समाजा ।
एहि विधि सबही भोजन कीन्हा । आदर सहित आचमन दीन्हा ।

दो०—देइ पान पूजे जनक, दसरथ सहित समाज ।
जनवासे गवने मुदित, सकल--भूप--सिरताज ॥ १५२ ॥

नित नूतन मंगल पुर माहीं । निमिष सरिस दिन जामिनि जाहीं ।
जनक सनेह सीलु करतूती । नृप सब भाँति सराह बिभूती ।
दिन उठि बिदा अवधपति माँगा । राखहिं जनक सहित अनुरागा ।
नित नूतन आदर अधिकाई । दिन-प्रति सहस भाँति पहुनाई ।
नित नव नगर अनंद उछाहू । दसरथ-गवन सुहाइ न काहू ।
बहुत दिवस बीते एहि भाँती । जनु सनेह-रजु बँधे बराती ।
कौसिक सतानंद तब जाई । कहा बिदेह नृपहि समुझाई ।
अब दसरथ कहँ आयसु देहू । जद्यपि छाँड़ि न सकहु सनेहू ।
भलेहिं नाथ कहि सचिव बोलाये । कहि जय-जीव सीस तिन्ह नाये ।

दो०—अवध-नाथ चाहत चलन, भीतर करहु जनाउ ।
भयं प्रेम-बस सचिव सुनि, बिप्र सभासद राउ ॥१५३॥

पुर-बासी सुनि चलिहि बराता । पूछत बिकल परसपर बाता ।
सत्य गवन सुनि सब बिलखाने । मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने ।
जहँ जहँ आवत बसे बराती । तहँ तहँ सिद्ध चला बहु भाँती ।
बिबिध भाँति मेवा पकवाना । भोजन-साज न जाइ बखाना ।
भरि भरि बसह अपार कहारा । पठये जनक अनेक सुआरा ।
तुरग लाख रथ सहस पचीसा । सकल सवाँरे नख अरु सीसा ।

मत्त सहस दस सिंधुर साजे। जिन्हहिं देखि दिसि-कुंजर लाजे।
कनक वसन मनि भरि भरि जाना। महिषी धेनु बस्तु विधि नाना।
दो०—दाइज अमित न सकिय कहि, दीन्ह बिदेह बहोरि।
जो अवलोकत लोकपति,-लोक-संपदा थोरि॥ १५४॥
सब समाजु एहि भाँति बनाई। जनक अवधपुर दीन्ह पठाई।
चलिहि बरात सुनत सब रानी। बिकल मीनगन जनु लघु पानी।
पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं। देइ असीस सिखावन देहीं।
होयेहु संतत पियहि पियारी। चिर अहिवात असीस हमारी।
सासु-ससुर-गुरु-सेवा करेहू। पति-रुख लखि आयसु अनुसरेहू।
अति-सनेह-बस सखी सयानी। नारि-धरमु सिखवहिं मृदु बानी।
सादर सकल कुअँरि समुझाई। रानिन्ह बार बार उर लाई।
बहुरि बहुरि भेटहिं महतारी। कहहिँ बिरंचि रची कत नारी।
दो०—तेहि अवसर भाइन्ह सहित, राम भानु-कुल-केतु।
चले जनक-मंदिर मुदित, बिदा करावन हेतु॥ १५५॥
रूप-सिंधु सब बंधु लखि, हरषि उठेउ रनिवासु।
करहिं निछावरि आरती, महा-मुदित-मन सासु॥ १५६॥
देखि राम-छबि अति अनुरागीं। प्रेम-बिबस पुनि पुनि पद लागीं।
रही न लाज प्रीति उर छाई। सहज सनेह बरनि किमि जाई।
भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाये। छ-रस असन अति हेतु जेवाये।
बोले रामु सुअवसर जानी। सील-सनेह-सकुच-मय बानी।
राउ अवधपुर चहत सिधाये। बिदा होन हम इहाँ पठाये।
मातु मुदित मन आयसु देहू। बालक जानि करब नित नेहू।
सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू। बोलि न सकहिँ प्रेम-बस सासू।
हृदय लगाइ कुअँरि सब लीन्ही। पतिन्ह सौंपि बिनती अति कीन्ही।

छंद—करि बिनय सिय रामहिँ समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहइ।
बलि जाउँ तात सुजान तुम कहँ बिदित गति सब की अहइ॥
परिवार पुर-जन मोहि राजहि प्रान-प्रिय सिय जानिबी।
तुलसी सुसील सनेह लखि निज किंकरी करि मानिबी॥
सो०—तुम परिपूरन-काम, जान सिरोमनि भाव-प्रिय।
जन-गुन-गाहक राम, दोष-दलन करुनायतन॥ १५७॥
अस कहि रही चरन गहि रानी। प्रेम-पंक जनु गिरा समानी।
सुनि सनेह-सानी वर बानी। बहु बिधि राम सासु सनमानी।
राम बिदा माँगा कर जोरी। कीन्ह प्रनाम बहोरि बहोरी।
पाइ असीस बहुरि सिरु नाई। भाइन्ह सहित चले रघुराई।
मंजु-मधुर-मूरति उर आनी। भईं सनेह-सिथिल सब रानी।
पुनि धीरज धरि कुअँरि हँकारी। बार बार भेटहिँ महतारी।
पहुँचावहिँ फिरि मिलहिँ बहोरी। बढ़ी परसपर प्रीति न थोरी।
पुनि पुनि मिलति सखिन्ह बिलगाई। बाल-बच्छ जिमि धेनु लवाई।
दो०—प्रेम-बिबस परिवार सब, जानि सुलगन नरेस।
कुअँरि चढ़ाई पालकिन्ह, सुमिरे सिद्ध गनेस॥ १५८॥
बहु बिधि भूप सुता समुझाई। नारि-धरम कुल-रीति सिखाई।
दासी दास दिये बहुतेरे। सुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे।
सीय चलत ब्याकुल पुर-बासी। होहिँ सगुन सुभ मंगल-रासी।
भू-सुर सचिव समेत समाजा। संग चले पहुँचावन राजा।
समय बिलोकि बाजने बाजे। रथ गज बाजि बरातिन्ह साजे।
दसरथ बिप्र बोलि सब लीन्हे। दान मान परिपूरन कीन्हे।
चरन-सरोज-धूरि धरि सीसा। मुदित महीपति पाइ असीसा।
सुमिरि गजानन कीन्ह पयाना। मंगल-मूल सगुन भये नाना।

दो०—बीच बीच बर बास करि, मग-लोगन्ह सुख देत ।
अवध समीप पुनीत दिन, पहुँची आइ जनेत ॥ १५९ ॥

हने निसान पनव बर बाजे । भेरि-संख-धुनि हय गय गाजे ।
झाँझि भेरि डिंडिमी सुहाई । सरस-राग बाजहिं सहनाई ।
समय जानि गुरु आयसु दीन्हा । पुर-प्रवेस रघु-कुल-मनि कीन्हा ।
सुमिरि संभु गिरिजा गन राजा । मुदित महीपति सहित समाजा ।
मागध सूत बंदि नट नागर । गावहिं जस तिहुँ लोक उजागर ।
बिपुल बाजने बाजन लागे । नभ सुर नगर लोग अनुरागे ।
पुर-बासिन्ह तब राउ जोहारे । देखत रामहिँ भये सुखारे ।
करहिँ निछावर मनि गन चीरा । बारि बिलोचन पुलक सरीरा ।
आरति करहिँ मुदित पुर-नारी । हरषहिँ निरखि कुअँर बर चारी ।
सिबिका सुभग उहार उघारी । देखि दुलहिनिन्ह होहिँ सुखारी ।

दो०—एहि बिधि सबही देत सुख, आये राज-दुआर ।
मुदित मातु परिछन करहिँ, बधुन्ह समेत कुमार ॥ १६० ॥

करहिँ आरती बारहि बारा । प्रेम प्रमोद कहइ को पारा ।
भूषन मनि पट नाना जाती । करहि निछावरि अगनित भाँती ।
बधुन्ह समेत देखि सुत चारी । परमानंद-मगन महतारी ।
पुनि पुनि सीय-राम-छबि देखी । मुदित सुफल जग जीवन लेखी ।
सखी सीय-मुख पुनि पुनि चाही । गान करहिँ निज सुकृत सराही ।
बरषहिं सुमन छनहिँ छन देवा । नाचहिँ गावहिँ लावहिँ सेवा ।
देखि मनोहर चारिउ जोरी । सारद उपमा सकल ढढोरी ।
देत न बनहिँ निपट लघु लागी । एकटक रहीं रूप-अनुरागी ।

दो०—निगम-नीति कुल-रीति करि, अरघ पावँड़े देत ।
बधुन्ह सहित सुत परिछि सब, चलीँ लेवाइ निकेत ॥१६१॥

वधुन्ह समेत कुमार सब, रानिन्ह सहित महीस।
पुनि पुनि बंदत गुरु-चरन, देत असीस मुनीस ॥१६२॥
मंगल मोद उछाह नित, जाहिँ दिवस एहि भाँति।
उमगी अवध अनंद भरि, अधिक अधिक अधिकाति ॥१६३॥

अयोध्या कांड।

दो०—श्रीगुरु-चरन-सरोज-रज, निज-मन-मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर-बिमल-जसु, जो दायक फल चारि॥ १॥

जब ते राम ब्याहि घर आये। नित नव मंगल मोद बधाये।
भुवन चारि-दस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुख-बारी।
रिधि-सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहँ आई।
मनि-गन पुर-नर-नारि-सुजाती। सुचि अमोल सुंदर सब भाँती।
कहि न जाइ कछु नगर-बिभूती। जनु एतनिअ बिरंचि करतूती।
सब बिधि सब पुर-लोग सुखारी। रामचंद-मुख-चंदु निहारी।
मुदित मातु सब सखी सहेली। फलित बिलोकि मनोरथ-बेली।
राम-रूप-गुन-सीलु-सुभाऊ। प्रमुदित होहिं देखि सुनि राऊ।

दो०—सब के उर अभिलाषु अस, कहहिं मनाइ महेसु।
आपु अछत जुबराज पदु, रामहिं देउ नरेसु॥ २॥

एक समय सब सहित समाजा। राज-सभा रघुराज बिराजा।
सकल-सुकृत-मूरति नरनाहू। राम-सुजसु सुनि अतिहि उछाहू।
नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे। लोकप करहिं प्रीति रुख राखे।
त्रिभुवन तीन काल जग माहीं। भूरि भाग दसरथ सम नाहीं।
मंगल-मूल रामु सुत जासू। जो कछु कहिय थोर सबु तासू।
राय सुभाय मुकुरु कर लीन्हा। बदनु बिलोकि मुकुट सम कीन्हा।
स्रवन समीप भये सित केसा। मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा।
नृप जुबराज राम कहुँ देहू। जीवन जनम-लाहु किन लेहू।

दो०—यह बिचारु उर आनि नृप, सुदिनु सुअवसरु पाइ।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन, गुरुहि सुनायेउ जाइ॥ ३॥
कहइ भुआल सुनिय मुनि-नायक। भये राम सब बिधि सब लायक।
सेवक सचिव सकल पुर-बासी। जे हमरे अरि मित्र उदासी।
सबहिं रामु प्रिय जेहि बिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु-धरि सोही।
बिप्र सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोहु सब रउरहि नाईं।
जे गुरु-चरन-रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं।
मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजे। सबु पायेउँ रज पावनि पूजे।
अब अभिलाषु एकु मन मोरे। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरे।
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू। कहेउ नरेसु रजायसु देहू।
दो०—राजन राउर नामु जसु, सब अभिमत-दातार।
फल-अनुगामी महिप-मनि, मन-अभिलाषु तुम्हार॥ ४॥
सब बिधि गुरु प्रसन्न जिय जानी। बोलेउ राउ रहसि मृदु बानी।
नाथ रामु करियहि जुबराजू। कहिय कृपा करि करिय समाजू।
मोहि अछत यहु होइ उछाहू। लहहिं लोग सब लोचन-लाहू।
प्रभु-प्रसाद सिव सबइ निबाहीं। यह लालसा एक मन माहीं।
पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ। जेहि न होइ पाछे पछिताऊ।
सुनि मुनि दसरथ-बचन सुहाये। मंगल-मोद-मूल मन भाये।
सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं। जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं।
भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी। रामु पुनीत प्रेम-अनुगामी।
दो०—बेगि बिलंबु न करिय नृप, साजिय सबुइ समाजु।
सुदिनु सुमंगलु तबहिं जब, रामु होहिं जुबराजु॥ ५॥
मुदित महीपति मंदिर आये। सेवक सचिव सुमंत्र बोलाये।
कहि जय-जीव सीस तिन्ह नाये। भूप सुमंगल बचन सुनाये।

प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू । रामहिं राय देहु जुबराजू ।
जौ पंचहि मत लागइ नीका । करहु हरषि हिय रामहिं टीका ।
वेद विदित कहि सकल विधाना । कहेउ रचहु पुर विविध विताना ।
सफल रसाल पूंग-फल केरा । रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा ।
रचहु मंजु मनि चौकइ चारू । कहहु बनावन बेगि बजारू ।
पूजहु गन-पति गुरु कुल-देवा । सब विधि करहु भूमि-सुर-सेवा ।

दो०—एहि अवसर मंगलु परम, सुनि रहसेउ रनिवासु ।
सोभत लखि विधु बढ़त जनु, बारिधि बीचि-विलासु ॥ ६ ॥
राम-राज-अभिषेकु सुनि, हिय हरषे नर-नारि ।
लगे सुमंगल सजन सब, बिधि अनुकूल बिचारि ॥ ७ ॥

बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना । पुर-प्रमोद नहिं जाइ बखाना ।
भरत-आगमनु सकल मनावहिं । आवहिं बेगि नयन-फल पावहिं ।
हाट बाट घर गली अथाई । कहहिं परसपर लोग लोगाई ।
कालि लगन भलि केतिक बारा । पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा ।
कनक-सिंहासन सीय - समेता । बैठहिं रामु होइ चित चेता ।
सकल कहहिं कब होइहि काली । बिघन मनावहिं देव कुचाली ।
तिन्हहिं सुहाइ न अवध बधावा । चोरहिं चंदिनि राति न भावा ।
सारद बोलि बिनय सुर करहीं । बारहिं बार पाँव लै परहीं ।

दो०—बिपति हमारि बिलोकि बड़ि, मातु करिय सोइ आजु ।
रामु जाहिं बन राजु तजि, होइ सकल सुर-काजु ॥ ८ ॥
नामु मंथरा मंदमति, चेरी कैकइ केरि ।
अजस-पेटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि ॥ ९ ॥

दीख मंथरा नगरु-बनावा । मंजुल मंगल बाज बधावा ।
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू । राम-तिलकु सुनि भा उर दाहू ।

करइ बिचारु कुबुद्धि कुजाती । होइ अकाजु कवनि बिधि राती ।
देखि लागि मधु कुटिल किराती । जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भाँती ।
भरत-मातु पहिँ गइ बिलखानी । का अनमनि हसि कह हँसिरानी ।
उतरु देइ नहिं लेइ उसासू । नारि-चरित करि ढारइ आँसू ।
हँसि कह रानि गाल बड़ तोरे । दीन्ह लखन सिख अस मन मोरे ।
तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि । छाड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि ।

दो०—सभय रानि कह कहसि किन, कुसल रामु महि-पालु ।
लषन भरतु रिपुदमनु सुनि, भा कुबरी उर सालु ॥ १० ॥

कत सिख देइ हमहिं कोउ माई । गालु करब केहि कर बलु पाई ।
रामहिं छाड़ि कुसल केहि आजू । जिनहिं जनेसु देइ जुबराजू ।
भयहु कौसिलहि बिधि अति दाहिन । देखत गरब रहत उर नाहिन ।
देखहु कस न जाइ सब सोभा । जो अवलोकि मोर मनु छोभा ।
पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारे । जानति हहु बस नाहु हमारे ।
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई । लखहु न भूप-कपट-चतुराई ।
सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी । झुकी रानि अब रहु अरगानी ।
पुनि अस कबहुँ कहसि घर-फोरी । तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी ।

दो०—काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि ।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि, भरत-मातु मुसुकानि ॥ ११ ॥

प्रिय-बादिनि सिख दीन्हिउँ तोही । सपनेहु तो पर कोपु न मोही ।
सुदिनु सु-मंगल-दायकु सोई । तोर कहा फुर जेहि दिन होई ।
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई । यह दिन-कर-कुल-रीति सुहाई ।
राम-तिलकु जौं साँचेहु काली । देउँ माँगु मन-भावत आली ।
कौसल्या-सम सब महतारी । रामहिं सहज सुभाय पियारी ।
मो पर करहिं सनेहु बिसेखी । मैं करि प्रीति परीछा देखी ।

जौ विधि जनमु देइ करि छोहू। होहिं राम-सिय पूत-पतोहू।
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरे। तिन्ह के तिलक छोभु कस तोरे।
दो०—भरत-सपथ तोहि सत्य कहु, परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमय करसि, कारन मोहि सुनाउ॥ १२॥
एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी।
फोरइ जोग कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रउरेहिं लागा।
कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहिं करुइ मैं माई।
हमहुँ कहब अब ठकुर-सोहाती। नाहिं त मौन रहब दिन राती।
करि कुरूप बिधि पर-बस कीन्हा। बवा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा।
कोउ नृप होय हमहिं का हानी। चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी।
जारइ जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाय तुम्हारा।
तातें कछुक बात अनुसारी। छमिय देबि बड़ि चूक हमारी।
दो०—गूढ़-कपट-प्रिय-वचन सुनि, तीय-अधर-बुधि रानि।
सुर-माया-बस बैरिनिहि, सुहृद जानि पतियानि॥ १३॥
सादर पुनि पुनि पूछति ओही। सबरी-गान मृगी जनु मोही।
तसि मति फिरी अहइ जसि भावी। रहसी चेरि घात जनु फावी।
तुम पूछहु मैं कहत डेराऊँ। धरेउ मोर घर-फोरी नाऊँ।
सजि प्रतीति बहु बिधि गढ़ि छोली। अवध-साढ़साती तब बोली।
प्रिय सिय-रामु कहा तुम्ह रानी। रामहिं तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी।
रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरे रिपु होहिं पिरीते।
भानु कमल-कुल-पोषनि-हारा। बिनु जल जारि करइ सोइ छारा।
जर तुम्हारि चह सवति उखारी। रूँधहु करि उपाय बर बारी।
दो०—तुम्हहिं न सोचु सोहाग-बल, निज बस जानहु राउ।
मन मलीन मुहँ-मीठ नृपु, राउर सरल सुभाउ॥ १४॥

चतुर गँभीर राम-महतारी। बीचु पाइ निज बात सवाँरी।
पठयं भरतु भूप ननिअउरे। राम - मातु - मत जानव रउरे।
सेवहिं सकल सवति मोहि नीके। गरवित भरत-मातु बल पी के।
सालु तुम्हार कौसिलहि माई। कपट चतुर नहिं होइ जनाई।
राजहिं तुम्ह पर प्रेम विसेखी। सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी।
रचि प्रपंच भूपहिं अपनाई। राम-तिलक - हित लगन धराई।
यह कुल उचित राम कहुँ टीका। सबहि सुहाइ मोहि सुठि नीका।
आगिल बात समुझि डर मोही। देउ दैव फिरि सो फलु ओही।

दो०—रचि पचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट-प्रबोधु।
कहेसि कथा सत सवति कै, जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु॥ १५॥

भावी-बस प्रतीति उर आई। पूछ रानि पुनि सपथ देवाई।
का पूछहु तुम्ह अबहु न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना।
भयउ पाखु दिन सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू।
खाइय पहिरिय राज तुम्हारे। सत्य कहे नहिं दोषु हमारे।
जौं असत्य कछु कहब बनाई। तौ बिधि देइहि हमहिं सजाई।
रामहिं तिलक कालि जौं भयऊ। तुम्ह कहुँ बिपति-बीजु बिधि बयऊ।
रेख खँचाइ कहउँ बल भाखी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी।
जौं सुत-सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई।

दो०—कद्रू बिनतहि दीन्ह दुख, तुम्हहिं कौसिला देब।
भरत बंदि-गृह सेइहहिं, लषनु राम के नेब॥ १६॥

कैकय-सुता सुनत कटु-बानी। कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी।
तन पसेउ कदली जिमि काँपी। कुबरी दसन जीभ तब चाँपी।
कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरजु धरहु प्रबोधेसि रानी।
कीन्हेसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू। जिमि न नवइ फिरि उकठ कुकाठू।

फिरा करम प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहइ मानि मराली।
सुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दहिन आँखि नित फरकइ मोरी।
दिन प्रति देखहुँ राति कुसपने। कहउँ न तोहि मोह-बस अपने।
काह करउँ सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊ।

दो०—अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहु क कीन्ह।
कोहि अघ एकहि बार मोहि, दैव दुसह दुख दीन्ह॥ १७॥

नैहर जनमु भरब बरु जाई। जियत न करब सवति-सेवकाई।
अरि-बस दैव जियावत जाही। मरनु नीक तेहि जीव न चाही।
दीन-बचन कह बहु विधि रानी। सुनि कुबरी तिय-माया ठानी।
अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुख सोहागु तुम्ह कहँ दिन दूना।
जेइ राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि यह फलु परिपाका।
जब तें कुमत सुना मैं स्वामिनि। भूख न बासर नींद न जामिनि।
पूछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहिं यह साँची।
भामिनि करहु त कहउँ उपाऊ। है तुम्हरी सेवा-बस राऊ।

दो०—परउँ कूप तव बचन पर, सकउँ पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुख देखि बड़, कस न करब हित लागि॥ १८॥

कुबरी करी कुबलि कैकेई। कपट-छुरी उर-पाहन टेई।
लखइ न रानि निकट दुख कैसे। चरइ हरित त्रिन बलि-पसु जैसे।
सुनत बात मृदु अंत कठोरी। देति मनहुँ मधु माहुर घोरी।
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं।
दुइ बर-दान भूप सन थाती। माँगहु आजु जुड़ावहु छाती।
सुतहि राजु रामहिं बनवासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू।
भूपति राम-सपथ जब करई। तब माँगहु जेहि बचन न टरई।
होइ अकाजु आजु निसि बीते। बचनु मोर प्रिय मानहु जी ते।

दो०—बड़ कुघातु करि पातकिनि, कहेसि कोप-गृह जाहु ।
काजु सवाँरेहु सजग सब, सहसा जनि पतियाहु ॥ १९ ॥
कुबरिहि रानि प्रान-प्रिय जानी । बार बार बड़ि बुद्धि बखानी ।
तोहि सम हित न मोर संसारा । बहे जात कर भइसि अधारा ।
जौं बिधि पुरव मनोरथ काली । करउँ तोहि चष-पूतरि आली ।
बहु बिधि चेरिहि आदरु देई । कोप-भवन गवनी कैकेई ।
बिपति - बीजु बरषा-रितु चेरी । भुइँ भइ कुमति कैकई केरी ।
पाइ कपट-जलु अंकुर जामा । बर दोउ दल दुख-फल परिनामा ।
कोप समाजु साजि सब सोई । राजु करत निज कुमति बिगोई ।
राउर-नगर कोलाहलु होई । यह कुचालि कछु जान न कोई ।
दो०—प्रमुदित पुर नर-नारि सब, सजहिं सुमंगल चार ।
एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं, भीर भूप-दरबार ॥ २० ॥
साँझ समय सानंद नृप, गयउ कैकई - गेह ।
गवनु निठुरता-निकट किय, जनु धरि देह सनेह ॥ २१ ॥
कोप-भवन सुनि सकुचेउ राऊ । भय-बस अगहुँड परइ न पाऊ ।
सुर-पति बसइ बाँह-बल जाके । नर-पति सकल रहहिं रुख ताके ।
सो सुनि तिय-रिस गयउ सुखाई । देखहु काम-प्रताप बड़ाई ।
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे । ते रति-नाथ सुमन-सर मारे ।
सभय नरेसु प्रिया पहिं गयऊ । देखि दसा दुख दारुन भयऊ ।
भूमि-सयन पट मोट पुराना । दिये डारि तन-भूषन नाना ।
कुमतिहि कसि कुबेसता फाबी । अन-अहिवातु-सूच जनु भावी ।
जाइ निकट नृप कह मृदु बानी । प्रान-प्रिया केहि हेतु रिसानी ।
सो०—बार बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिक-बचनि ।
कारन मोहि सुनाउ, गज-गामिनि निज कोप कर ॥ २२ ॥

अनहित तोर प्रिया केहि कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जम चह लीन्हा।
कहु केहि रंकहि करउँ नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासउँ देसू।
सकउँ तोर अरि अमरउ मारी। काह कीट बपुरे नर-नारी।
जानसि मोर सुभाउ वरोरू। मन तव आनन - चंद - चकोरू।
प्रिया प्रान सुत सरवसु मोरे। परि-जन प्रजा सकल बस तोरे।
जौ कछु कहउँ कपट करि तोही। भामिनि राम-सपथ- सत मोही।
बिहँसि माँगु मन-भावति बाता। भूषन सजहि मनोहर गाता।
घरी कुघरी समुझि जिय देखू। बेगि प्रिया परिहरहि कुवेखू।

दो०—यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि, बिहँसि उठी मति-मंद।
भूषन सजति बिलोकि मृग, मनहुँ किरातिनि-फंद॥ २३॥

पुनि कह राउ सुहृद जिय जानी। प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी।
भामिनि भयउ तोर मन-भावा। घर घर नगर अनंद-बधावा।
रामहिं देउँ कालि जुबराजू। सजहि सुलोचनि मंगल-साजू।
दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू।
ऐसिउ पीर बिहँसि तेइ गोई। चोर-नारि जिमि प्रगटि न रोई।
लखी न भूप कपट चतुराई। कोटि-कुटिल-मनि गुरू पढ़ाई।
जद्यपि नीति-निपुन नर-नाहू। नारि-चरित जल-निधि अवगाहू।
कपट - सनेह बढ़ाइ बहोरी। बोली बिहँसि नयन मुँह मोरी।

दो०—माँगु माँगु पै कहहु पिय, कबहुँ न देहु न लेहु।
देन कहेहु बर-दान दुइ, तेउ पावत संदेहु॥ २४॥

जानेउँ मरम राउ हँसि कहई। तुम्हहिं कोहाब परम प्रिय अहई।
थाती राखि न माँगेहु काऊ। बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ।
झूठेहु हमहिं दोस जनि देहू। दुइ कै चारि माँगि किन लेहू।
रघु-कुल-रीति सदा चलि आई। प्रान जाहु बरु बचनु न जाई।

नहिं असत्य-सम पातक-पुंजा । गिरि-सम होहिं कि कोटिक गुंजा ।
सत्य-मूल सब सुकृत सुहाये । वेद पुरान विदित मुनि गाये ।
तेहि पर राम शपथ करि आई । सुकृत - सनेह - अवधि रघुराई ।
बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली । कुमत-कुविहँग-कुलह जनु खोली ।

दो०—भूप - मनोरथ सुभग बन, सुख सु-विहंग-समाजु ।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति, बचन भयंकर बाजु ॥ २५ ॥

सुनहुँ प्रान-प्रिय भावत जी का । देहु एक बर भरतहि टीका ।
मागऊँ दूसर वर कर-जोरी । पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी ।
तापस-बेष बिसेषि उदासी । चौदह बरिस राम बन-बासी ।
सुनि मृदु-बचन भूप-हिय सोकू । ससि-कर छुअत बिकल जिमि कोकू ।
गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा । जनु सचान - बन झपटेउ लावा ।
बिबरन भयउ निपट नर-पालू । दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू ।
माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन । तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ।
मोर मनोरथ - सुर - तरु फूला । फरत करिनि जिमि हतेउ समूला ।
अवध उजारि कीन्हि कैकेई । दीन्हेसि अचल बिपति कै नेई ।

दो०—कवने अवसर का भयउ, गयउ नारि-बिस्वास ।
जोग-सिद्धि-फल-समय जिमि, जतिहि अबिद्या-नास ॥ २६ ॥

एहि बिधि राउ मनहिं मन झाँखा । देखि कुभाँति कुमति मनु माँखा ।
भरत कि राउर पूत न होही । आनेहु मोल बेसाहि कि मोही ।
जो सुनि सर अस लाग तुम्हारे । काहे न बोलहु बचनु सँभारे ।
देहु उतर अरु कहहु कि नाहीं । सत्य-संध तुम्ह रघु-कुल माहीं ।
देन कहेहु अब जनि बरु देहू । तजहु सत्य जग अपजस लेहू ।
सत्य सराहि कहेहु बरु देना । जानेहु लेइहि माँगि चबेना ।

सिवि दधीचि बलि जो कछु भाषा। तनु-धनु तजेउ बचन-पन राखा।
अति-कटु-बचन कहति कैकेई। मानहुँ लोन जरे पर देई।
दो०—धरम-धुरं-धर धीर धरि, नयन उघारे राय।
सिर धुनि लीन्हि उसास असि, मारेसि मोहि कुठाय॥ २७॥
आगे दीखि जरति रिस भारी। मनहुँ रोष तरवारि उघारी।
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरी सान बनाई।
लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा।
बोलेउ राउ कठिन करि छाती। बानी सबिनय तासु सोहाती।
प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती। भीरु प्रतीति प्रीति करि हाँती।
मोरे भरत राम दुइ आँखी। सत्य कहउँ करि शंकर साखी।
अवसि दूत मैं पठउब प्राता। ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता।
सुदिन सोधि सब साजु सजाई। देउँ भरत कहँ राजु बजाई।
दो०—लोभु न रामहिँ राजु कर, बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचारि जिय, करत रहेउँ नृप-नीति॥ २८॥
राम-सपथ-सत कहउँ सुभाऊ। राम-मातु कछु कहेउ न काऊ।
मैं सब कीन्ह तोहि बिनु पूछे। तेहि तें परेउ मनोरथ छूछे।
रिस परिहरु अब मंगल साजू। कछु दिन गये भरत जुबराजू।
एकहि बात मोहि दुख लागा। बर दूसर असमंजस माँगा।
अजहूँ हृदय जरत तेहि आँचा। रिस-परिहास कि साँचेहुँ साँचा।
कहु तजि रोषु राम-अपराधू। सब कोउ कहइ रामु सुठि साधू।
तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। अब सुनि मोहि भयउ संदेहू।
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। सो किमि करिहि मातु-प्रतिकूला।
दो०—प्रिया हास-रिस परिहरहि, माँगु बिचारि बिबेकु।
जेहि देखउँ अब नयन भरि, भरत-राज-अभिषेकु॥ २९॥

जिमइ मीन वरु वारि-विहीना । मनि बिनु फनिक जिअइ दुख-दीना ।
कहउँ सुभाउ न छल मन माहीं । जीवन मोर राम - बिनु नाहीं ।
समुझि देखु जिय प्रिया प्रबीना । जीवन राम-दरस-आधीना ।
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई । मनहुँ अनल आहुति घृत परई ।
कहइ करहु किन कोटि उपाया । इहाँ न लागिहि राउरि माया ।
देहु कि लेहु अजस करि नाहीं । मोहि न बहुत प्रपंच सुहाहीं ।
राम साधु तुम्ह साधु सयाने । राम-मातु भलि सब पहिचाने ।
जस कौसिला मोर भल ताका । तस फल उन्हहिं देउँ करि साका ।

दो०—होत प्रात मुनि-बेष धरि, जौं न राम बन जाहिं ।
मोर मरनु राउर अजसु, नृप समुझिय मन माहिं ॥ ३० ॥

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी । मानहुँ रोष-तरंगिनि बाढ़ी ।
पाप-पहार प्रगट भइ सोई । भरी क्रोध-जल जाइ न जोई ।
दोउ बर कूल कठिन-हठ धारा । भवँर कूबरी-बचन-प्रचारा ।
ढाहत भूप-रूप-तरु-मूला । चली बिपति-बारिधि-अनुकूला ।
लखी नरेस बात सब साँची । तिय-मिसु मीचु सीस पर नाँची ।
गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी । जनि दिन-कर-कुल होसि कुठारी ।
माँगु माथ अबहीं देउँ तोही । राम-बिरह जनि मारसि मोही ।
राखु राम कहँ जेहि तेहि भाँती । नाहिँ त जरिहि जनम भरि छाती ।

दो०—देखी ब्याधि असाधि नृप, परेउ धरनि धुनि माथ ।
कहत परम आरत बचन, राम राम रघुनाथ ॥ ३१ ॥

ब्याकुल राव सिथिल सब गाता । करिनि कलप-तरु मनहुँ निपाता ।
कंठ सूख मुख आव न बानी । जनु पाठीन दीन बिनु पानी ।
पुनि कह कटु कठोर कैकेई । मनहुँ घाय महँ माहुरु देई ।
जौं अंतहु अस करतब रहेऊ । माँगु माँगु तुम्ह केहि बल कहेऊ ।

दुइ कि होइ एक समय भुआला । हँसब ठठाइ फुलाउब गाला ।
दानि कहाउब अरु कृपनाई । होइ कि खेम कुसल रौताई ।
छाड़हु बचन कि धीरज धरहू । जनि अबला जिमि करुना करहू ।
तनु तिय तनय धाम धनु धरनी । सत्य-संध कहँ तृन-सम बरनी ।

दो०—मरम-बचन सुनि राउ कह, कहु कछु दोष न तोर ।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि, काल कहावत मोर ॥ ३२ ॥

चहत न भरत भूपतहि भोरे । बिधि-बस कुमति बसी जिय तोरे ।
सो सब मोर पाप-परिनामू । भयउ कुठाहर जेहि बिधि बामू ।
सुबस बसिहि फिरि अवध-सुहाई । सब गुन-धाम राम - प्रभुताई ।
करिहहिँ भाइ सकल सेवकाई । होइहि तिहुँ पुर राम-बड़ाई ।
तोर कलंक मोर पछिताऊ । मुयहु न मिटिहि न जाइहि काऊ ।
अब तोहि नीक लाग करु सोई । लोचन-ओट बैठु मुँह गोई ।
जब लगि जिअउँ कहउँ कर जोरी । तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी ।
फिरि पछितैहसि अंत अभागी । मारसि गाइ नहारुहि लागी ।

दो०—परेउ राव कहि कोटि बिधि, काहे करसि निदानु ।
कपट-सयानि न कहति कछु, जागति मनहुँ मसानु ॥ ३३ ॥

राम राम रट बिकल भुआलू । जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू ।
हृदय मनाव भोरु जनि होई । रामहिं जाइ कहइ जनि कोई ।
उदय करहु जनि रवि रघु-कुल-गुर । अवध बिलोकि सूल होइहि उर ।
भूप-प्रीति कैकइ - कठिनाई । उभय अवधि बिधि रची बनाई ।
बिलपत नृपहि भयउ भिनुसारा । बीना—बेनु—संख — धुनि द्वारा ।
पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक । सुनत नृपहि जनु लागहिँ सायक ।
तेहि निसि नींद परी नहिं काहू । राम - दरस - लालसा - उछाहू ।

दो०—द्वार भीर सेवक सचिव, कहहिँ उदित रवि देखि।
जागे अजहूँ न अवध-पति, कारन कवन बिसेखि॥ ३४॥

पछिले पहर भूपु नित जागा। आजु हमहिँ बड़ अचरजु लागा।
जाहु सुमंत्र जगावहु जाई। कीजिय काज रजायसु पाई।
गये सुमंत्र तब राउर पाहीँ। देखि भयावन जात डेराहीँ।
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। मानहुँ बिपति-बिषाद-बसेरा।
पूछे कोउ न ऊतरु देई। गये जेहि भवन भूप कैकेई।
कहि जय-जीव बैठ सिर नाई। देखि भूप-गति गयउ सुखाई।
सोच बिकल बिबरन महि परेऊ। मानहुँ कमल-मूल परिहरेऊ।
सचिव सभीत सकइ नहिं पूछी। बोली असुभ-भरी सुभ-छूछी।

दो०—परी न राजहि नींद निसि, हेतु जान जगदीस।
राम राम रटि भोरु किय, कहइ न मरमु महीस॥ ३५॥

आनहु रामहिँ बेगि बोलाई। समाचार तब पूछेहु आई।
चलेउ सुमंत्र राय-रुख जानी। लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी।
सोच बिकल मग परइ न पाऊ। रामहिँ बोलि कहिहिँ का राऊ।
उर धरि धीरज गयउ दुआरे। पूछहिँ सकल देखि मन-मारे।
समाधान करि सो सबही का। गयउ जहाँ दिन-कर-कुल-टीका।
राम सुमंत्रहि आवत देखा। आदर कीन्ह पिता-सम लेखा।
निरखि बदन कहि भूप-रजाई। रघु-कुल-दीपहिँ चलेउ लेवाई।
राम कुभाँति सचिव-सँग जाहीँ। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीँ।

दो०—जाइ देखि रघु-बंस-मनि, नर-पति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि, मनहु बृद्ध गज-राजु॥ ३६॥

सूखहिँ अधर जरहिँ सब अंगू। मनहुँ दीन मनि-हीन भुअंगू।
सरुख समीप देखि कैकेई। मानहुँ मीच घरी गनि लेई।

करुनामय मृदु राम सुभाऊ । प्रथम दीख दुख सुना न काऊ ।
तदपि धीर धरि समउ बिचारी । पूछी मधुर बचन महतारी ।
मोहि कहु मात तात दुख-कारन । करिय जतन जेहि होइ निवारन ।
सुनहु राम सब कारन एहू । राजहिं तुम्ह पर बहुत सनेहू ।
देन कहेन्हि मोहि दुइ बर-दाना । माँगेउँ जो कछु मोहिं सुहाना ।
सो सुनि भयउ भूप-उर सोचू । छाड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू ।

दो०—सुत-सनेह इत बचन उत, संकट परेउ नरेसु ।
सकहु त आयसु धरहु सिर, मेटहु कठिन कलेसु ॥ ३७ ॥

मन मुसुकाइ भानु-कुल-भानू । राम सहज - आनंद - निधानू ।
बोले बचन बिगत सब दूषन । मृदु मंजुल जनु बाग-बिभूषन ।
सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी । जो पितु-मातु-बचन-अनुरागी ।
तनय मातु - पितु - तोषनिहारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा ।
भरत प्रान-प्रिय पावहिं राजू । बिधि सब बिधि मोहिं सनमुख आजू ।
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा । प्रथम गनिय मोहि मूढ़-समाजा ।
सेवहिं अरँडु कल्प-तरु त्यागी । परिहरि अमृत लेहिं बिषु माँगी ।
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं । देखु बिचारि मातु मन माहीं ।

दो०—मुनि-गन-मिलनु बिसेषि बन, सबहि भाँति हित मोर ।
तेहि महँ पितु-आयसु बहुरि, संमत जननी तोर ॥ ३८ ॥
गइ मुरुछा रामहिं सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह ।
सचिव राम-आगमन कहि, बिनय समय-सम कीन्ह ॥ ३९ ॥

अवनिप अकनि राम पगु धारे । धरि धीरजु तब नयन उघारे ।
सचिव सँभारि राउ बैठारे । चरन परत नृप रामु निहारे ।
लिये सनेह बिकल उर लाई । गइ मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई ।
रामहिं चितइ रहेउ नर-नाहू । चला बिलोचन बारि-प्रबाहू ।

सोक-बिबस कछु कहइ न पारा । हृदय लगावत बारहिं बारा ।
रघुपति पितहि प्रेम-बस जानी । पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी ।
देस - काल - अवसर - अनुसारी । बोले बचन बिनीत बिचारी ।
तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई । अनुचित छमब जानि लरिकाई ।
अति लघु बात लागि दुख पावा । काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा ।
देखि गोसाइहिं पूछिउँ माता । सुनि प्रसंगु भये सीतल गाता ।

दो०—मंगल-समय सनेह-बस, सोच परिहरिय तात ।
आयसु देइय हरषि हिय, कहि पुलके प्रभु-गात ॥ ४० ॥

धन्य जनम जगती-तल तासू । पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू ।
चारि पदारथ करतल ताके । प्रिय पितु मातु प्रान-सम जाके ।
आयसु पालि जनम-फल पाई । ऐहउँ बेगिहि होउ रजाई ।
बिदा मातु सन आवउँ माँगी । चलिहउँ बनहिं बहुरि पग लागी ।
अस कहि रामु गवन तब कीन्हा । भूप सोक-बस उतरु न दीन्हा ।
नगर ब्यापि गई बात सुतीछी । छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी ।
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी । जनु जल-चर-गन सूखत पानी ।
अति-बिषाद-बस लोग लोगाई । गये मातु पहिं राम गोसाईं ।

दो०—नव-गयंद रघुबीर-मन, राजु अलान-समान ।
छूट जानि बन-गवन सुनि, उर अनंद अधिकान ॥ ४१ ॥

रघु-कुल-तिलक जोरि दोउ हाथा । मुदित मातु-पद नायउ माथा ।
दीन्ह असीस लाइ उर लीन्हे । भूषन-बसन निछावरि कीन्हे ।
बार बार मुख चूँबति माता । नयन नेह-जलु पुलकित गाता ।
गोद राखि पुनि हृदय लगाये । स्रवत प्रेम-रस पयद सुहाये ।
धरम-धुरीन धरम-गति जानी । कहेउ मातु सन अति मृदु बानी ।
पिता दीन्ह मोहि कानन-राजू । जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ।

आयसु देहि मुदित-मन माता । जेहि मुद-मंगल कानन जाता ।
जनि सनेह-बस डरपसि भोरे । आनँद अंब अनुग्रह तोरे ।
दो०—बरस चारि दस बिपिन बसि, करि पितु-बचन-प्रमान ।
आय पाय पुनि देखिहउँ, मन जनि करसि मलान ॥ ४२ ॥
बचन बिनीत मधुर रघुवर के । सर-सम लगे मातु-उर करके ।
सहमि सूखि सुनि सीतल बानी । जिमि जवास परे पावस पानी ।
कहि न जाइ कछु हृदय-बिषादू । मनहुँ मृगी सुनि केहरि-नादू ।
नयन सजल तन थरथर काँपी । माँजहि खाइ मीन जनु माँपी ।
राखि न सकइ न कहि सक जाहू । दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू ।
राखउँ सुतहि करउँ अनुराधू । धरम जाइ अरु बंधु-बिरोधू ।
कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी । संकट-सोच-बिबस भइ रानी ।
बहुरि समुझि तिय-धरम सयानी । राम भरत दोउ सुत सम जानी ।
सरल-सुभाउ राम-महतारी । बोली बचन धीर धरि भारी ।
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका । पितु आयसु सब धरम क टीका ।
दो०—समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ ।
जाइ सासु-पद-कमल-जुग, बंदि बैठि सिरु नाइ ॥ ४३ ॥
दीन्हि असीस सासु मृदु बानी । अति सुकुमारि देखि अकुलानी ।
बैठि नमित मुख सोचति सीता । रूप-रासि पति-प्रेम-पुनीता ।
चलन चहत बन जीवन-नाथू । केहि सुकृती सन होइहि साथू ।
की तनु प्रान कि केवल प्राना । बिधि करतब कछु जाइ न जाना ।
चारु चरन-नख लेखति धरनी । नूपुर-मुखर मधुर कबि बरनी ।
मनहुँ प्रेम-बस बिनती करहीं । हमहि सीय-पद जनि परिहरहीं ।
मंजु बिलोचन मोचति बारी । बोली देखि राम-महतारी ।
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी । सासु-ससुर-परिजनहिं पियारी ।

दो०—पिता जनक भूपाल-मनि, ससुर भानु-कुल-भानु ।
पति रवि-कुल-कैरव-विपिन, -बिधु गुन-रूप-निधानु ॥ ४४ ॥

मैं पुनि पुत्र-बधू प्रिय पाई । रूप-रासि गुन सील सुहाई ।
नयन-पुतरि करि प्रीति बढ़ाई । राखउँ प्रान जानकिहिं लाई ।
कलप-बेलि जिमि बहु बिधि लाली । सींचि सनेह-सलिल प्रतिपाली ।
फूलत फलत भयउ बिधि बामा । जानि न जाइ काह परिनामा ।
पलँग-पीठ तजि गोद हिँडोरा । सिय न दीन्ह पग अवनि कठोरा ।
जिवन-मूरि जिमि जोगवत रहऊँ । दीप-बाति नहिं टारन कहऊँ ।
सोइ सिय चलन चहति बन साथा । आयसु काह होइ रघुनाथा ।
चंद-किरिन-रस-रसिक चकोरी । रवि-रुख-नयन सकइ किमि जोरी ।

दो०—करि केहरि निसिचर चरहिं, दुष्ट जंतु बन भूरि ।
बिष-बाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवनि-मूरि ॥ ४५ ॥

बन-हित कोल-किरात-किसोरी । रची बिरंचि बिषय-सुख-भोरी ।
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ । तिन्हहिं कलेसु न कानन काऊ ।
कै तापस-तिय कानन-जोगू । जिन्ह तप-हेतु तजा सब भोगू ।
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती । चित्र-लिखित कपि देखि डेराती ।
सुर-सर-सुभग बनज-बन-चारी । डाबर जोग कि हंस-कुमारी ।
अस बिचारि जस आयसु होई । मैं सिख देउँ जानकिहि सोई ।
जौं सिय भवन रहइ कह अंबा । मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा ।
सुनि रघुबीर मातु-प्रिय-बानी । सील सनेह सुधा जनु सानी ।

दो०—कहि प्रिय बचन बिबेक-मय, कीन्ह मातु परितोष ।
लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगटि बिपिन-गुन-दोष ॥ ४६ ॥

मातु-समीप कहत सकुचाहीं । बोले समय समुझि मन माहीं ।
राज-कुमारि सिखावन सुनहू । आन भाँति जिय जनि कछु गुनहू ।

आपन मोर नीक जौं चहहू। बचन हमार मानि गृह रहहू।
आयसु मोरि सासु-सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई।
एहि तें अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु-ससुर-पद-पूजा।
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम-बिकल मति भोरी।
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुझायेहु मृदु बानी।
कहउँ सुभाय सपथ सत मोही। सुमुखि मातु-हित राखउँ तोही।

दो०—गुरु-श्रुति-संमत-धरम-फल, पाइय बिनहि कलेसु।
हठ-बस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेसु॥ ४७॥

मैं पुनि करि प्रमान पितु-बानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी।
दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुंदरि सिखवन सुनहु हमारा।
जौं हठ करहु प्रेम-बस बामा। तौ तुम्ह दुख पाउब परिनामा।
कानन कठिन भयंकर भारी। घोर घाम हिम बारि बयारी।
कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पद-त्राना।
चरन-कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमि-धर भारे।
कंदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे।
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरज भागा।

दो०—भूमि-सयन बलकल-बसन, असन कंद-फल-मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, समय समय अनुकूल॥ ४८॥

नर-अहार रजनीचर चरहीं। कपट-बेष बिधि कोटिक करहीं।
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी।
ब्याल कराल बिहँग बन घोरा। निसि-चर-निकर नारि-नर-चोरा।
डरपहिं धीर गहन सुधि आये। मृग-लोचनि तुम्ह भीरु सुभाये।
हंस-गवनि तुम्ह नहिं बन-जोगू। सुनि अपजसु मोहिं देइहि लोगू।
मानस-सलिल-सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन-पयोधि मराली।

नव-रसाल-वन - विहरन - सीला। सोह कि कोकिल विपिन करीला।
रहहु भवन अस हृदय विचारी। चंद-वदनि दुख कानन भारी।
दो०—सहज सुहृद-गुरु-स्वामि-सिख, जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हित-हानि॥ ४९॥
सुनि मृदु-वचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के।
सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद-चंद निसि जैसे।
उतरु न आव बिकल वैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही।
बरबस रोकि बिलोचन-बारी। धरि धीरज उर अवनि-कुमारी।
लागि सासु-पग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी।
दीन्हि प्रान-पति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम-हित होई।
मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय-बियोग-सम दुख जग नाहीं।
दो०—प्रान-नाथ करुनायतन, सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघु-कुल-कुमुद-बिधु, सुर-पुर नरक-समान॥ ५०॥
मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय-परिवार सुहृद-समुदाई।
सासु ससुर गुरु सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई।
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहुँ ते ताते।
तन धन धाम धरनि पुर राजू। पति-बिहीन सब सोक-समाजू।
भोग रोग सम भूषन भारू। जम - जातना - सरिस संसारू।
प्रान-नाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं।
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तइसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी।
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद-बिमल-बिधु-बदन निहारे।
दो०—खग मृग परिजन नगर बन, बलकल बिमल दुकूल।
नाथ-साथ सुर - सदन - सम, परन-साल सुख-मूल॥ ५१॥
बन-देवी बन-देव उदारा। करिहहिं सासु-ससुर-सम-सारा।

कुस - किसलय -साथरी सुहाई। प्रभु-सँग मंजु मनोज-तुराई।
कंद मूल फल अमिय अहारू। अवध-सौध-सत-सरिस पहारू।
छिनु छिनु प्रभु-पद-कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी।
बन-दुख नाथ कहे बहु तेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे।
प्रभु - बियोग - लव-लेस-समाना। सब मिलि होहिं न कृपा-निधाना।
अस जिय जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ संग मोहि छाड़िय जनि।
बिनती बहुत करउँ का स्वामी। करुना-मय उर - अंतर - जामी।

दो०—राखिय अवध जो अवधि लगि, रहत जानिअहि प्रान।
दीन-बंधु सुंदर सुखद, सील - सनेह - निधान ॥ ५२ ॥

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन-सरोज निहारी।
सबहि भाँति पिय सेवा करिहउँ। मारग-जनित सकल स्रम हरिहउँ।
पाय पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहउँ बायु मुदित मन माहीं।
स्रम-कन-सहित स्याम तनु देखे। कहँ दुख-समउ प्रान - पति पेखे।
सम महि तृन-तरु-पल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी।
बार बार मृदु-मूरति जोही। लागिहि ताति बयारि न मोही।
को प्रभु सँग मोहि चितवनि हारा। सिंह-बधुहि जिमि ससक सियारा।
मैं सुकुमारि नाथ बन-जोगू। तुम्हहिं उचित तप मो कहँ भोगू।

दो०—ऐसेउ बचन कठोर सुनि, जौं न हृदय बिलगान।
तौ प्रभु-बिषम-बियोग-दुख, सहिहहिं पाँवर प्रान ॥ ५३ ॥

अस कहि सीय बिकल भइ भारी। बचन-बियोग न सकी सँभारी।
देखि दसा रघुपति जिय जाना। हठि राखे नहिं राखिहि प्राना।
कहेउ कृपाल भानु-कुल-नाथा। परिहरि सोच चलहु बन साथा।
नहिं बिषाद कर अवसर आजू। बेगि करहु बन-गवन-समाजू।
कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई। लगे मातु-पद आसिष पाई।

बेगि प्रजा-दुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई।
फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिहउँ नयन मनोहर जोरी।
सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जिअत बदन-बिधु जोइहि।

दो०—बहुरि बच्छ कहि लाल कहि, रघुपति रघुबर तात।
कबहिं बोलाइ लगाइ हिय, हरषि निरषिहउँ गात॥ ५४॥

लखि सनेह कातरि महतारी। बचन न आव बिकल भइ भारी।
राम प्रबोध कीन्ह बिधि नाना। समउ सनेह न जाइ बखाना।
तब जानकी सासु-पग लागी। सुनिय माय मैं परम अभागी।
सेवा-समय दैव बन दीन्हा। मोर मनोरथ सुफल न कीन्हा।
तजब छोभ जनि छाड़िय छोहू। करम कठिन कछु दोष न मोहू।
सुनि सिय-बचन सासु अकुलानी। दसा कवनि बिधि कहउँ बखानी।
बारहिं बार लाइ उर लीन्ही। धरि धीरज सिख आसिष दीन्ही।
अचल होउ अहिवात तुम्हारा। जब लगि गंग-जमुन-जल-धारा।

दो०—सीतहि सासु असीस सिख, दीन्ह अनेक प्रकार।
चली नाइ पद-पदुम सिरु, अति हित बारहिं बार॥ ५५॥

समाचार जब लछिमन पाये। ब्याकुल बिलष-बदन उठि धाये।
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा।
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीन दीन जनु जल ते काढ़े।
सोच हृदय बिधि का होनिहारा। सब सुख सुकृत सिरान हमारा।
मो कहँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन कि लेइहहिं साथा।
राम बिलोकि बंधु कर-जोरे। देह गेह सब सन तृन तोरे।
बोले बचन राम नयनागर। सील-सनेह-सरल-सुख-सागर।
तात प्रेम-बस जनि कदराहू। समुझि हृदय परिनाम उछाहू।

दो०—मातु-पिता-गुरु-स्वामि-सिख, सिर धरि करहिं सुभाय।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर, न तरु जनम जग जाय॥ ५६॥
अस जिय जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु-पितु-पद-सेवकाई।
भवन भरत रिपुसूदनु नाहीं। राउ बृद्ध मम दुख मन माहीं।
मैं बन जाउँ तुम्हहिं लेइ साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा।
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहँ परइ दुसह-दुख-भारू।
रहहु करहु सब कर परितोषू। न तरु तात होइहि बड़ दोषू।
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक-अधिकारी।
रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लषन भये ब्याकुल भारी।
सिअरे बचन सूखि गये कैसे। परसत तुहिन तामरस जैसे।
दो०—उतर न आवत प्रेम-बस, गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह, तजहु त कहा बसाइ॥ ५७॥
दीन्हि मोहि सिख नीक गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराई।
नर-बर धीर धरम-धुर-धारी। निगम-नीति कहँ ते अधिकारी।
मैं सिसु प्रभु-सनेह-प्रतिपाला। मंदर मेरु कि लेहिं मराला।
गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू।
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई।
मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीन-बंधु उर-अंतर-जामी।
धरम नीति उपदेसिय ताही। कीरति-भूति-सुगति-प्रिय जाही।
मन-क्रम-बचन चरन-रत होई। कृपा-सिंधु परिहरिअ कि सोई।
दो०—करुना-सिंधु सुबंधु के, सुनि मृदु बचन बिनीत।
समुझाये उर लाइ प्रभु, जानि सनेह सभीत॥ ५८॥
माँगहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई।
मुदित भये सुनि रघुबर-बानी। भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी।

हरषित हृदय मातु पहिँ आये । मनहुँ अंध फिरि लोचन पाये ।
जाइ जननि-पग नायउ माथा । मनु रघुनंदन – जानकि–साथा ।
पूछे मातु मलिन मन देखी । लषन कहा सब कथा बिसेखी ।
गई सहमि सुनि बचन कठोरा । मृगी देखि जनु दव चहुँ ओरा ।
लषन लखेउ भा अनरथ आजू । एहि सनेह-बस करब अकाजू ।
माँगत बिदा सभय सकुचाहीं । जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं ।

दो०—समुझि सुमित्रा राम-सिय, रूप–सुशील–सुभाउ ।
नृप-सनेह लखि धुनेउ सिर, पापिनि दीन्ह कुदाउ ॥ ५९ ॥

धीरज धरेउ कुअवसर जानी । सहज सुहृद बोली मृदु-बानी ।
तात तुम्हारि मातु वैदेही । पिता राम सब भाँति सनेही ।
अवध तहाँ जहँ राम - निवासू । तहइँ दिवसु जहँ भानु-प्रकासू ।
जौं पै सीय रामु बन जाहीं । अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं ।
गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं । सेइअहि सकल प्रान की नाईं ।
राम प्रान-प्रिय जीवन जी के । स्वारथ-रहित सखा सबही के ।
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते । सब मानिअहि राम के नाते ।
अस जिय जानि संग बन जाहू । लेहु तात जग जीवन-लाहू ।

दो०—भूरि भाग-भाजन भयहु, मोहि समेत बलि जाउँ ।
जौं तुम्हरे मन छाड़ि छल, कीन्ह राम-पद ठाउँ ॥ ६० ॥

पुत्रवती जुवती जग सोई । रघु–पति–भगत जासु सुत होई ।
न तरु बाँझ भलि बादि बिआनी । राम-बिमुख सुत तें हित-हानी ।
तुम्हरेहि भाग राम बन जाहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ।
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू । राम–सीय–पद सहज सनेहू ।
राग रोष इरिषा मदु मोहू । जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू ।
सकल प्रकार बिकार बिहाई । मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ।

तुम्ह कहँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु-मातु राम-सिय जासू।
जेहि न राम बन लहइँ कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू।

सो०—मातु चरन सिर नाइ, चले तुरत संकित हृदय।
बागुर बिषम तोराइ, मनहुँ भाग मृग भाग-बस॥ ६१॥

गये लषन जहँ जानकि-नाथू। भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू।
बंदि राम-सिय-चरन सुहाये। चले संग नृप-मंदिर आये।
सिय-समेत दोउ तनय निहारी। व्याकुल भयउ भूमि-पति भारी।
सकइ न बोलि बिकल नर-नाहू। सोक-जनित उर दारुन दाहू।
नाइ सीस पद अति अनुरागा। उठि रघुबीर बिदा तब माँगा।
पितु असीस आयसु मोहि दीजै। हरष समय बिसमय कत कीजै।
तात किये प्रिय-प्रेम-प्रमादू। जस जग जाइ होइ अपवादू।
सुनि सनेह-बस उठि नर-नाहा। बैठारे रघुपति गहि बाहा।
राय राम-राखन हित लागी। बहुत उपाय किये छल त्यागी।
लखा राम-रुख रहत न जाने। धरम-धुरंधर धीर सयाने।
तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही। अतिहित बहुत भाँति सिख दीन्ही।

दो०—सिख सीतलि हित मधुर मृदु, सुनि सीतहि न सोहानि।
सरद-चंद-चंदनि लगत, जनु चकई अकुलानि॥ ६२॥

सीय सकुच-बस उतर न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई।
मुनि-पट-भूषन-भाजन आनी। आगे धरि बोली मृदु बानी।
नृपहिं प्रान-प्रिय तुम्ह रघुबीरा। सील सनेह न छाड़िहि भीरा।
सुकृत सुजस परलोक नसाऊ। तुम्हहिँ जान बन कहहि न काऊ।
अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननि-सिख सुनि सुख पावा।
भूपहि बचन बान-सम लागे। करहिँ न प्रान पयान अभागे।

लोग बिकल मुरछित नर-नाहू। काह करिय कछु सूझ न काहू।
राम तुरत मुनि-बेष बनाई। चले जनक-जननिहिं सिरु नाई।

दो०—सजि बन-साज-समाज सब, बनिता-बंधु-समेत।
बंदि बिप्र-गुर-चरन प्रभु, चले करि सबहि अचेत ॥ ६३ ॥
राम लषन सिय जान चढ़ि, संभु-चरन सिरु नाइ।
सचिव चलायउ तुरत रथ, इत उत खोज दुराइ ॥ ६४ ॥

सीता-सचिव-सहित दोउ भाई। सृंगबेरपुर पहुँचे जाई।
उतरे राम देव-सरि देखी। कीन्ह दंडवत हरख बिसेखी।
लषन सचिव सिय किये प्रनामा। सबहिं सहित सुख पायउ रामा।
गंग सकल-मुद-मंगल-मूला। सब-सुख-करनि हरनि सब सूला।
कहि कहि कोटिक कथा-प्रसंगा। राम बिलोकहिं गंग-तरंगा।
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। बिबुध-नदी - महिमा अधिकाई।
मज्जनु कीन्ह पंथ-स्रम गयऊ। सुचि जल पियत मुदित मन भयऊ।
सुमिरत जाहि मिटइ स्रम-भारू। तेहि स्रम यह लौकिक ब्यवहारू।

दो०—सुद्ध सच्चिदानंद-मय, कंद भानु-कुल-केतु।
चरित करत नर-अनुहरत, संसृति-सागर-सेतु ॥ ६५ ॥

यह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित लिए प्रिय बंधु बोलाई।
लिय फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हिय-हरष अपारा।
करि दंडवत भेंट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागे।
सहज - सनेह - बिबस रघुराई। पूछी कुसल निकट बैठाई।
नाथ कुसल पद-पंकज देखे। भयउँ भाग-भाजन जन लेखे।
देव धरनि-धन-धाम तुम्हारा। मैं जन नीच सहित परिवारा।
कृपा करिय पुर धारिय पाऊ। थापिय जन सब लोग सिहाऊ।
कहेहु सत्य सब सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयसु आना।

दो०—बरष चारि-दस बास बन, मुनि-व्रत-बेष-अहारु।
ग्राम-बास नहिँ उचित सुनि, गुहहि भयउ दुख-भारु॥ ९६॥

राम-लषन-सिय-रूप निहारी। कहहिँ सप्रेम ग्राम-नर-नारी।
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठयं बन बालक ऐसे।
एक कहहिँ भल भूपति कीन्हा। लोचन-लाहु हमहिँ बिधि दीन्हा।
तब निषाद-पति उर अनुमाना। तरु सिंसुपा मनोहर जाना।
लेइ रघुनाथहि ठाउँ देखावा। कहेउ राम सब भाँति सुहावा।
पुरजन करि जोहारु घर आये। रघुबर संध्या-करन सिधाये।
गुह सवाँरि साथरी डसाई। कुस-किसलय-मय मृदुल सुहाई।
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि आनी।

दो०—सिय-सुमंत्र-भ्राता-सहित, कंद मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघु-बंस-मनि, पाय पलोटत भाइ॥ ९७॥

उठे लषन प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहि सोवन मृदु बानी।
कछुक दूरि सजि बान-सरासन। जागन लगे बैठि बीरासन।
गुह बोलाइ पाहरू प्रतीती। ठावँ ठावँ राखे अति प्रीती।
आपु लषन पहिँ बैठेउ जाई। कटि भाथा सर चाप चढ़ाई।
कहत राम-गुन भा भिनुसारा। जागे जग - मंगल - दातारा।
सकल सौच करि राम नहावा। सुचि सुजान बट-छीर मँगावा।
अनुज-सहित सिर जटा बनाये। देखि सुमंत्र नयन जल छाये।
हृदय दाह अति बदन मलीना। कह कर जोरि बचन अति दीना।
नाथ कहेउ अस कोसल-नाथा। लेइ रथ जाहु राम के साथा।
बन देखाइ सुर-सरि अन्हवाई। आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई।
लषन राम सिय आनेहु फेरी। संसय सकल सँकोच निबेरी।

दो०—नृप अस कहेउ गोसाइँ जस, कहिय करउँ बलि सोइ ।
करि बिनती पायन्ह परेउ, दीन्ह बाल जिमि रोइ ॥ ६८ ॥

तात कृपा करि कीजिय सोई । जा तें अवध अनाथ न होई ।
मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा । तात धरम-मत तुम्ह सब सोधा ।
सिबि दधीच हरिचंद नरेसा । सहे धरम-हित कोटि कलेसा ।
रंतिदेव बलि भूप सुजाना । धरम धरेउ सहि संकट नाना ।
धरम न दूसर सत्य-समाना । आगम निगम पुरान बखाना ।
मैं सोइ धरम सुलभ करि पावा । तजे तिहुँ-पुर अपजसु छावा ।
संभावित कहुँ अपजस-लाहू । मरन-कोटि-सम दारुन दाहू ।
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ । दिये उतरु फिरि पातक लहऊँ ।

दो०—पितु-पद गहि कहि कोटि नति, बिनय करब कर जोरि ।
चिंता कवनिहुँ बात कै, तात करिय जनि मोरि ॥६९॥

तुम्ह पुनि पितु-सम अति-हित मोरे । बिनती करउँ तात कर जोरे ।
सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारे । दुख न पाव पितु सोच हमारे ।
सुनि सुमंत्र प्रिय सीतल बानी । भयउ बिकल जनु फनि मनि-हानी ।
नयन सूझ नहिं सुनइ न काना । कहि न सकइ कछु अति अकुलाना ।
राम प्रबोध कीन्ह बहु भाँती । तदपि होति नहिं सीतल छाती ।
जतन अनेक साथ-हित कीन्हे । उचित उतर रघुनंदन दीन्हे ।
मेटि जाइ नहिं राम-रजाई । कठिन करम-गति कछु न बसाई ।
राम-लखन-सिय-पद सिरु नाई । फिरेउ बनिक जिमि मूरि गवाँई ।

दो०—रथ हाँकेउ हय राम-तन, हेरि हेरि हिहिनाहिं ।
देखि निषाद बिषाद-बस, धुनहिं सीस पछिताहिं ॥ ७० ॥

जासु बियोग बिकल पसु ऐसे । प्रजा मातु पितु जीहहिं कैसे ।
बरबस राम सुमंत्र पठाये । सुर-सरि-तीर आप तब आये ।

माँगी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना।
चरन-कमल-रज कहँ सब कहई। मानुष-करनि मूरि कछु अहई।
छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ-कठिनाई।
तरनिउँ मुनि-घरनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई।
एहि प्रतिपालउँ सब परिवारू। नहिं जानउँ कछु अउर कबारू।
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद-पदुम-पखारन कहहू।

छन्द—पद-कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहउँ।
मोहि राम राउरि-आन दसरथ-सपथ सब साँची कहउँ।
बरु तीर मारहु लषन पै जब लगि न पाय पखारिहउँ।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पारु उतारिहउँ॥

सो०—सुनि केवट के बैन, प्रेम - लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना ऐन, चितइ जानकी-लषन-तन॥ ७१॥

कृपा-सिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहि तव नाव न जाई।
बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलंब उतारहि पारू।
जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भव-सिंधु अपारा।
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहि जग किय तिहुँ पगहुँ ते थोरा।
पद-नख निरखि देव-सरि हरषी। सुनि प्रभु-बचन मोह-मति करषी।
केवट राम-रजायसु पावा। पानि कठौवता भरि लेइ आवा।
अति-आनंद उमगि अनुरागा। चरन-सरोज पखारन लागा।
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्य-पुंज कोउ नाहीं।

दो०—पद पखारि जल पान करि, आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहिं पुनि, मुदित गयउ लेइ पार॥ ७२॥

उतरि ठाढ़ भये सुर-सरि-रेता। सीय-राम-गुह-लषन-समेता।
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा।

पिय-हिय की सिय जाननिहारी। मनि-मुँदरी मन मुदित उतारी।
कहेउ कृपाल लेहु उतराई। केवट चरन गहेउ अकुलाई।
नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष-दुख-दारिद-दावा।
बहुत काल मैं कीन्ह मजूरी। आजु दीन्ह विधि बनि भलि भूरी।
अब कछु नाथ न चाहिय मोरे। दीन-दयाल अनुग्रह तोरे।
फिरती बार मोहि जोइ देवा। सो प्रसाद मैं सिर धरि लेवा।

दो०—बहुत कीन्ह प्रभु लषन सिय, नहिं कछु केवट लेइ।
विदा कीन्ह करुनायतन, भगति विमल बर देइ॥ ७३॥
तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु, नाइ सुरसरिहिं माथ।
सखा-अनुज-सिय-सहित बन, गवन कीन्ह रघुनाथ॥ ७४॥

तेहि दिन भयउ बिटप-तर बासू। लषन सखा सब कीन्ह सुपासू।
प्रात प्रात-कृत करि रघुराई। तीरथ-राजु देखि प्रभु जाई।
कहि सिय लषनहिं सखहिं सुनाई। श्री-मुख तीरथ-राज-बड़ाई।
करि प्रनाम देखत बन बागा। कहत महातम अति अनुरागा।
एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल-सुमंगल-देनी।
मुदित नहाइ कीन्हि सिव-सेवा। पूजि जथा-विधि तीरथ-देवा।
तब प्रभु भरद्वाज पहिँ आये। करत दंडवत मुनि उर लाये।
मुनि-मन-मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानंद-रासि जनु पाई।

दो०—दीन्ह असीस मुनीस उर, अति अनंद अस जानि।
लोचन-गोचर सुकृत-फल, मनहुँ किये विधि आनि॥ ७५॥

कुसल-प्रस्न करि आसन दीन्हे। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे।
कंद मूल फल अंकुर नीके। दिये आनि मुनि मनहुँ अमी के।
सीय-लषन-जन-सहित सुहाये। अति रुचि राम मूल-फल खाये।
भये विगत-स्रम राम सुखारे। भरद्वाज मृदु बचन उचारे।

आजु सुफल तप तीरथ त्यागू। आजु सुफल जप जोग बिरागू।
सुफल सकल-सुभ-साधन-साजू। राम तुम्हहिँ अवलोकत आजू।
लाभ-अवधि सुख-अवधि न दूजी। तुम्हरे दरस आस सब पूजी।
अब करि कृपा देहु बर एहू। निज-पद-सरसिज - सहज-सनेहू।

दो०—करम बचन मन छाँड़ि छल, जब लगि जन न तुम्हार।
तब लगि सुख सपनेहुँ नहिँ, किये कोटि उपचार॥ ७६॥

सुनि मुनि बचन राम सकुचाने। भाव भगति आनंद अघाने।
तब रघुबर मुनि सुजस सुहावा। कोटि भाँति कहि सबहिँ सुनावा।
सो बड़ सो सब-गुन-गन-गेहू। जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू।
मुनि रघुबीर परसपर नवहीँ। बचन-अगोचर सुख अनुभवहीँ।
राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीँ। नाथ कहिय हम केहि मग जाहीँ।
मुनि मन बिहँसि राम सन कहहीँ। सुगम सकल मग तुम्ह कहँ अहहीँ।
साथ लागि मुनि सिष्य बोलाये। सुनि मन मुदित पचासक आये।
सबन्हि राम पर प्रेम अपारा। सकल कहहिँ मगु दीख हमारा।
मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे। जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हे।
करि प्रनाम रिषि आयसु पाई। प्रमुदित हृदय चले रघुराई।
ग्राम निकट निकसहिँ जब जाई। देखहिँ दरस नारि नर धाई।
होहिँ सनाथ जनम-फल पाई। फिरहिँ दुखित मन संग पठाई।

दो०—बिदा किये बटु बिनय करि, फिरे पाइ मन-काम।
उतरि नहाये जमुन-जल, जो सरीर-सम स्याम॥ ७७॥
तब रघुबीर अनेक बिधि, सखहि सिखावन दीन्ह।
राम-रजायसु सीस धरि, भवन गवन तेइ कीन्ह॥ ७८॥

पुनि सिय राम-लषन कर जोरी। जमुनहिँ कीन्ह प्रनाम बहोरी।
चले ससीय मुदित दोउ भाई। रबि-तनुजा कै करत बड़ाई।

पथिक अनेक मिलहिं मग जाता। कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता।
राज-लषन सब अंग तुम्हारे। देखि सोच अति हृदय हमारे।
मारग चलहु पयोदेहिं पाये। ज्योतिष झूठ हमारेहि भाये।
अगम पंथ गिरि कानन भारी। तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी।
करि केहरि बन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं जो आयसु होई।
जाव जहाँ लगि तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि तुम्हहिं सिर नाई।

दो०—एहि बिधि पूछहिं प्रेम-बस, पुलक-गात जल-नैन।
कृपा-सिंधु फेरहिं तिनहिं, कहि बिनीत मृदु बैन॥ ७९॥
एहि बिधि रघु-कुल-कमल-रवि, मग लोगन्ह सुख देत।
जाहिं चले देखत बिपिन, सिय-सौमित्रि-समेत॥ ८०॥

आगे राम लषन बने पाछे। तापस-बेष बिराजत काछे।
उभय बीच सिय सोहति कैसी। ब्रह्म-जीव-बिच माया जैसी।
बहुरि कहउँ छबि जसि मन बसई। जनु मधु-मदन-मध्य रति लसई।
उपमा बहुरि कहउँ जिय जोही। जनु बुध-बिधु-बिच रोहिनि सोही।
प्रभु-पद-रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता।
सीय-राम-पद-अंक बराये। लषन चलहिं मग दाहिन बायें।
राम-लषन-सिय-प्रीति सुहाई। बचन-अगोचर किमि कहि जाई।
खग मृग मगन देखि छबि होहीं। लियें चोरि चित राम बटोही।

दो०—जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय, सिय-समेत दोउ भाइ।
भव-मग-अगम अनंद तेइ, बिनु स्रम रहे सिराइ॥ ८१॥

अजहुँ जासु उर सपनेहु काऊ। बसहिं लषन-सिय-राम बटाऊ।
राम-धाम-पथ पाइहि सोई। जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई।
तब रघुबीर स्रमित सिय जानी। देखि निकट बट सीतल पानी।
तहँ बसि कंद मूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई।

देखत बन सर सैल सुहाये। वालमीकि आस्रम प्रभु आये।
राम दीख मुनि-बास सुहावन। सुंदर गिरि कानन जल पावन।
सरनि सरोज बिटप बन फूले। गुंजत मंजु मधुप रस भूले।
खग मृग विपुल कोलाहल करहीं। बिरहित-बैर मुदित मन चरहीं।

दो०—सुचि सुंदर आस्रम निरखि, हरषे राजिव-नैन।
सुनि रघु-बर-आगमन मुनि, आगे आयउ लैन॥ ८२॥

मुनि कहँ राम दंडवत कीन्हा। आसिरबाद बिप्र-बर दीन्हा।
देखि राम-छबि नयन जुड़ाने। करि सनमान आस्रमहिं आने।
मुनि-बर अतिथि प्रान-प्रिय पाये। तिन्ह कहँ आसन दिये सुहाये।
कंद मूल फल मधुर मँगाये। सिय सौमित्रि राम फल खाये।
बालमीकि मन आनँद भारी। मंगल-मूरति नयन निहारी।
तब कर-कमल जोरि रघुराई। बोले बचन स्रवन-सुख-दाई।
तुम्ह त्रि-काल-दरसी मुनि-नाथा। बिस्व-बदर जिमि तुम्हरे हाथा।
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी। जेहि जेहि भाँति दीन्ह बन रानी।

दो०—तात-बचन पुनि मातु-हित, भाइ भरत अस राउ।
मो कहँ दरस तुम्हार प्रभु, सब मम पुन्य-प्रभाउ॥ ८३॥

देखि पाय मुनि-राय तुम्हारे। भये सुकृत सब सुफल हमारे।
अब जहँ राउर-आयसु होई। मुनि उदबेग न पावइ कोई।
मुनि तापस जिन्ह तें दुख लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं।
अस जिय जानि कहिय सोइ ठाऊँ। सिय-सौमित्रि-सहित जहँ जाऊँ।
तहँ रचि रुचिर परन-तृन-साला। बास करउँ कछु काल कृपाला।
सहज सरल सुनि रघुबर-बानी। साधु साधु बोले मुनि ज्ञानी।
कस न कहहु अस रघु-कुल-केतू। तुम्ह पालक संतत स्रुति-सेतू।

दो०—पूछेहु मोहिं कि रहउँ कहँ, मैं पूछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुम्हहि देखावहुँ ठाउँ॥ ८४॥

सुनि मुनि-बचन प्रेम-रस-साने। सकुचि राम मन महँ मुसुकाने।
कह मुनि सुनहु भानु-कुल-नायक। आस्रमु कहउँ समय-सुख-दायक।
चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू।
सैल सुहावन कानन चारू। करि-केहरि-मृग-बिहँग बिहारू।
नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रि-प्रिया निज-तप-बल आनी।
सुर-सरि-धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब-पातक-पोतक-डाकिनि।
अत्रि आदि मुनि-बर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं।
चलहु सफल स्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरि-बरहू।

दो०—चित्रकूट-महिमा अमित, कही महा-मुनि गाइ।
आइ नहाये सरित-बर, सिय-समेत दोउ भाइ॥ ८५॥

रघुबर कहेउ लषन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर-ठाटू।
लषन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा।
नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना।
चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी।
अस कहि लषन ठाँव देखरावा। थल बिलोकि रघुबर सुख पावा।
रमेउ राम-मन देवन्ह जाना। चले सहित सुर-पति परधाना।
कोल-किरात-बेष सब आये। रचे परन-तृन-सदन सुहाये।
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला।

दो०—राम-लषन-सीता-सहित, सोहत परन-निकेत।
जिमि बासव बस अमर-पुर, सची-जयंत-समेत॥ ८६॥

जोगवहिं प्रभु सिय-लषनहिं कैसे। पलक बिलोचन-गोलक जैसे।
सेवहिं लषन सीय-रघुबीरहिं। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहिं॥

एहि विधि प्रभु बन बसहिँ सुखारी । खग - मृग-सुर-तापस-हित-कारी ।
कहेउँ राम-बन-गवन सुहावा । सुनहु सुमंत्र अवध जिमि आवा ।
फिरेउ निषाद प्रभुहि पहुँचाई । सचिव-सहित रथ देखेसि आई ।
मंत्री बिकल बिलोकि निषादू । कहि न जाय जस भयउ बिषादू ।
राम राम सिय लषन पुकारी । परेउ धरनि-तल व्याकुल भारी ।
देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं । जनु बिनु पंख बिहँग अकुलाहीं ।

दो०—नहिँ तृन चरहिँ न पियहिँ जल, मोचहिँ लोचन-बारि ।
व्याकुल भयउ निषाद सब, रघु-बर-बाजि निहारि ॥ ८७ ॥

धरि धीरज तब कहइ निषादू । अब सुमंत्र परिहरहु बिषादू ।
तुम्ह पंडित परमारथ - ज्ञाता । धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता ।
बिबिध कथा कहि कहि मृदु बानी । रथ बैठारेउ बरबस आनी ।
सोक-सिथिल रथ सकइ न हाँकी । रघुबर-बिरह-पीर उर बाँकी ।
चरफराहि मग चलहिं न घोरे । बन-मृग मनहुँ आनि रथ जोरे ।
अढुकि परहिं फिर हेरहिं पीछे । राम-बियोग बिकल दुख तीछे ।
जो कह रामु लषन बैदेही । हिकरि हिँकरि हित हेरहिं तेही ।
बाजि बिरह-गति कहि किमि जाती । बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती ।

दो०—भयउ निषाद बिषाद-बस, देखत सचिव-तुरंग ।
बोलि सुसेवक चारि तब, दिये सारथी-संग ॥ ८८ ॥

बहु बिधि करत पंथ पछितावा । तमसा-तीर तुरत रथ आवा ।
बिदा किये करि बिनय निषादा । फिरे पाँय परि बिकल बिषादा ।
पैठत नगर सचिव सकुचाई । जनु मारेसि गुरु - बाम्हन - गाई ।
बैठि बिटप-तर दिवस गवाँवा । साँझ समय तब अवसर पावा ।
अवध-प्रवेस कीन्ह अँधियारे । पैठ भवन रथ राखि दुआरे ।
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाये । भूप-द्वार रथ देखन आये ।

रथ पहिचानि विकल लखि घोरे । गरहिं गात जिमि आतप ओरे ।
नगर - नारि - नर व्याकुल कैसे । निघटत नीर मीन-गन जैसे ।
दो०—सचिव-आगमन सुनत सब, विकल भयउ रनिवासु ।
भवनु भयंकर लाग तेहि, मानहुँ प्रेत-निवासु ॥ ८६ ॥
अति आरति सब पूछहिं रानी । उतरु न आव विकल भइ बानी ।
सुनइ न स्रवन नयन नहिं सूझा । कहहु कहाँ नृप जेहि तेहि बूझा ।
दासिन्ह दीख सचिव-बिकलाई । कौसल्या-गृह गईं लेवाई ।
जाइ सुमंत्र दीख कस राजा । अमिय-रहित जनु चंद बिराजा ।
आसन - सयन - बिभूषन - हीना । परेउ भूमि-तल निपट मलीना ।
लेइ उसास सोच एहि भाँती । सुर-पुर तें जनु खँसेउ जजाती ।
लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती । जनु जरि पंख परेउ संपाती ।
राम राम कह राम सनेही । पुनि कह राम लषन बैदेही ।
दो०—देखि सचिव जय-जीव कहि, कीन्हेउ दंड-प्रनाम ।
सुनत उठे व्याकुल नृपति, कहु सुमंत्र कहँ राम ॥ ६० ॥
भूप सुमंत्र लीन्ह उर लाई । बूड़त कछु अधार जनु पाई ।
सहित सनेह निकट बैठारी । पूछत राउ नयन भरि बारी ।
राम-कुसल कहु सखा सनेही । कहँ रघुनाथ लषन बैदेही ।
आने फेर कि बनहिं सिधाये । सुनत सचिव-लोचन जल छाये ।
सोक-बिकल पुनि पूछ नरेसू । कहु सिय - राम - लषन - संदेसू ।
राम - रूप - गुन - सील - सुभाऊ । सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ ।
राज सुनाइ दीन्ह बन-बासू । सुनि मन भयउ न हरष हरासू ।
सो सुत बिछुरत गये न प्राना । को पापी बड़ मोहि समाना ।
दो०—सखा राम-सिय-लषन जहँ, तहाँ मोहि पहुँचाउ ।
नाहिं त चाहत चलन अब, प्रान कहउँ सति-भाउ ॥ ६१ ॥

पुनि पुनि पूछत मंत्रिहि राऊ। प्रियतम-सुअन-सँदेस सुनाऊ।
करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ। राम-लषन-सिय नयन देखाऊ।
सचिव धीर धरि कह मृदु बानी। महाराज तुम्ह पंडित ज्ञानी।
बीर सुधीर धुरंधर देवा। साधु-समाज सदा तुम्ह सेवा।
जनम मरन सब दुख सुख भोगा। हानि लाभ प्रिय-मिलन-बियोगा।
काल-करम-बस होहिँ गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं।
सुख हरषहिँ जड़ दुख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिँ मन माहीं।
धीरज धरहु बिबेक बिचारी। छाड़िय सोच सकल-हितकारी।

दो०—प्रथम बासु तमसा भयउ, दूसर सुर-सरि-तीर।
न्हाइ रहे जल पान करि, सिय-समेत दोउ बीर ॥९२॥

कीन्ह निषाद बहुत सेवकाई। सो जामिनि सिँगरौर गवाँई।
होत प्रात बट-छीरु मँगावा। जटा-मुकुट निज सीस बनावा।
बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा। बोले मधुर बचन धरि धीरा।
तात प्रनाम तात सन कहेहू। बार बार पद-पंकज गहेहू।
करबि पाय परि बिनय बहोरी। तात करिय जनि चिंता मोरी।
बन-मग मंगल कुशल हमारे। कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारे।

छं०—तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुख पाइहउँ।
प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहउँ॥
जननी सकल परितोषि परि परि पाय करि बिनती घनी।
तुलसी करेहु सोइ जतन जेहि कुसली रहहिं कोसल-धनी॥

सो०—गुरु सन कहब सँदेस, बार बार पद-पदुम गहि।
करब सोइ उपदेस, जेहि न सोच मोहि अवध-पति ॥९३॥

पुर-जन परि-जन सकल निहोरी। तात सुनायेहु बिनती मोरी।
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जा तें रह नर-नाह सुखारी।

कहब सँदेसु भरत के आयें। नीति न तजिय राज-पद पाये।
पालेहु प्रजहि करम-मन-बानी। सेयेहु मातु सकल सम जानी।
अउर निबाहेहु भायप भाई। करि पितु-मातु-सुजन-सेवकाई।
तात भाँति तेहि राखब राऊ। सोच मोर जेहि करइ न काऊ।
लषन कहे कछु बचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहि निहोरा।
बार बार निज सपथ दिवाई। कहबि न तात लषन-लरिकाई।

दो०—कहि प्रनाम कछु कहन लिय, सिय भइ सिथिल सनेह।
थकित बचन लोचन सजल, पुलक-पल्लवित देह ॥९४॥

राम-सखा तब नाव मँगाई। प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई।
लषन बान-धनु धरे बनाई। आप चढ़े प्रभु-आयसु पाई।
तेहि अवसर रघुबर-रुख पाई। केवट पारहिँ नाव चलाई।
रघु-कुल-तिलक चले एहि भाँती। देखेउँ ठाढ़ कुलिस धरि छाती।
मैं आपन किमि कहउँ कलेसू। जियत फिरउँ लेइ राम-सँदेसू।
अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ। हानि गलानि सोच बस भयऊ।
सूत-बचन सुनतहि नर-नाहू। परेउ धरनि उर दारुन दाहू।
तलफत बिषम मोह मन मापा। मांजा मनहुँ मीन कहँ व्यापा।
करि बिलाप सब रोवहिं रानी। महा-बिपति किमि जाइ बखानी।
सुनि बिलाप दुखहू दुख लागा। धीरजहू कर धीरज भागा।

दो०—भयउ कोलाहल अवध अति, सुनि नृप राउर सोर।
बिपुल बिहँग-बन परेउ निसि, मानहुँ कुलिस कठोर ॥९५॥

प्रान कंठ-गत भयउ भुआलू। मनि बिहीन जनु व्याकुल व्यालू।
इंद्री सकल बिकल भईं भारी। जनु सर सरसिज-बन बिनु बारी।
कौसल्या नृप दीख मलाना। रबि-कुल-रबि अथयेउ जिय जाना।
उर धरि धीर राम - महतारी। बोली बचन समय अनुसारी।

नाथ समुझि मन करिय बिचारू। राम-बियोग-पयोधि अपारू।
करनधार तुम्ह अवध-जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय-पथिक-समाजू।
धीरज धरिय त पाइय पारू। नाहिं त बूड़िहि सब परिवारू।
जौं जिय धरिय बिनय पिय मोरी। राम लषन सिय मिलहिँ बहोरी।

दो०—प्रिया बचन मृदु सुनत नृप, चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु, सींचेउ सीतल बारि ॥९६॥

धरि धीरज उठि बैठि भुआलू। कहु सुमंत्र कहँ राम कृपालू।
कहाँ लषन कहँ राम सनेही। कहँ प्रिय पुत्र-बधू बैदेही।
बिलपत राउ बिकल बहु भाँती। भइ जुग-सरिस सिराति न राती।
तापस-अंध-साप सुधि आई। कौसल्यहिं सब कथा सुनाई।
भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम-रहित धिग जीवन-आसा।
सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहि न प्रेम-पनु मोर निबाहा।
हा रघुनंदन प्रान-पिरीते। तुम्ह बिनु जियत बहुत दिन बीते।
हा जानकी लषन हा रघुबर। हा पितु-हित-चित-चातक-जलधर।

दो०—राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर-बिरह, राउ गयउ सुर-धाम ॥९७॥

जियन-मरन-फल दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जस छावा।
जियत राम-बिधु-बदन निहारा। राम-बिरह करि मरन सवाँरा।
सोक-बिकल सब रोवहिं रानी। रूप सील बल तेज बखानी।
करहिँ बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमि तल बारहिँ बारा।
बिलपहिँ बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदन करहिँ पुर-बासी।
अथयेउ आजु भानु-कुल-भानू। धरम-अवधि गुन-रूप-निधानू।
गारी सकल कैकइहि देहीं। नयन-बिहीन कीन्ह जग जेहीं।
एहि बिधि बिलपत रैन बिहानी। आये सकल महा-मुनि ज्ञानी।

दो०—तब बसिष्ठ मुनि समय-सम, कहि अनेक इतिहास।
सोक नेवारेउ सबहिं कर, निज बिज्ञान-प्रकास ॥९८॥

तेल नाव भरि नृप-तन राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा।
धावहु बेगि भरत पहिँ जाहू। नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू।
एतनेइ कहेहु भरत सन जाई। गुरु बोलाइ पठयउ दोउ भाई।
सुनि मुनि-आयसु धावन धाये। चले बेगि बर बाजि लजाये।
अनरथ अवध अरंभेउ जब तेँ। कुसगुन होहिं भरत कहँ तब तेँ।
देखहिँ राति भयानक सपना। जागि करहिं मन कोटि कलपना।
बिप्र जेवाँइ देहिँ दिन दाना। सिव-अभिषेक करहिँ बिधि नाना।
माँगहिँ हृदय महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई।

दो०—एहि बिधि सोचत भरत मन, धावन पहुँचे आइ।
गुरु-अनुसासन स्रवन सुनि, चले गनेस मनाइ ॥९९॥

चले समीर-बेग हय हांके। नाघत सरित सैल बन बांके।
हृदय सोच बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिं जिय जाउँ उड़ाई।
एक निमेष बरष-सम जाई। एहि बिधि भरत नगर नियराई।
असगुन होहिँ नगर पैठारा। रटहिँ कुभाँति कुखेत करारा।
खर सियार बोलहिँ प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत-मन सूला।
श्री-हत सर सरिता बन बागा। नगर बिसेष भयावन लागा।
खग मृग हय गय जाहिं न जोये। राम-बियोग-कुरोग बिगोये।
नगर-नारि-नर निपट दुखारी। मनहुँ सबन्हि सब संपति हारी।

दो०—पुरजन मिलहिँ न कहहिँ कछु, गवहिँ जोहारहिँ जाहिँ।
भरत कुसल पूछि न सकहिँ, भय बिषाद मन माहिँ ॥१००॥

हाट बाट नहिँ जाहिँ निहारी। जनु पुर दह दिसि लागि दवारी।
आवत सुत सुनि कैकय-नंदिनि। हरषी रबि-कुल-जलरुह-चंदिनि।

सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारहिं भेंटि भवन लेइ आई।
भरत दुखित परिवारु निहारा। मानहुँ तुहिन वनज-बन मारा।
कैकेई हरषित एहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती।
सुतहि ससोच देखि मन मारे। पूछति नैहर कुशल हमारे।
सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूछी निज-कुल-कुसल-भलाई।
कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय राम लषन प्रिय भ्राता।

दो०—सुनि सुत-वचन सनेह-मय, कपट-नीर भरि नैन।
भरत-स्रवन-मन-सूल - सम, पापिनि बोली बैन ॥१०१॥

तात बात मैं सकल सवाँरी। भइ मंथरा सहाय विचारी।
कछुक काज विधि बीच विगारेउ। भूपति सुर-पति-पुर पगु धारेउ।
सुनत भरत भय-बिवस विषादा। जनु सहमेउ करि केहरि-नादा।
तात तात हा तात पुकारी। परे भूमि - तल व्याकुल भारी।
चलत न देखन पायउँ तोही। तात न रामहिं सौंपेहु मोही।
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी। कहु पितु-मरन हेतु महतारी।
सुनि सुत-वचन कहति कैकेई। मरमु पाछि जनु माहुर देई।
आदिहु ते सब आपनि करनी। कुटिल कठोर मुदित-मन बरनी।

दो०—भरतहि बिसरेउ पितु-मरन, सुनत राम-बन-गौन।
हेतु अपनपउ जानि जिय, थकित रहे धरि मौन॥ १०२॥

विकल बिलोकि सुतहि समुझावति। मनहुँ जरे पर लोन लगावति।
तात राउ नहिं सोचन जोगू। विढइ सुकृत जस कीन्हेउ भोगू।
जीवत सकल जनम-फल पाये। अंत अमर-पति-सदन सिधाये।
अस अनुमानि सोच परिहरहू। सहित समाज राज पुर करहू।
सुनि सुठि सहमेउ राज-कुमारू। पाके छत जनु लाग अँगारू।
धीरज धरि भरि लेहिं उसासा। पापिनि सबहिं भाँति कुल नासा।

जौं पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारेसि मोही।
पेड़ काटि तैं पालउ सींचा। मीन-जियन निति बारि उलीचा।
दो०—हंस-वंस दसरथ जनकु, राम लषन से भाइ।
जननी तूँ जननी भई, बिधि सन कछु न बसाइ॥ १०३॥
जब तैं कुमति कुमत जिय ठयऊ। खंड खंड होइ हृदय न गयऊ।
बर माँगत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा।
भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्ही। मरन-काल बिधि मति हरि लीन्हीं।
बिधिहु न नारि हृदय-गति जानी। सकल-कपट-अघ-अवगुन-खानी।
सरल सुसील धरम-रत राऊ। सो किमि जानइ तीय-सुभाऊ।
अस को जीव जंतु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रान-प्रिय नाहीं।
भे अति अहित राम तेउ तोही। को तूँ अहसि सत्य कहु मोही।
जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई। आँखि ओट उठि बैठहि जाई।
दो०—राम-बिरोधी-हृदय तें, प्रगट कीन्ह बिधि मोहि।
मो समान को पातकी, बादि कहउँ कछु तोहि॥ १०४॥
कौसल्या पहिं गे दोउ भाई। मन अति मलिन सोच अधिकाई।
भरतहि देखि मातु उठि धाई। मुरुछित अवनि परी झइँ आई।
देखत भरत बिकल भये भारी। परे चरन तन-दसा बिसारी।
मातु तात कहँ देहि देखाई। कहँ सिय राम लषन दोउ भाई।
कैकइ कत जनमी जग माँझा। जौं जनमित भइ काहे न बाँझा।
कुल-कलंक जेहि जनमेउ मोही। अपजस-भाजन प्रिय-जन-द्रोही।
सरल सुभाव माय हिय लाये। अति हित मनहुँ राम फिरि आये।
भेंटेउ बहुरि लषन-लघु-भाई। सोक सनेह न हृदय समाई।
देखि सुभाउ कहत सब कोई। राम-मातु अस काहे न होई।
माता भरत गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे।

अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू । कुसमउ समुझि सोक परिहरहू ।
जनि मानहु हिय हानि गलानी । काल-करम-गति अघटित जानी ।
दो०—कौसल्या के बचन सुनि, भरत सहित रनिवासु ।
व्याकुल बिलपत राज-गृह, मानहुँ सोक-निवासु ॥ १०५ ॥
बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई । कौसल्या लिये हृदय लगाई ।
भाँति अनेक भरत समुझाये । कहि बिवेक-मय बचन सुनाये ।
भरतहु मातु सकल समुझाई । कहि पुरान स्रुति कथा सुहाई ।
छल-बिहीन सुचि सरल सुबानी । बोले भरत जोरि जुग-पानी ।
जे अघ मातु-पिता-सुत मारे । गाइ-गोठ महि-सुर-पुर जारे ।
जे अघ तिय-बालक-बध कीन्हे । मीत मही-पति माहुर दीन्हे ।
जे पातक उपपातक अहहीं । करम-बचन-मन-भव कबि कहहीं ।
ते पातक मोहि होहु बिधाता । जौं एहु होइ मोर मत माता ।
दो०—जे परिहरि हरि-हर चरन, भजहिं भूत-गन घोर ।
तिन्ह कइ गति मोहि देउ बिधि, जौं जननी मत मोर ॥ १०६ ॥
बेचहिं बेद धरम दुहि लेहीं । पिसुन पराय पाप कहि देहीं ।
कपटी कुटिल कलह-प्रिय क्रोधी । बेद-बिदूषक बिस्व-बिरोधी ।
लोभी लंपट लोलुप-चारा । जे ताकहिं पर-धनु पर-दारा ।
पावउँ मैं तिन्ह के गति घोरा । जौं जननी एहु संमत मोरा ।
जे नहिं साधु-संग अनुरागे । परमारथ-पथ-बिमुख अभागे ।
जे न भजहिं हरि नर-तनु पाई । जिन्हहि न हरि-हर-सुजस सुहाई ।
तजि स्रुति-पंथ बाम-पथ चलहीं । बंचक बिरचि बेषु जग छलहीं ।
तिन्ह कइ गति मोहि शंकर देऊ । जननी जौं एहु जानउँ भेऊ ।
दो०—मातु भरत के बचन सुनि, साँचे सरल सुभाय ।
कहति राम-प्रिय तात तुम्ह, सदा बचन मन काय ॥ १०७ ॥

राम प्रान तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहिं प्रान तें प्यारे।
बिधु बिष चवइ स्रवइ हिम आगी। होइ बारि-चर बारि-बिरागी।
भये ज्ञान बरु मिटइ न मोहू। तुम्ह रामहिं प्रतिकूल न होहू।
मत तुम्हार एह जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं।
अस कहि मातु भरत हिय लाये। थन-पय स्रवहिं नयन जल छाये।
करत बिलाप बहुत एहि भाँती। बैठेहि बीति गई सब राती।
बामदेव बसिष्ठ तब आये। सचिव महाजन सकल बोलाये।
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ-बचन सुदेसे।

दो०—तात हृदय धीरज धरहु, करहु जो अवसर आजु।
उठे भरत गुरु-बचन सुनि, करन कहेउ सब काजु॥ १०८॥

नृप-तनु बेद-बिहित अन्हवावा। परम बिचित्र बिमान बनावा।
गहि पग भरत मातु सब राखी। रहीं राम दरसन अभिलाखी।
चंदन-अगर-भार बहु आये। अमित अनेक सुगंध सुहाये।
सरजु-तीर रचि चिता बनाई। जनु सुर-पुर-सोपान सुहाई।
एहि बिधि दाह-क्रिया सब कीन्ही। बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही।
सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात-बिधाना।
जहँ जस मुनि-बर आयसु दीन्हा। तहँ तस सहस भाँति सब कीन्हा।
भये बिसुद्ध दिये सब दाना। धेनु बाजि गज बाहन नाना।

दो०—सिंहासन भूषन बसन, अन्न धरनि धन धाम।
दिये भरत लहि भूमि-सुर, भे परिपूरन काम॥ १०९॥

पितु-हित भरत कीन्ह जसि करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी।
सुदिन सोधि मुनि-बर तब आये। सचिव महाजन सकल बोलाये।
बैठे राज-सभा सब जाई। पठये बोलि भरत दोउ भाई।
भरत बसिष्ठ निकट बैठारे। नीति-धरम-मय बचन उचारे।

प्रथम कथा सब मुनि-वर बरनी। केकइ कुटिल कीन्हि जसि करनी।
भूप धरम-ब्रत सत्य सराहा। जेहि तनु परिहरि प्रेम निवाहा।
कहत राम--गुन--सील--सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनि-राऊ।
बहुरि लषन-सिय-प्रीति बखानी। सोक सनेह मगन मुनि ज्ञानी।

दो०—सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनि-नाथ।
हानि लाभ जीवन मरन, जस अपजस बिधि हाथ॥ ११०॥

अस बिचारि केहि देइय दोषू। ब्यरथ काहि पर कीजिय रोषू।
तात बिचार करहु मन माहीं। सोच-जोग दसरथ नृप नाहीं।
सब प्रकार भूपति बड़-भागी। बादि बिषाद करिय तेहि लागी।
एह सुनि समुझि सोच परिहरहू। सिर धरि राज-रजायसु करहू।
राय राज-पद तुम्ह कहँ दीन्हा। पिता-बचन फुर चाहिय कीन्हा।
तजे राम जेहि बचनहिं लागी। तनु परिहरेउ राम-बिरहागी।
नृपहिं बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना। करहु तात पितु-बचन प्रमाना।
करहु सीस धरि भूप-रजाई। यह तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई।

दो०—अनुचित उचित बिचारु तजि, जे पालहिं पितु-बैन।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमर-पति-ऐन॥ १११॥
कीजिय गुरु-आयसु अवसि, कहहिं सचिव कर जोरि।
रघुपति आये उचित जस, तस तब करब बहोरि॥ ११२॥

सो०—भरत कमल-कर जोरि, धीर-धुरंधर धीर धरि।
बचन अमिय जनु बोरि, देत उचित उत्तर सबहि॥ ११३॥

मोहि उपदेस दीन्ह गुरु नीका। प्रजा सचिव संमत सबही का।
गुरु--पितु-मातु--स्वामि--हित-बानी। सुनि मन मुदित करिय भलि जानी।
उचित कि अनुचित किये बिचारू। धरम जाइ सिर पातक-भारू।
तुम्ह तउ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई।

जद्यपि यह समुझत हउँ नीके। तदपि होत परितोषु न जी के।
अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनि देहू।
उत्तर देउँ छमब अपराधू। दुखित-दोष-गुन गनहिं न साधू।

दो०—पितु सुर-पुर सिय राम बन, करन कहहु मोहि राज।
एहि ते जानहु मोर हित, कै आपन बड़ काज॥ ११४॥

हित हमार सिय-पति-सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु-कुटिलाई।
मैं अनुमानि दीखि मन माहीं। आन उपाय मोर हित नाहीं।
सोक-समाज राज केहि लेखे। लषन-राम-सिय-पद बिनु देखे।
बादि बसन बिनु भूषन-भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्म-बिचारू।
सरुज सरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरि-भगति जाय जप जोगा।
जाय जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सब बिनु रघुराई।
जाउँ राम पहँ आयसु देहू। एकहि आँक मोर हित एहू।
मोहि नृप करि भल आपन चहहू। सोउ सनेह-जड़ता-बस कहहू।

दो०—कैकेइ-सुअन कुटिल मति, राम-बिमुख गत-लाज।
तुम्ह चाहत सुख मोह-बस, मोहि से अधम के राज॥ ११५॥

कहउँ साँच सब सुनि पतियाहू। चाहिय धरम-सील नर-नाहू।
मोहि राज हठि देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं।
मोहि समान को पाप-निवासू। जेहि लगि सीय-राम-बन-बासू।
राय राम कहँ कानन दीन्हा। बिछुरत गमन अमर-पुर कीन्हा।
मैं सठ सब अनरथ कर हेतू। बैठ बात सब सुनउँ सचेतू।
बिनु रघुबीर बिलोकिय बासू। रहे प्रान सहि जग-उपहासू।
राम पुनीत बिषय-रस-रूखे। लोलुप भूमि-भोग के भूखे।
कहँ लगि कहउँ हृदय-कठिनाई। निदरि कुलिसु जेहि लही बड़ाई।

दो०—कारन ते कारज कठिन, होइ दोस नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें, लोह कराल कठोर॥ ११६॥

कैकेई-भव तनु अनुरागे। पावँर प्रान अघाइ अभागे।
जौं प्रिय-बिरह प्रान-प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे।
लषन-राम-सिय कहँ बन दीन्हा। पठइ अमर-पुर पति-हित कीन्हा।
लीन्ह बिधवपन अपजसु आपू। दीन्हेउ प्रजहिं सोकु संतापू।
मोहि दीन्ह सुख सुजस सुराजू। कीन्ह कैकई सब कर काजू।
एहि ते मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका।
कैकइ-जठर जनमि जग माहीं। यह मो कहँ कछु अनुचित नाहीं।
मोरि बात सब बिधिहि बनाई। प्रजा पाँच कत करहु सहाई।

दो०—ग्रह-ग्रहीत पुनि बात-बस, तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पियाइय बारुनी, कहहु कवन उपचार॥ ११७॥

कैकइ-सुअन जोग जग जोई। चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई।
दसरथ-तनय राम-लघु-भाई। दीन्हि मोहि बिधि बादि बड़ाई।
तुम्ह सब कहहु कढ़ावन टीका। राय-रजायसु सब कहँ नीका।
उतरु देउँ केहि बिधि केहि केही। कहहु सुखेन जथा-रुचि जेही।
मोहि कु-मातु-समेत बिहाई। कहहु कहिहि के कीन्हि भलाई।
मो बिनु को सचराचर माहीं। जेहि सिय-राम प्रान-प्रिय नाहीं।
परम हानि सब कहँ बड़ लाहू। अदिन मोर नहिं दूषन काहू।
संसय-सील-प्रेम-बस अहहू। सबइ उचित सब जो कछु कहहू।
गुरु बिबेक-सागर जग जाना। जिन्हहिं बिस्व कर-बदर-समाना।
मो कहँ तिलक-साज सज सोऊ। भये बिधि-बिमुख बिमुख सब कोऊ।
परिहरि राम-सीय जग माहीं। कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं।
सो मैं सुनब सहब सुख मानी। अंतहु कीच तहाँ जहँ पानी।

डर न मोहि जग कहहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिंन सोचू।
एकइ उर बस दुसहु दवारी। मोहि लगि भे सिय-राम दुखारी।
जीवन-लाहु लषन भल पावा। सब तजि राम-चरन मन लावा।
मोर जनम रघुबर-बन लागी। झूठ काह पछिताउँ अभागी।
दो०—आपनि दारुन दीनता, कहउँ सबहिं सिर नाइ।
देखे बिनु-रघु-नाथ-पद, जिय कै जरनि न जाइ॥ ११८॥
आन उपाउ मोहि नहिं सूझा। को जिय कै रघुबर बिनु बूझा।
एकहि आँक इहइ मन माहीं। प्रात-काल चलिहउँ प्रभु पाहीं।
जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भइ मोहि कारन सकल उपाधी।
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेखी।
सील सकुचि सुठि सरल सुभाऊ। कृपा-सनेह-सदन रघुराऊ।
अरिहु क अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा।
तुम्ह पै पाँच मोर भल मानी। आयसु आसिष देहु सुबानी।
जेहि सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि राम रजधानी।
दो०—जद्यपि जनम कुमातु तें, मैं सठ सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहहिं, मोहि रघु-बीर-भरोस॥ ११९॥
भरत-बचन सब कहँ प्रिय लागे। राम-सनेह-सुधा जनु पागे।
लोग बियोग-बिषम-बिष दागे। मंत्र सबीज सुनत जनु जागे।
भा सब के मन मोद न थोरा। जनु घन-धुनि सुनि चातक मोरा।
चलत प्रात लखि निरनउ नीके। भरत प्रान-प्रिय भे सब ही के।
मुनिहिं बंदि भरतहिं सिर नाई। चले सकल घर बिदा कराई।
कहहिं परसपर भा बड़ काजू। सकल चलइ कर साजहिं साजू।
नगर लोग सब सजि सजि नाना। चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना।
सिबिका सुभग न जाहिं बखानी। चढ़ि चढ़ि चलत भईं सब रानी।

दो०—सौंपि नगर सुचि सेवकन, सादर सबहिं चलाइ ।
सुमिरि राम-सिय-चरन तब, चले भरत दोउ भाइ ॥ १२० ॥

तमसा प्रथम दिवस करि बासू । दूसर गोमति-तीर-निवासू ।
सई-तीर बसि चले बिहाने । सिंगबेरपुर सब नियराने ।
समाचार सब सुने निषादा । हृदय बिचार करइ सबिषादा ।
कारन कवन भरत बन जाहीं । है कछु कपट-भाउ मन माहीं ।
जौं पै जिय न होति कुटिलाई । तौ कत लीन्ह संग कटकाई ।
जानहिं सानुज रामहिं मारी । करउँ अकंटक राज सुखारी ।
भरत न राज-नीति उर आनी । तब कलंक अब जीवन-हानी ।
सकल-सुरासुर जुरहिं जुझारा । रामहिं समर न जीतनिहारा ।
का आचरज भरत अस करहीं । नहिं विष-बेलि अमिय फल फरहीं ।

दो०—अस बिचारि गुह जाति सन, कहेउ सजग सब होहु ।
हथबाँसहु बोरहु तरनि, कीजिय घाटारोहु ॥ १२१ ॥

बेगहि भाइहु सजहु सँजोऊ । सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ ।
भलेहि नाथ सब कहहिं सहरषा । एकहिं एक बढ़ावहिं करषा ।
निज निज साज समाज बनाई । गुहराउतहिं जोहारे जाई ।
देखि सुभट सब लायक जाने । लेइ लेइ नाम सकल सनमाने ।
दीख निपाद-नाथ भल टोलू । कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू ।
एतना कहत छीक भई बायें । कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाये ।
बूढ़ एक कह सगुन बिचारी । भरतहि मिलिय न होइहि रारी ।
रामहिं भरत मनावन जाहीं । सगुन कहइ अस बिग्रह नाहीं ।
सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा । सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा ।
भरत-सुभाउ-सील बिनु बूझे । बड़ि हित-हानि जानि बिनु जूझे ।

दो०—गहहु घाट भट सिमिटि सब, लेउँ मरम मिलि जाइ ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति, तब तस करिहउँ आइ ॥१२२॥
लखब सनेह सुभाय सुहाये । बैर प्रीति नहिं दुरइ दुराये ।
अस कहि भेंट सँजोवन लागे । कंद मूल फल खग मृग माँगे ।
मीन पीन पाठीन पुराने । भरि भरि भार कहारन्ह आने ।
मिलन-साजु सजि मिलन सिधाये । मंगल-मूल सगुन सुभ पाये ।
देखि दूरि ते कहि निज नामू । कीन्ह मुनीसहिं दंड-प्रनामू ।
जानि राम-प्रिय दीन्ह असीसा । भरतहिं कहेउ बुझाइ मुनीसा ।
राम-सखा सुनि स्यंदनु त्यागा । चले उतरि उमगत अनुरागा ।
गाउँ जाति गुह नाउँ सुनाई । कीन्ह जोहारु माथ महि लाई ।
दो०—करत दंडवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाइ ।
मनहुँ लषन सन भेंट भइ, प्रेम न हृदय समाइ ॥ १२३ ॥
भेंटत भरत ताहि अति प्रीती । लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती ।
धन्य धन्य धुनि मंगल-मूला । सुर सराहिं तेहि बरसहिं फूला ।
राम-सखहिं मिलि भरत सप्रेमा । पूछी कुसल सुमंगल खेमा ।
देखि भरत कर सील सनेहू । भा निषाद तेहि समय बिदेहू ।
कहि निषाद निज नाम सुबानी । सादर सकल जोहारी रानी ।
जानि लषन-सम देहिं असीसा । जियहु सुखी सय लाख बरीसा ।
निरखि निषाद नगर-नर-नारी । भये सुखी जनु लषन निहारी ।
कहहिं लहेउ एहि जीवन-लाहू । भेंटेउ राम-भद्र भरि बाहू ।
सुनि निषाद निज भाग बड़ाई । प्रमुदित मन लै चलेउ लेवाई ।
दो०—सनकारे सेवक सकल, चले स्वामि-रुख पाइ ।
घर तरु तर सर बाग बन, बास बनायन्हि जाइ ॥ १२४ ॥
सृंगबेरपुर भरत दीख जब । भे सनेह-बस अंग सिथिल तब ।

सोहत दिये निषादहि लागू । जनु तनु धरे विनय अनुरागू ।
एहि विधि भरत सेन सब संगा । दीख जाइ जग-पावनि गंगा ।
राम-घाट कहँ कीन्ह प्रनामू । भा मन मगन मिले जनु रामू ।
करहिं प्रनाम नगर-नर-नारी । मुदित ब्रह्म-मय बारि निहारी ।
करि मज्जनु माँगहिं कर जोरी । रामचंद्र-पद प्रीति न थोरी ।
भरत कहेउ सुर-सरि तव रेनू । सकल-सुखद सेवक-सुर-धेनू ।
जोरि पानि वर मागउँ एहू । सीय-राम-पद सहज सनेहू ।

दो०—एहि विधि मज्जन भरत करि, गुरु अनुसासन पाइ ।
मातु नहानीं जानि सब, डेरा चले लेवाइ ॥ १२५ ॥

जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा । भरत सोधु सबही कर लीन्हा ।
सुर-सेवा करि आयसु पाई । राम-मातु पहिं गे दोउ भाई ।
चरन चाँपि कहि कहि मृदु बानी । जननी सकल भरत सनमानी ।
भाइहि सौंपि मातु-सेवकाई । आपु निषादहि लीन्ह बोलाई ।
चले सखा कर सों कर जोरे । सिथिल सरीर सनेहु न थोरे ।
पूछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ । नेकु नयन-मन-जरनि जुड़ाऊ ।
जहँ सिय राम लषन निसि सोये । कहत भरे जल लोचन-कोये ।
भरत-बचन सुनि भयउ बिषादू । तुरत तहाँ लेइ गयउ निषादू ।

दो०—जहँ सिंसुपा पुनीत तरु, रघुबर किय बिस्रामु ।
अति सनेह सादर भरत, कीन्हे दंड-प्रनामु ॥ १२६ ॥

कुस साथरी निहारि सुहाई । कीन्ह प्रनाम प्रदच्छिन जाई ।
चरन-रेख-रज आँखिन्ह लाई । बनइ न कहत प्रीति-अधिकाई ।
कनक-बिंदु दुइ चारिक देखे । राखे सीस सीय-सम लेखे ।
सजल बिलोचन हृदय गलानी । कहत सखा सन बचन सुबानी ।
श्री-हत सीय-बिरह दुति-हीना । जथा अवध-नर-नारि मलीना ।

पिता जनक देउँ पटतर केही। करतल भोग जोग जग जेही।
ससुर भानु-कुल-भानु भुआलू। जेहि सिहात अमरावति-पालू।
प्रानु-नाथ रघुनाथ गोसाईं। जो बड़ होत सो राम-बड़ाई।

दो०—पति-देवता सु-तीय-मनि, सीय साथरी देखि।
बिरहत हृदय न हहरि हर, पबि तें कठिन बिसेखि ॥१२७॥

लालन-जोग लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने।
पुर-जन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय-रघुबीरहिं प्रान-पियारे।
मृदु-मूरति सुकुमार सुभाऊ। ताति बाउ तन लाग न काऊ।
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। निदरे कोटि कुलिस एहि छाती।
राम जनमि जगु कीन्ह उजागर। रूप सील सुख सब गुन-सागर।
पुर-जन परिजन गुरु पितु माता। राम-सुभाउ सबहिं सुख-दाता।
बैरिउ राम-बड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं।
सादर कोटि कोटि सत सेखा। करि न सकहिं प्रभु-गुन-गन-लेखा।

दो०—सुख-सरूप रघु-बंस-मनि, मंगल-मोद-निधान।
ते सोवत कुस डासि महि, बिधि-गति अति बलवान ॥१२८॥

राम सुना दुख कान न काऊ। जीवन-तरु जिमि जोगवइ राऊ।
पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती। जोगवहिं जननि सकल दिन राती।
ते अब फिरत बिपिन पदचारी। कंद-मूल - फल - फूल - अहारी।
धिग कैकेइ अमंगल-मूला। भइसि प्रान-प्रियतम-प्रतिकूला।
मैं धिग धिग अघ-उदधि अभागी। सब उतपात भयउ जेहि लागी।
कुल-कलंकु करि सृजेउ बिधाता। साइँ द्रोह मोहि कीन्ह कुमाता।
सुनि सप्रेम समुझाव निषादू। नाथ करिय कत बादि बिषादू।
राम तुम्हहिं प्रिय तुम्ह प्रिय रामहि। एह निरजोस दोसु बिधि बामहिं।

छन्द—विधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सराहन रावरी।
तुलसी न तुम्ह सों राम प्रीतम कहत हौं सौंहें किये।
परिनाम मंगल जानि अपने आनिये धीरज हिये॥

सो०—अंतरजामी राम, सकुच सप्रेम कृपायतन।
चलिय करिय बिश्राम, यह बिचार दृढ़ आनि मन॥१२९॥

सखा-बचन सुनि उर धरि धीरा। बास चले सुमिरत रघुबीरा।
यह सुधि पाइ नगर-नर-नारी। चले बिलोकन आरत भारी।
परदछिना करि करहिं प्रनामा। देहिं कैकेइहि खोरि निकामा।
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं। बाम बिधातहि दूषन देहीं।
एक सराहहिं भरत-सनेहू। कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू।
निंदहिं आपु सराहि निषादहि। को कहि सकइ बिमोह बिषादहि।
एहि बिधि राति लोगु सबु जागा। भा भिनुसारु गुदारा लागा।
गुरुहिं सुनाव चढ़ाइ सुहाई। नई नाव सब मातु चढ़ाई।
दंड चारि महँ भा सब पारा। उतरि भरत तब सबहि सँभारा।

दो०—प्रात-क्रिया करि मातु-पद, बंदि गुरुहिं सिर नाइ।
आगे किये निषाद-गन, दीन्हेउ कटक चलाइ॥ १३०॥
भरत तीसरे पहर कहँ, कीन्ह प्रवेसु प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय, उमगि उमगि अनुराग॥ १३१॥

झलका झलकत पायन्ह कैसे। पंकज-कोस ओस-कन जैसे।
भरत पयादेहि आये आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू।
खबरि लीन्ह सब लोग नहाये। कीन्ह प्रनाम त्रिबेनिहि आये।
सबिधि सितासित नीर नहाने। दिये दान महि-सुर सनमाने।
देखत स्यामल-धवल-हलोरे। पुलकि सरीर भरत कर जोरे।

सकल-काम-प्रद तीरथ - राऊ । वेद-विदित जग प्रगट प्रभाऊ ।
माँगउँ भीख त्यागि निज धरमू । आरत काह न करइ कुकरमू ।
अस जिय जानि सुजान सुदानी । सफल करहिं जग जाचक-बानी ।
दो०—अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहहुँ निरबान ।
जनम जनम रति राम-पद, यह बरदानु न आन ॥१३२॥
प्रमुदित तीरथ-राज-निवासी । बैखानस बटु गृही उदासी ।
कहहिं परसपर मिलि दस पाँचा । भरत सनेह सील सुचि साँचा ।
सुनत राम-गुन-ग्राम सुहाये । भरद्वाज मुनि-बर पहिं आये ।
दंड-प्रनाम करत मुनि देखे । मूरतिवंत भाग निज लेखे ।
धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे । दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हे ।
आसन दीन्ह नाइ सिरु बैठे । चहत सकुच गृह जनु भजि पैठे ।
मुनि पूछब किछु यह बड़ सोचू । बोले रिषि लखि सील सँकोचू ।
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई । विधि-करतब पर किछु न बसाई ।
दो०—तुम्ह गलानि जिय जनि करहु, समुझि मातु-करतूति ।
तात कैकइहि दोष नहिं, गई गिरा मति धूति ॥ १३३ ॥
करि प्रबोध मुनि-बर कहेउ, अतिथि प्रेम-प्रिय होहु ।
कंद मूल फल फूल हम, देहिं लेहु करि छोहु ॥ १३४ ॥
सुनि मुनि-बचन भरत हिय सोचू । भयउ कुअवसर कठिन सँकोचू ।
जानि गरुइ गुरु-गिरा बहोरी । चरन बंदि बोले कर जोरी ।
सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा । परम धरम यह नाथ हमारा ।
भरत-बचन मुनि-बर मन भाये । सुचि सेवक सिष निकट बोलाये ।
चाहिय कीन्ह भरत-पहुनाई । कंद मूल फल आनहु जाई ।
भलेहि नाथ कहि तिन्ह सिर नाये । प्रमुदित निज निज काज सिधाये ।
मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता । तसि पूजा चाहिय जस देवता ।

दो०—बहुरि सपरिजन भरत कहँ, रिषि अस आयसु दीन्ह ।
विधि–बिसमय–दायक बिभव, मुनि-बर तप-बल कीन्ह ॥ १३५ ॥

मुनि-प्रभाव जब भरत बिलोका । सब लघु लगे लोक-पति लोका ।
सुख-समाज नहिं जाइ बखानी । देखत बिरति बिसारहिं ज्ञानी ।
आसन सयन सुबसन बिताना । बन बाटिका बिहँग मृग नाना ।
सुरभि फूल फल अमिय-समाना । बिमल जलासय बिबिध बिधाना ।
असन पान सुचि अमिय अमी से । देखि लोग सकुचात जमी से ।
सुर-सुरभी सुर-तरु सबही के । लखि अभिलाष सुरेस सची के ।
रितु बसंत बह त्रिबिध बयारी । सब कहँ सुलभ पदारथ चारी ।
स्रक चंदन बनितादिक भोगा । देखि हरख-बिसमय-बस लोगा ।

दो०—संपति चकई भरत चक, मुनि-आयसु खेलवार ।
तेहि निसि आस्रम-पींजरा, राखे भा भिनुसार ॥ १३६ ॥

कीन्ह निमज्जन तीरथ-राजा । नाइ मुनिहिं सिरु सहित समाजा ।
रिषि-आयसु असीस सिर राखी । करि दंडवत बिनय बहु भाखी ।
पथ-गति-कुसल साथ सब लीन्हे । चले चित्रकूटहि चितु दीन्हे ।
राम-सखा कर दीन्हे लागू । चलत देह धरि जनु अनुरागू ।
नहिं पद-त्रान सीस नहिं छाया । प्रेम नेम ब्रत धरम अमाया ।
लषन-राम–सिय–पंथ–कहानी । पूछत सखहि कहत मृदु बानी ।
राम-बास-थल-बिटप बिलोके । उर अनुराग रहत नहिं रोके ।
देखि दसा सुर बरिषहिं फूला । भइ मृदु महि मग मंगल-मूला ।

दो०—किये जाहिं छाया जलद, सुखद बहइ बर बात ।
तस मग भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहिं जात ॥ १३७ ॥

एहि बिधि भरत चले मग जाहीं । दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं ।
बीच बास करि जमुनहि आये । निरखि नीरु लोचन जल छाये ।

जमुन-तीर तेहि दिन करि बासू। भयउ समय-सम सबहिं सुपासू।
रातिहिं घाट घाट की तरनी। आईं अगनित जाहिं न बरनी।
प्रात पार भये एकहि खेवा। तोषे राम-सखा की सेवा।
चले नहाइ नदिहि सिरु नाई। साथ निषाद-नाथ दोउ भाई।
आगे मुनि-बर-बाहन आछे। राज-समाज जाइ सब पाछे।
तेहि पाछे दोउ बंधु पयादे। भूषन बसन बेष सुठि सादे।
सेवक सुहृद सचिव-सुत साथा। सुमिरत लषनु सीय रघुनाथा।
जहँ जहँ राम-बास-बिस्रामा। तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा।

दो०—चलत पयादेहि खात फल, पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहि, भरत सरिस को आजु॥ १३८॥

निज गुन-सहित राम-गुन-गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा।
तीरथ मुनि आस्रम सुर-धामा। निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा।
मनहीं मन माँगहिं बर एहू। सीय-राम-पद-पदुम-सनेहू।
मिलहिं किरात कोल बन-बासी। बैखानस बटु जती उदासी।
करि प्रनामु पूछहिं जेहि तेही। केहि बन लषनु राम बैदेही।
ते प्रभु-समाचार सब कहहीं। भरतहिं देखि जनम-फलु लहहीं।
जे जन कहहिं कुसल हम देखे। ते प्रिय राम-लषन-सम लेखे।
एहि बिधि बूझत सबहिं सुबानी। सुनत राम-बन-बास-कहानी।

दो०—तेहि बासर बसि प्रातही, चले सुमिरि रघुनाथ।
राम-दरस की लालसा, भरत सरिस सब साथ॥ १३९॥

मंगल सगुन होहिं सब काहू। फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू।
भरतहि सहित समाज उछाहू। मिलिहहिं रामु मिटिहि दुख-दाहू।
करत मनोरथ जस जिय जाके। जाहिं सनेह सुरा सब छाके।
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। बिहबल बचन प्रेम-बस बोलहिं।

राम-सखा तेहि समय देखावा। सैल-सिरोमनि सहज सुहावा।
जासु समीप सरित-पय-तीरा। सीय-समेत बसहिँ दोउ बीरा।
देखि करहिँ सब दंड-प्रनामा। कहि जय जानकि-जीवन रामा।
प्रेम-मगन अस राम-समाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू।

दो०—भरत प्रेम तेहि समय जस, तस कहि सकइ न सेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्म-सुख, अह-मम-मलिन-जनेषु॥ १४०॥

सकल सनेह सिथिल रघुबर के। गये कोस दुइ दिन-कर ढरके।
जल थल देखि बसे निसि बीते। कीन्ह गवन रघु-नाथ-पिरीते।
उहाँ रामु रजनी-अवसेखा। जागे सीय सपन अस देखा।
सहित समाज भरत जनु आये। नाथ-बियोग-ताप तन ताये।
सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखी सासु आन अनुहारी।
सुनि सिय-सपन भरे जल लोचन। भये सोच-बस सोच-बिमोचन।
लषन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई।
अस कहि बंधु-समेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने।

छंद—सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भये।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आस्रम गये।
तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे॥

सो०—सुनत सुमंगल बैन, मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरद-सरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह-जल॥ १४१॥

बहुरि सोच बस भे सिय-रवनू। कारन कवन भरत-आगमनू।
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी।
सो सुनि रामहिँ भा अति सोचू। इत पितु-बच उत बंधु-सँकोचू।
भरत-सुभाउ समुझि मन माहीं। प्रभु-चित हित-थिति पावत नाहीं।

समाधान तब भा यह जाने। भरत कहे महँ साधु सयाने।
लषन लखेउ प्रभु हृदय-खभारू। कहत समय-सम नीति-बिचारू।
बिनु पूछे कछु कहउँ गोसाईं। सेवक-समय न ढीठ ढिठाई।
तुम्ह सर्बज्ञ सिरोमनि स्वामी। आपनि समुझि कहउँ अनुगामी।

दो०—नाथ सुहृद सुठि सरल-चित, सील-सनेह-निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जिय, जानिय आपु समान॥ १४२॥

विषयी जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोह-बस होहिं जनाई।
भरत नीति-रत साधु सुजाना। प्रभु-पद-प्रेम सकल जग जाना।
तेऊ आजु राज-पदु पाई। चले धरम-मरजाद मेटाई।
कुटिल कुबंधु कुअवसर ताकी। जानि राम बन-बास एकाकी।
करि कुमंत्र मन साजि समाजू। आये करइ अकंटक राजू।
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। आये दल बटोरि दोउ भाई।
जौं जिय होति न कपट कुचाली। केहि सोहाति रथ-बाजि-गजाली।
भरतहि दोष देइ को जाये। जग बौराइ राज-पद पाये।

दो०—ससि गुरु-तिय-गामी नहुष, चढ़ेउ भूमि-सुर-जान।
लोक-बेद तें बिमुख भा, अधम न बेन-समान॥ १४३॥

सहसबाहु सुर-नाथ त्रिसंकू। केहि न राज-पद दीन्ह कलंकू।
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काऊ।
एक कीन्ह नहिं भरत भलाई। निदरे राम जानि असहाई।
समुझि परिहि सोउ आजु बिसेखी। समर सरोष राम-मुख पेखी।
एतना कहत नीति-रस भूला। रन-रस-बिटप पुलक-मिस फूला।
प्रभु-पद बंदि सीस-रज राखी। बोले सत्य सहज बल भाखी।
अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहिं उपचार न थोरा।
कहँ लगि सहिय रहिय मन मारे। नाथ-साथ धनु हाथ हमारे।

दो०—छत्रि-जाति रघु-कुल-जनम, राम-अनुज जग जान।
लातहुँ मारे चढ़ति सिर, नीच को धूरि-समान॥ १४४॥

उठि कर जोरि रजायसु माँगा। मनहुँ वीर-रस सोवत जागा।
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासन सायक हाथा।
आजु राम-सेवक जसु लेऊँ। भरतहिं समर सिखावन देऊँ।
राम-निरादर कर फल पाई। सोवहु समर-सेज दोउ भाई।
आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू।
जिमि करि-निकर दलइ मृग-राजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू।
तैसेहि भरतहि सेन-समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता।
जौं सहाय कर शंकर आई। तौ मारेउँ रन राम-दोहाई।

दो०—अति सरोष माषे लषन, लखि सुनि सपथ-प्रवान।
सभय लोक सब लोक-पति, चाहत भभरि भगान॥ १४५॥

जग भय-मगन गगन भइ बानी। लषन-बाहु-बल विपुल बखानी।
तात प्रताप-प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा।
अनुचित उचित काज कछु होऊ। समुझि करिय भल कह सब कोऊ।
सहसा करि पाछे पछिताहीं। कहहिं वेद बुध ते बुध नाहीं।
सुनि सुर-बचन लषन सकुचाने। राम सीय सादर सनमाने।
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब ते कठिन राज-मद भाई।
जो अँचवत माँतहिं नृप तेई। नाहिन साधु सभा जेहि सेई।
सुनहु लषन भल भरत-सरीसा। विधि-प्रपंच महँ सुना न दीसा।

दो०—भरतहि होइ न राज-मद, बिधि-हरि-हर-पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी-सीकरनि, छीर-सिंधु बिनसाइ॥ १४६॥

तिमिर-तरुन तरनिहि सकु गिलई। गगन मगन मकु मेघहि मिलई।
गोपद जल बूड़हिं घट-जोनी। सहज छमा बरु छाड़इ छोनी।

मसक-फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृप-मद भरतहि भाई।
लषन तुम्हार सपथ पितु-आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत-समाना।
सगुन-षीर अवगुन-जल ताता। मिलइ रचइ परपंच बिधाता।
भरत हंस रबि-बंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन-दोष बिभागा।
गहि गुन-पय तजि अवगुन-बारी। निज जस जगत कीन्हि उँजियारी।
कहत भरत-गुन-सील-सुभाऊ। प्रेम-पयोधि मगन रघुराऊ।

दो०—सुनि रघुबर-बानी बिबुध, देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सों, प्रभु को कृपा-निकेतु॥ १४७॥

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल-धरम-धुर धरनि धरत को।
कबि-कुल-अगम भरत-गुन-गाथा। को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा।
लषन राम सिय सुनि सुर-बानी। अति सुख लहेउ न जाइ बखानी।
इहाँ भरत सब सहित सहाये। मंदाकिनी पुनीत नहाये।
सरित-समीप राखि सब लोगा। माँगि मातु-गुरु-सचिव-नियोगा।
चले भरत जहँ सिय-रघुराई। साथ निषाद-नाथ लघु भाई।
समुझि मातु-करतब सकुचाहीं। करत कुतरक कोटि मन माहीं।
राम-लषन-सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ।

दो०—मातु मते महँ मानि मोहि, जो कछु कहहिं सो थोर।
अघ-अवगुन छमि आदरहिं, समुझि आपनी ओर॥ १४८॥

जौं परिहरहिं मलिन मन जानी। जौं सनमानहिं सेवक मानी।
मोरे सरन राम की पनहीं। राम सुस्वामि दोष सब जनहीं।
जग जस-भाजन चातक मीना। नेम प्रेम निज निपुन नवीना।
अस मन गुनत चले मग जाता। सकुच सनेह सिथिल सब गाता।
फेरति मनहिं मातु-कृत खोरी। चलत भगति-बल धीरज-धोरी।
जब समुझत रघुनाथ-सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ।



भरत-दसा तेहि अवसर कैसी। जल-प्रवाह जल-अलि-गति जैसी।
देखि भरत कर सोचु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू।

दो०—लगे होन मंगल सगुन, सुनि गुनि कहत निषादु।
मिटिहि सोच होइहि हरषु, पुनि परिनाम बिषादु ॥१४९॥

सेवक-बचन सत्य सब जाने। आस्रम-निकट जाइ नियराने।
सखा-समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लषन सघन बन ओटा।
भरत दीख प्रभु-आस्रम पावन। सकल-सु-मंगल-सदन सुहावन।
करत प्रबेस मिटे दुख-दावा। जनु जोगी परमारथ पावा।
देखे भरत लषन प्रभु आगे। पूछे बचन कहत अनुरागे।
सीस जटा कटि मुनि-पट बाँधे। तून कसे कर सर धनु काँधे।
बेदी पर मुनि-साधु-समाजू। सीय-सहित राजत रघुराजू।
बलकल बसन जटिल तनु स्यामा। जनु मुनि-बेष कीन्ह रति-कामा।
कर-कमलनि धनु-सायक फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत।

दो०—लसत मंजु मुनि-मंडली, मध्य सीय रघु-चंद।
ज्ञान-सभा जनु तनु धरे, भगति सच्चिदानंद ॥ १५० ॥

सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष-सोक-सुख-दुख-गन।
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं।
बचन सप्रेम लषन पहिचाने। करत प्रनाम भरत जिय जाने।
बंधु-सनेह सरस एहि ओरा। इत साहिब-सेवा बरजोरा।
मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई। सुकबि लषन-मन की गति भनई।
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू।
कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा।
उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा।

दो०—बरबस लियें उठाइ उर, लाये कृपा-निधान।
भरत राम की मिलनि लखि, बिसरे सबहिं अपान॥ १५१॥

मिलनि-प्रीति किमि जाइ बखानी। कबि-कुल-अगम करम मन बानी।
परम प्रेम-पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई।
कहहु सुप्रेम प्रगट को करई। केहि छाया कबि-मति अनुसरई।
कबिहि अरथ आखर बल सांचा। अनुहरि ताल गतिहि नट नाचा।
अगम सनेह भरत-रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि-हरि-हर को।
सो मैं कुमति कहउँ केहि भाँती। बाजु सुराग कि गाँडर-ताँती।
मिलनि बिलोकि भरत-रघुबर की। सुर-गन सभय धकधकी धरकी।
समुझाये सुर-गुरु जड़ जागे। बरषि प्रसून प्रसंसन लागे।

दो०—मिलि सप्रेम रिपुसूदनहि, केवट भेंटेउ राम।
भूरि भाय भेंटे भरत, लछिमन करत प्रनाम॥ १५२॥

भेंटेउ लषन ललकि लघु भाई। बहुरि निषाद लीन्ह उर लाई।
पुनि मुनि-गन दुहुँ भाइन्ह बंदे। अभिमत आसिष पाइ अनंदे।
सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय-पद-पदुम-परागा।
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाये। सिर कर-कमल परसि बैठाये।
सीय असीस दीन्हि मन माहीँ। मगन सनेह देह-सुधि नाहीँ।
सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच उर अपडर बीता।
कोउ कछु कहइ न कोउ कछु पूछा। प्रेम भरा मन निज गति छूछा।
तेहि अवसर केवट धीरज धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनाम करि।

दो०—नाथ साथ मुनि-नाथ के, मातु सकल पुर-लोग।
सेवक सेनप सचिव सब, आये बिकल बियोग॥ १५३॥

सील-सिंधु सुनि गुरु-आगवनू। सिय-समीप राखे रिपुदवनू।
चले सबेग राम तेहि काला। धीर-धरम-धुर दीन-दयाला।

गुरुहि देखि सानुज अनुरागे। दंड-प्रनाम करन प्रभु लागे।
मुनि-बर धाइ लिये उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई।
प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दंड-प्रनामू।
राम-सखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा।
राम-भगति मुद - मंगल - मूला। नभ सराहिं सुर बरिषहिं फूला।
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड़ बसिष्ठ-सम को जग माहीं।

दो०—जेहि लखि लषनहुँ तें अधिक, मिले मुदित मुनि-राउ।
सो सीता-पति-भजन को, प्रगट प्रताप-प्रभाउ ॥ १५४ ॥
भेंटे रघुबर मातु सब, करि प्रबोध परितोषु।
अंब ईस-आधीन जग, काहु न देइय दोषु ॥ १५५ ॥
महि-सुर मंत्री मातु गुरु, गने लोग लिये साथ।
पावन आस्रम गवनु किय, भरत लषन रघुनाथ ॥ १५६ ॥

सीय आइ मुनि-बर-पग लागी। उचित असीस लही मन-मांगी।
गुरु-पतिनिहिं मुनि-तियन्ह समेता। मिली प्रेम कहि जाइ न जेता।
बंदि बंदि पग सिय सबही के। आसिर-बचन लहे प्रिय जी के।
सासु सकल जब सीय निहारी। मूँदे नैन सहमि सुकुमारी।
परी बधिक-बस मनहुँ मराली। काह कीन्ह करतार कुचाली।
तिन्ह सिय निरखि निपट दुख पावा। सो सब सहिय जो दैव सहावा।
जनक-सुता तब उर धरि धीरा। नील-नलिन-लोयन भरि नीरा।
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई। तेहि अवसर करुना महि छाई।

दो०—लागि लागि पग सबनि सिय, भेंटति अति अनुराग।
हृदय असीसहिं प्रेम-बस, रहिहहु भरी सोहाग ॥१५७॥

बिकल सनेह सीय सब रानी। बैठन सबहिं कहेउ गुरु ज्ञानी।
कहि जग-गति मायिक मुनि-नाथा। कहे कछुक परमारथ-गाथा।

नृप कर सुर-पुर-गवन सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा।
मरन-हेतु निज नेह बिचारी। भे अति बिकल धीर-धुर-धारी।
कुलिस-कठोर सुनत कटु-बानी। बिलपत लषन सीय सब रानी।
सोक-बिकल अति सकल समाजू। मानहुँ राज अकाजेउ आजू।
मुनि-बर बहुरि राम समुझाये। सहित समाज सुरसरित न्हाये।
व्रत निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहे जल काहु न लीन्हा।
दो०—भोर भये रघुनंदनहिं, जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा - भगति - समेत प्रभु, सो सब सादर कीन्ह ॥१५८॥
करि पितु-क्रिया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक - तम - तरनी।
शुद्ध भये दुइ बासर बीते। बाले गुरु सन राम पिरीते।
नाथ लोग सब निपट दुखारी। कंद – मूल– फल–अंबु–अहारी।
सानुज भरत सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता।
सब समेत पुर धारिय पाऊ। आपु इहाँ अमरावति राऊ।
बहुत कहेउँ सब कियउँ ढिठाई। उचित होइ तस करिय गुसाईं।
बोले मुनि-बर बचन बिचारी। देस - काल - अवसर-अनुहारी।
सुनहु राम सरबज्ञ सुजाना। धरम–नीति–गुन–ज्ञान–निधाना।
दो०—सबके उर - अंतर बसहु, जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन-जननी-भरत-हित, होय सो कहिय उपाउ ॥१५९॥
आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपुन दाऊ।
सुनि मुनि-बचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ।
सब कर हित रुख राउरि राखे। आयसु किये मुदित फुर भाखे।
प्रथम जो आयसु मो कहँ होई। माथे मानि करउँ सिख सोई।
पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं। सो सब भाँति घटिहि सेवकाई।
कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाखा। भरत - सनेह - बिचार न राखा।

तेहि तें कहउँ बहोरि बहोरी। भरत-भगति-वस भइ मति मोरी।
मोरे जान भरत-रुचि राखो। जो कीजिय सो सुभ सिव साखी

दो०—भरत-विनय सादर सुनिय, करिय विचार बहोरि।
करब साधु-मत लोक-मत, नृप-नय निगम निचोरि ॥१६०॥

गुरु-अनुराग भरत पर देखी। राम-हृदय आनंद विसेखी।
भरतहिं धरम-धुरं-धर जानी। निज सेवक तन-मानस-बानी।
बोले गुरु-आयसु-अनुकूला। वचन मंजु मृदु मंगल-मूला।
नाथ सपथ पितु-चरन दोहाई। भयउ न भुवन भरत-सम भाई।
जे गुरु-पद-अंबुज-अनुरागी। ते लोकहुँ वेदहुँ बड़भागी।
राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू।
लखि लघु-बंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत-बड़ाई।
भरत कहहिं सोइ किये भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई।

दो०—तब मुनि बोले भरत सन, सब सँकोच तजि तात।
कृपा-सिंधु प्रिय-बंधु सन, कहहु हृदय कइ बात ॥१६१॥

सुनि मुनि-बचन राम-रुख पाई। गुरु साहिब अनुकूल अघाई।
लखि अपने सिर सब छरु-भारू। कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू।
पुलकि सरीर सभा भये ठाढ़े। नीरज-नयन नेह-जल बाढ़े।
कहब मोर मुनि-नाथ निबाहा। एहि तें अधिक कहउँ मैं काहा।
मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ।
मो पर कृपा सनेह विसेखी। खेलत खुनस न कबहूँ देखी।
सिसुपन तें परिहरेउ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू।
मैं प्रभु कृपा-रीति जिय जोही। हारेहु खेल जितावहिं मोही।

दो०—महूँ सनेह-सकोच-बस, सनमुख कहे न बैन।
दरसन तृपित न आजु लगि, प्रेम-पियासे नैन ॥१६२॥

बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीच जननी मिस पारा।
यहउ कहत मोहि आजु न सोभा। अपनी समुझि साधु सुचि को भा।
मातु मंद मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली।
फरइ कि कोदव बालि सुसाली। मुकता प्रसव कि संबुक ताली।
सपनेहु दोस कलेस न काहू। मोर अभाग उदधि-अवगाहू।
बिनु समुझें निज अघ परिपाकू। जारिउँ जाय जननि कहि काकू।
हृदय हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहि भल मोरा।
गुरु गोसाइँ साहिब सिय-रामू। लागत मोहि नीक परिनामू।

दो०—साधु सभा गुरु-प्रभु-निकट, कहउँ सुथल सति-भाउ।
प्रेम-प्रपंच कि झूठ फुर, जानहिं मुनि रघुराउ ॥१६३॥

भूपति-मरन प्रेम-पनु राखी। जननी कुमति जगत सब साखी।
देखि न जाहिं बिकल महतारी। जरहिं दुसह जर पुर-नर-नारी।
महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहेउँ सब सूला।
सुनि बन-गवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि-बेष लषन-सिय-साथा।
बिन पनिहिन्ह पयादेहि पायें। संकरु साखि रहेउँ एहि घायें।
बहुरि निहारि निषाद-सनेहू। कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू।
अब सब आँखिन्ह देखेउँ आई। जियत जीव जड़ सबइ सहाई।
जिन्हहिं निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं बिषम बिष तामस तीछी।

दो०—तेइ रघुनंदन लषन सिय, अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख, दैव सहावइ काहि ॥१६४॥

सुनि अति बिकल भरत-बर बानी। आरति-प्रीति-बिनय-नय-सानी।
सोक मगन सब सभा खभारू। मनहुँ कमल-बन परेउ तुषारू।
कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरत-प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी।
बोले उचित बचन रघुनंदू। दिन-कर-कुल-कैरव-बन-चंदू।

तात जाय जिन करहु गलानी। ईस-अधीन जीव-गति जानी।
तीनि काल त्रिभुवन मत मोरे। पुन्य-सलोक तात तर तोरे।
उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोक-परलोक नसाई।
दोष देहिं जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुरु-साधु-सभा नहिं सेई।

दो०—मिटिहहिं पाप-प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार।
लोक सुजस परलोक सुख, सुमिरत नाम तुम्हार॥१६५॥

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी।
तात कुतरक करहु जनि जाये। बैर प्रेम नहिं दुरइ दुराये।
मुनि गुनि निकट विहँग मृग जाहीं। बाधक बधिक बिलोकि पराहीं।
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना। मानुष-तनु गुन-ज्ञान-निधाना।
तात तुम्हहिं मैं जानउँ नीके। करउँ काह असमंजस जी के।
राखेउ राय सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ प्रेम-पन लागी।
तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू।
ता पर गुरु मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा।

दो०—मन प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करउँ सोइ आजु।
सत्य---संध---रघुबर---बचन, सुनि भा सुखी समाजु॥१६६॥
कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सब बिधि सीता-नाथ।
करि प्रनाम बोले भरत, जोरि जल-ज-जुग-हाथ॥१६७॥

कहउँ कहावउँ का अब स्वामी। कृपा-अंबु-निधि अंतरजामी।
गुरु प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मन-कलपित सूला।
अपडर डरेउँ न सोच समूले। रविहि न दोष देव दिसि भूले।
मोर अभाग मात-कुटिलाई। बिधि-गति विषम काल-कठिनाई।
पाउँ रोपि सब मिलि मोहि घाला। प्रनतपाल पन आपन पाला।
यह नइ रीति न राउरि होई। लोकहु बेद बिदित नहिं गोई।

जग अनभल भल एक गोसाईं । कहिय होइ भल कासु भलाई ।
देव देव-तरु-सरिस सुभाऊ । सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ ।

दो०—जाइ निकट पहचानि तरु, छाँह समनि सब सोच ।
मांगत अभिमत पाव जग, राउ रंक भल पोच ॥१६८॥

लखि सब बिधि गुरु-स्वामि-सनेहू । मिटेउ छोभ नहिँ मन संदेहू ।
अब करुनाकर कीजिय सोई । जन-हित प्रभु-चित छोभ न होई ।
जो सेवक साहिबहिं सँकोची । निज हित चहइ तासु मति पोची ।
सेवक-हित साहिब-सेवकाई । करइ सकल सुख लोभ बिहाई ।
स्वारथ नाथ फिरे सबही का । किये रजाइ कोटि बिधि नीका ।
यह स्वारथ-परमारथ-सारू । सकल सुकृत-फल सुगति-सिंगारू ।
देव एक बिनती सुनि मोरी । उचित होइ तस करब बहोरी ।
तिलक-समाजु साजि सब आना । करिय सुफल प्रभु जौं मन माना ।

दो०—सानुज पठइय मोहिं बन, कीजिय सबहिं सनाथ ।
नतरु फेरियहि बंधु दोउ, नाथ चलउँ मैं साथ ॥१६९॥

न तरु जाहिं बन तीनिउँ भाई । बहुरिय सीय-सहित रघुराई ।
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई । करुना-सागर कीजिय सोई ।
देव दीन्ह सब मोहि सिर भारू । मोरे नीति न धरम बिचारू ।
कहउँ बचन सब स्वारथ-हेतू । रहत न आरत के चित चेतू ।
उतर देइ सुनि स्वामि-रजाई । सो सेवक लखि लाज लजाई ।
अस मैं अवगुन-उदधि-अगाधू । स्वामि-सनेह सराहत साधू ।
अब कृपाल मोहि सो मत भावा । सकुच स्वामि मन जाइ न पावा ।
प्रभु-पद-सपथ कहउँ सति-भाऊ । जग-मंगल-हित एक उपाऊ ।

दो०—प्रभु प्रसन्न-मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देब ।
सो सिर धरि धरि करिहि सब, मिटिहि अनट अवरेब ॥१७०॥

प्रेम-मगन तेहि समय सब, सुनि आवत मिथिलेसु ।
सहित सभा संभ्रम उठेउ, रवि-कुल-कमल-दिनेसु ॥१७१॥

भाइ - सचिव-गुरु-पुरजन - साथा । आगे गवन कीन्ह रघुनाथा ।
गिरि-बर दीख जनक-पति जबहीं । करि प्रनाम रथ त्यागेउ तबहीं ।
राम--दरस -- लालसा -- उछाहू । पथ-स्रम लेस कलेस न काहू ।
मन तहँ जहँ रघुबर-बैदेही । बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही ।
आवत जनक चले एहि भाँती । सहित समाज प्रेम-मति-माँती ।
आये निकट देखि अनुरागे । सादर मिलन परसपर लागे ।
लगे जनक मुनि-जन-पद बंदन । रिषिन्ह प्रनामु कीन्ह रघु-नंदन ।
भाइन्ह सहित राम मिलि राजहिँ । चले लेवाइ समेत समाजहिँ ।

दो०—आस्रम सागर साँतरस, पूरन पावन पाथ ।
सेन मनहुँ करुना-सरित, लियें जाहिँ रघुनाथ ॥ १७२ ॥

बोरति ज्ञान-बिराग-करारे । बचन ससोक मिलत नद नारे ।
सोच-उसास समीर-तरंगा । धीरज तट-तरु-बर कर भंगा ।
बिषम बिषाद तोरावति धारा । भय-भ्रम भँवर अवर्त अपारा ।
केवट बुध बिद्या बड़ि नावा । सकहिँ न खेइ एक नहिँ आवा ।
बनचर कोल किरात बेचारे । थके बिलोकि पथिक हिय हारे ।
आस्रम उदधि मिली जब जाई । मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई ।
सोक - बिकल दोउ राज-समाजा । रहा न ज्ञान न धीरज लाजा ।
भूप--रूप--गुन--सील सराही । रोवहिँ सोक-सिंधु अवगाही ।

छंद—अवगाहि सोक-समुद्र सोचहिँ नारि नर व्याकुल महा ।
देइ दोष सकल सरोष बोलहिं बाम बिधि कीन्हो कहा ।
सुर सिद्ध तापस जोगि-जन मुनि देखि दसा बिदेह की ।
तुलसी न समरथ कोउ जो तरि सकइ सरित सनेह की ॥

सो०—किये अमित उपदेस, जहँ तहँ लोगन्ह मुनि-बरन्ह।
धीरज धरिय नरेस, कहेउ बसिष्ठ विदेह सन॥ १७३॥

सभा सकुच-बस भरत निहारी। राम-बंधु धरि धीरज भारी।
कुसमउ देखि सनेह सँभारा। बढ़त विंधि जिमि घटज निवारा।
सोक कनक-लोचन मति छोनी। हरी बिमल-गुन-गन जग जोनी।
भरत-विवेक बराह बिसाला। अनायास उघरी तेहि काला।
करि प्रनाम सब कहँ कर जोरे। राम राउ गुरु साधु निहोरे।
छमब आजु अति अनुचित मोरा। कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा।
हिय सुमिरी सारदा सुहाई। मानस तें मुख-पंकज आई।
बिमल बिवेक धरम नय साली। भरत-भारती मंजु मराली।

दो०—निरखि बिवेक बिलोचनन्हि, सिथिल सनेह समाजु।
करि प्रनाम बोले भरत, सुमिरि सीय रघुराजु॥१७४॥

प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी। पूज्य परम-हित अंतरजामी।
सरल सुसाहिब सील-निधानू। प्रनत-पाल सर्बज्ञ सुजानू।
समरथ सरनागत हितकारी। गुन-गाहक अवगुन-अघ-हारी।
स्वामि गोसाइँहिं सरिस गोसाईं। मोहि समान मैं साइँ दोहाई।
प्रभु-पितु-बचन मोह-बस पेली। आयेउँ इहाँ समाज सकेली।
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू। अमिय अमर-पद माहुर मीचू।
राम-रजाइ मेट मन माहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं।
सो मैं सब बिधि कीन्हि ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई।

दो०—कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषन-सरिस, सुजस चारु चहुँ ओर॥ १७५॥

राउरि-रीति सुबानि बड़ाई। जगत बिदित निगमागम गाई।
क्रूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी।

तेउ सुनि सरन सामुहे आये । सकृत प्रनाम किये अपनाये ।
देखि दोष कबहुँ न उर आने । सुनि गुन साधु-समाज बखाने ।
को साहिब सेवकहि नेवाजी । आपु समान साज सब साजी ।
निज करतूति न समुझिय सपने । सेवक सकुच सोच उर अपने ।
सो गोसाईं नहिं दूसर कोपी । भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी ।
पसु नाचत सुक पाठ प्रवीना । गुन-गति नट पाठक आधीना ।

दो०—इमि सुधारि सनमानि जन, किये साधु सिर-मोर ।
को कृपाल बिनु पालिहइ, बिरदावलि बरजोर ॥ १७६ ॥

सोक सनेह कि बाल सुभायें । आयउँ लाइ रजायसु बायें ।
तबहुँ कृपालु हेरि निज ओरा । सबहि भाँति भल मानेउ मोरा ।
देखेउँ पाय सु-मंगल-मूला । जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला ।
बड़े समाज बिलोकेउँ भागू । बड़ी चूक साहिब - अनुरागू ।
कृपा अनुग्रह अंग अघाई । कीन्हि कृपा-निधि सब अधिकाई ।
राखा मोर दुलार गोसाईं । अपने सील सुभाय भलाई ।
नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई । स्वामि समाज सकोच बिहाई ।
अबिनय बिनय जथारुचि बानी । छमहिं देव अति आरति जानी ।

दो०—सुहृद सुजान सुसाहिबहि, बहुत कहब बड़ि खोरि ।
आयसु देइय देव अब, सबइ सुधारिय मोरि ॥ १७७ ॥

प्रभु–पद–पदुम–पराग दोहाई । सत्य सुकृत सुख-सीवँ सुहाई ।
सो करि कहउँ हिये अपने की । रुचि जागत सोवत सपने की ।
सहज सनेह स्वामि-सेवकाई । स्वारथ छल फल चारि बिहाई ।
अज्ञा-सम न सुसाहिब-सेवा । सो प्रसाद जन पावइ देवा ।
अस कहि प्रेम-बिबस भये भारी । पुलक सरीर बिलोचन बारी ।
प्रभु–पद–कमल गहे अकुलाई । समउ सनेह न सो कहि जाई ।

कृपा-सिंधु सनमानि सुबानी । बैठाये समीप गहि पानी ।
भरत-विनय सुनि देखि सुभाऊ । सिथिल सनेह सभा रघुराऊ ।
देखि दयाल दसा सबही की । राम सुजान जानि जन जी की ।
धरम-धुरीन धीर नयनागर । सत्य सनेह सील-सुख-सागर ।
देस काल लखि समय समाजू । नीति-प्रीति-पालक रघुराजू ।
बोले बचन बानि सरबस से । हित परिनाम सुनत ससि-रस से ।
तात भरत तुम्ह धरम-धुरीना । लोक वेद विद परम प्रवीना ।
दो०—करम बचन मानस बिमल, तुम्ह समान तुम्ह तात ।
गुरु-समाज लघु-बंधु-गुन, कुसमय किमि कहि जात ॥१७८॥
जानहु तात तरनि-कुल-रीती । सत्य-संध पितु कीरति प्रीती ।
समउ समाज लाज गुरु-जन की । उदासीन हित अनहित मन की ।
तुम्हहिं बिदित सबही कर करमू । आपन मोर परमहित धरमू ।
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा । तदपि कहउँ अवसर अनुसारा ।
तात तात बिनु बात हमारी । केवल गुरु-कुल-कृपा सँभारी ।
न तरु प्रजा पुर-जन परिवारू । हमहिं सहित सब होत खुआरू ।
जौं बिनु अवसर अथव दिनेसू । जग केहि कहहु न होइ कलेसू ।
तस उतपात तात बिधि कीन्हा । मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा ।
दो०—राम-काज सब लाज पति, धरम धरनि धन धाम ।
गुरु-प्रभाउ पालिहि सबहिं, भल होइहि परिनाम ॥१७९॥
सहित समाज तुम्हार हमारा । घर बन गुरु-प्रसाद रखवारा ।
मातु-पिता-गुरु-स्वामि-निदेसू । सकल धरम धरनी-धर सेसू ।
सो तुम्ह करहु करावहु मोहू । तात तरनि-कुल-पालक होहू ।
साधक एक सकल-सिधि-देनी । कीरति सुगति भूतिमय बेनी ।
सो विचार सहि संकट भारी । करहु प्रजा परिवार सुखारी ।

बाढ़ी बिपति सबहि मोहि भाई। तुम्हहिं अवधि भरि बड़ि कठिनाई।
जानि तुम्हहिं मृदु कहहुँ कठोरा। कुसमय तात न अनुचित मोरा।
होहिं कुठाय सुबंधु सहाये। ओड़ियहि हाथ असनि के घाये।

दो०—सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिब होइ।
तुलसी प्रीति की रीति सुनि, सुकबि सराहहिं सोइ ॥ १८० ॥

सभा सकल सुनि रघुबर-बानी। प्रेम-पयोधि-अमिय जनु सानी।
सिथिल समाज सनेह समाधी। देखि दसा चुप सारद साधी।
भरतहिं भयउ परम संतोषू। सनमुख स्वामि बिमुख दुख दोषू।
मुख प्रसन्न मन मिटा बिषादू। भा जनु गूँगेहु गिरा-प्रसादू।
कीन्ह सप्रेम प्रणाम बहोरी। बोले पानि-पंकरुह जोरी।
नाथ भयउ सुख साथ गये को। लहेउँ लाहु जग जनम भये को।
अब कृपाल जस आयसु होई। करउँ सीस धरि सादर सोई।
सो अवलंब देव मोहिं देई। अवधि पारु पावउँ जेहि सेई।

दो०—देव देव-अभिषेक - हित, गुरु-अनुसासन पाइ।
आनेउँ सब तीरथ-सलिल, तेहि कहँ काह रजाइ ॥१८१॥

एक मनोरथ बड़ मन माहीं। सभय सकोच जात कहि नाहीं।
कहहु तात प्रभु-आयसु पाई। बोले बानि सनेह सुहाई।
चित्रकूट मुनि - थल तीरथ बन। खग मृग सरि सर निर्झर गिरि-गन।
प्रभु-पद-अंकित अवनि बिसेखी। आयसु होइ त आवउँ देखी।
अवसि अत्रि-आयसु सिर धरहू। तात बिगत-भय कानन चरहू।
मुनि-प्रसाद बन मंगल-दाता। पावन परम सुहावन भ्राता।
रिषि-नायक जहँ आयसु देहीं। राखेहु तीरथ-जल थल तेहीं।
सुनि प्रभु-बचन भरत सुख पावा। मुनि-पद-कमल मुदित सिर नावा।

दो०—अत्रि कहेउ तब भरत सन, सैल समीप सुकूप ॥
राखिय तीरथ तोय तहँ, पावन अमिय अनूप ॥१८२॥
देखे थल तीरथ सकल, भरत पाँच दिन मांझ ।
कहत सुनत हरि-हर सुजस, गयउ दिवस भइ सांझ ॥१८३॥

भोर न्हाइ सब जुरा समाजू। भरत भूमि-सुर तिरहुति-राजू ।
भल दिन आजु जानि मन माहीं। राम कृपालु कहत सकुचाहीं।
गुरु नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी।
सील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न राम-सम स्वामि सँकोची ।
भरत सुजान राम-रुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेखी।
करि दंडवत कहत कर जोरी। राखी नाथ सकल रुचि मोरी।
मोहि लगि सबहिँ सहेउ संतापू। बहुत भाँति दुख पावा आपू।
अब गोसाईं मोहि देउ रजाई। सेवउँ अवध अवधि भरि जाई।

दो०—जेहि उपाय पुनि पाय जन, देखइ दीन-दयाल ।
सो सिख देइय अवधि लगि, कोसल-पाल कृपाल ॥१८४॥

पुर-जन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेह सगाईं।
राउर बदि भल भव-दुख-दाहू। प्रभु बिनु बादि परम-पद-लाहू।
स्वामि सुजान जानि सब ही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की।
प्रनतपालु पालहिँ सब काहू। देव दुहूँ दिसि ओर निबाहू।
अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो। किये बिचारु न सोच खरो सो।
आरति मोर नाथ कर छोहू। दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठ हठि मोहू।
यह बड़ दोष दूरि करि स्वामी। तजि सकोच सिखइय अनुगामी।
भरत बिनय सुनि सबहि प्रसंसी। खीर-नीर-बिबरन-गति हंसी।

दो०—दीनबंधु सुनि बंधु के, बचन दीन छल-हीन ।
देस--काल-अवसर-सरिस, बोले राम प्रबीन ॥१८५॥



चित्रकूट में राम का भरत को विदा करना।

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरुहिं नृपहिं घर बन की।
माथे पर गुरु-मुनि मिथिलेसू। हमहिं तुम्हहिं सपनेहुँ न कलेसू।
मोर तुम्हार परम पुरुषारथ। स्वारथ सुजस धरम परमारथ।
पितु-आयसु पालिय दुहुँ भाई। लोक वेद भल भूप भलाई।
गुरु-पितु-मातु-स्वामि-सिख पाले। चलेहु कु-मग पग परहि न खाले।
अस विचारि सब सोच विहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई।
देस कोस पुर-जन परिवारू। गुरु-पद-रजहिं लाग छरु-भारू।
तुम्ह मुनि-मातु-सचिव-सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी।

दो०—मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान कहँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित बिबेक॥१८६॥

राज-धरम सरबसु एतनोई। जिमि मन माँह मनोरथ गोई।
बंधु-प्रबोध कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोष न साँती।
भरत सील गुरु सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू।
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं।
चरन-पीठ करुना-निधान के। जनु जुग जामिक प्रजा-प्रान के।
संपुट भरत-सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव-जतन के।
कुल-कपाट कर कुसल करम के। बिमल-नयन सेवा-सु-धरम के।
भरत मुदित अवलंब लहे तें। अस सुख जस सिय राम रहे तें।

दो०—माँगेउ बिदा प्रनामु करि, राम लिये उर लाइ।
लोग उचाटे अमर-पति, कुटिल कुअवसर पाइ॥१८७॥

भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम-प्रेम-रस कहि न परत सो।
तन मन बचन उमग अनुरागा। धीर-धुरंधर धीरज त्यागा।
बारिज लोचन मोचत बारी। देखि दसा सुर-सभा दुखारी।
भेंटि भरत रघुबर समुझाये। पुनि रिपुदवन हरषि हिय लाये।

सेवक सचिव भरत-रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई।
सुनि दारुन दुख दुहूँ समाजा। लगे चलन के साजन साजा।
प्रभु-पद-पदुम बंदि दोउ भाई। चले सीस धरि राम-रजाई।
मुनि तापस बन-देव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी।

दो०—लषनहिं भेंटि प्रनाम करि, सिर धरि सिय-पद-धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि, सकल-सुमंगल-मूरि ॥१८८॥
भरत-मातु-पद-बंदि प्रभु, सुचि सनेह मिलि भेंटि।
बिदा कीन्हि सजि पालकी, सकुच सोच सब मेंटि ॥१८९॥
गुरु-गुरु-तिय-पद बंदि प्रभु, सीता लषन समेत।
फिरे हरष बिसमय सहित, आये परन-निकेत ॥१९०॥
सानुज सीय समेत प्रभु, राजत परन-कुटीर।
भगति ज्ञान बैराग जनु, सोहत धरे सरीर ॥१९१॥

मुनि महि-सुर गुरु भरत भुआलू। राम-बिरह सब साज बिहालू।
प्रभु-गुन-ग्राम गुनत मन माहीं। सब चुपचाप चले मग जाहीं।
जमुना उतरि पार सब भयऊ। सो बासर बिनु भोजन गयऊ।
उतरि देवसरि दूसर बासू। राम-सखा सब कीन्ह सुपासू।
सई उतरि गोमती नहाये। चौथे दिवस अवधपुर आये।
जनक रहे पुर बासर चारी। राज-काज सब साज सँभारी।
सौंपि सचिव गुरु भरतहि राजू। तिरहुति चले साजि सब साजू।
नगर-नारि-नर गुरु-सिख मानी। बसे सुखेन राम-रजधानी।

दो०—राम-दरस लगि लोग सब, करत नेम उपवास।
तजि तजि भूषन भोग सब, जियत अवधि की आस ॥१९२॥

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज निज काज पाइ सिख ओधे।
पुनि सिख दीन्हि बोलि लघु भाई। सौंपी सकल मातु-सेवकाई।

परिजन पुरजन प्रजा बोलाये। समाधान करि सुबस बसाये।
सानुज गे गुरु-गेह बहोरी। करि दंडवत कहत कर जोरी।
आयसु होइ त रहउँ सनेमा। बोले मुनि तन पुलकि सप्रेमा।
समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम-सारु जग होइहि सोई।
राम-मातु गुरु-पद सिरु नाई। प्रभु - पद - पीठ - रजायसु पाई।
नंदि-गाँव करि परन-कुटीरा। कीन्ह निवास धरम-धुर-धीरा।

दो०—नित पूजत प्रभु-पावँरी, प्रीति न हृदय समाति।
मांगि मांगि आयसु करत, राज-काज बहु भाँति ॥१९३॥

अरण्य कांड ।

सो०—उमा रामगुन गुन गूढ़, पंडित मुनि पावहिं बिरति ।
पावहिं मोह विमूढ़, जे हरि-विमुख न धरम-रति ॥१॥

पुर-नर-भरत-प्रीति मैं गाई । मति-अनुरूप अनूप सुहाई ।
अब प्रभु-चरित सुनहु अति पावन । करत जे बन सुर-नर-मुनि-भावन ।
रघुपति चित्रकूट बसि नाना । चरित किये स्रुति सुधा-समाना ।
बहुरि राम अस मन अनुमाना । होइहिं भीर सबहिं मोहि जाना ।
सकल मुनिन्ह सन विदा कराई । सीता-सहित चले दोउ भाई ।
अत्रि के आस्रम जब प्रभु गयऊ । सुनत महामुनि हरषित भयऊ ।
पुलकित गात अत्रि उठि धाये । देखि रामु आतुर चलि आये ।
करत दंडवत मुनि उर लाये । प्रेम-बारि दोउ जन अन्हवाये ।
देखि राम-छबि नयन जुड़ाने । सादर निज आस्रम तब आने ।
करि पूजा कहि बचन सुहाये । दिये मूल फल प्रभु मन भाये ।

दो०—बिनती करि मुनि नाइ सिरु, कह कर जोरि बहोरि ।
चरन-सरोरुह नाथ जनि, कबहुँ तजइ मति मोर ॥२॥

अनसूया के पद गहि सीता । मिली बहोरि सुसील विनीता ।
रिषि-पतिनी-मन सुख अधिकाई । आसिष देइ निकट बैठाई ।
दिव्य बसन भूषन पहिराये । जे नित नूतन अमल सुहाये ।
कह रिषि-बधू सरस मृदु बानी । नारि-धरम कछु ब्याज बखानी ।
मातु - पिता - भ्राता - हित - कारी । मित-प्रद सब सुनु राज-कुमारी ।
अमित-दानि भर्त्ता वैदेही । अधम सो नारि जो सेव न तेही ।

धीरजु धरम मित्र अरु नारी । आपद-काल परखियहि चारी ।
वृद्ध रोग-बस जड़ धन-हीना । अंध बधिर क्रोधी अति दीना ।
ऐसेहु पति कर किये अपमाना । नारि पाव जमपुर दुख नाना ।
एकइ धरम एक व्रत नेमा । काय बचन मन पति-पद-प्रेमा ।
जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं । वेद पुरान संत सब कहहीं ।

दो०—उत्तम मध्यम नीच लघु, सकल कहउँ समुझाइ ।
आगे सुनहिँ ते भव तरहिँ, सुनहु सीय चित लाइ ॥ ३ ॥

उत्तम के अस बस मन माहीं । सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं ।
मध्यम पर-पति देखइ कैसे । भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ।
धरम बिचारि समुझि कुल रहई । सो निकृष्ट तिय स्रुति अस कहई ।
बिनु अवसर भय तें रह जोई । जानेहु अधम नारि जग सोई ।
पति-बंचक पर-पति-रति करई । रौरव नरक कलप-सत परई ।
छन सुख लागि जन्म सत कोटी । दुख न समझ तेहि सम को खोटी ।
बिनु स्रम नारि परम गति लहई । पति-व्रत धरम छाड़ि छल गहई ।
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई । बिधवा होइ पाइ तरुनाई ।

सो०—सहज अपावनि नारि, पति सेवत सुभ गति लहइ ।
जसु गावत स्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय ॥४॥
सुनु सीता तव नाम, सुमिरि नारि पतिव्रत करहिँ ।
तोहि प्रान-प्रिय राम, कहेउँ कथा संसार-हित ॥ ५ ॥

सुनि जानकी परम सुख पावा । सादर तासु चरन सिरु नावा ।
तब मुनि सन कह कृपा-निधाना । आयसु होइ जाउँ बन आना ।
मुनि-पद-कमल नाइ करि सीसा । चले बनहिँ सुर-नर-मुनि-ईसा ।
आगे राम अनुज पुनि पाछे । मुनि-बर-बेष बने अति आछे ।
उभय बीच सिय सोहइ कैसी । ब्रह्म जीव बिच माया जैसी ।

सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचान देहिँ वर बाटा।
जहँ जहँ जाहिँ देव रघुराया। करहिँ मेघ तहँ तहँ नभ छाया।
पुनि आये जहँ मुनि सरभंगा। सुंदर अनुज जानकी संगा।

दो०—देखि राम-मुख-पंकज, मुनि-बर-लोचन-भृंग।
सादर पान करत अति, धन्य जन्म सरभंग॥ ६॥

कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला। शंकर-मानस-राज-मराला।
जात रहेउँ बिरंचि के धामा। सुनेउँ स्रवन बन अइहहिँ रामा।
चितवत पंथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती।
नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना।
सो कछु देव न मोहि निहोरा। निज पन राखेहु जन-मन-चोरा।
तब लगि रहहु दीन-हित लागी। जब लगि मिलउँ तुम्हहिँ तनु त्यागी।
जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ भगति-बर लीन्हा।
एहि बिधि सर रचि मुनि सरभंगा। बैठे हृदय छाड़ि सब संगा।

दो०—सीता-अनुज-समेत प्रभु, नील जलद तनु स्याम।
मम हिय बसहु निरंतर, सगुन-रूप श्रीराम॥ ७॥

अस कहि जोग-अगिनि तनु जारा। राम-कृपा बैकुंठ सिधारा।
ता तेँ मुनि हरि-लीन न भयऊ। प्रथमहिँ भेद भगति-बर लयऊ।
रिषि-निकाय मुनि-बर-गति देखी। सुखी भये निज हृदय बिसेखी।
अस्तुति करहिँ सकल मुनि-बृंदा। जयति प्रनत-हित करुना-कंदा।
पुनि रघुनाथ चले बन आगे। मुनि-बर-बृंद बिपुल सँग लागे।
अस्थि-समूह देखि रघुराया। पूछा मुनिन्ह लागि अति दाया।
जानतहू पूछिय कस स्वामी। सबदरसी तुम अंतरजामी।
निसि-चर-निकर सकल मुनि खाये। सुनि रघुनाथ नयन जल छाये।

दो०—निसि-चर-हीन करउँ महि, भुज उठाइ पन कीन्ह ।
सकल मुनिन्ह के आस्रमहि, जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥ ८ ॥

मुनि अगस्त्य कर सिष्य सुजाना । नाम सुतीच्छन रति भगवाना ।
प्रभु-आगवनु स्रवन सुनि पावा । करत मनोरथ आतुर धावा ।
निर्भर प्रेम मगन मुनि ज्ञानी । कहि न जाय सो दसा भवानी ।
दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिँ सूझा । को मैं चलेउँ कहाँ नहिँ बूझा ।
कबहुँक फिर पाछे पुनि जाई । कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई ।
अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई । प्रभु देखहिँ तरु-ओट लुकाई ।
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा । प्रगटे हृदय हरन भव-भीरा ।
मुनि मग माँझ अचल होइ बैसा । पुलक सरीर पनस फल जैसा ।
तब रघुनाथ निकट चलि आये । देखि दसा निज जन मन भाये ।
मुनिहिँ राम बहु भाँति जगावा । जाग न ध्यान-जनित सुख पावा ।
भूप-रूप तब राम दुरावा । हृदय चतुर्भुज - रूप देखावा ।
मुनि अकुलाइ उठा पुनि कैसे । बिकल हीन-मनि-फनि-बर जैसे ।
आगे देखि राम-तनु स्यामा । सीता-अनुज-सहित सुख-धामा ।
परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी । प्रेम-मगन मुनि-बर बड़ भागी ।
भुज-बिसाल गहि लिये उठाई । परम प्रीति राखे उर लाई ।
मुनिहिँ मिलत अस सोह कृपाला । कनक-तरुहि जनु भेंट तमाला ।
राम-बदन बिलोकि मुनि ठाढ़ा । मानहुँ चित्र माँझ लिखि काढ़ा ।

दो०—तब मुनि हृदय धीर धरि, गहि पद बारहिँ बार ।
निज आस्रम प्रभु आनि करि, पूजा बिबिध प्रकार ॥९॥
अनुज-जानकी-सहित प्रभु, चाप-बान-धर राम ।
मम हिय गगन इंदु इव, बसहु सदा निःकाम ॥१०॥

एवमस्तु कहि रमा-निवासा । हरषि चले कुंभज रिषि पासा ।

बहुत दिवस गुरु-दर्शन पायें। भये मोहिँ एहि आश्रम आये।
अब प्रभु संग जाउँ गुरु पाहीं। तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाहीं।
देखि कृपा-निधि मुनि-चतुराई। लियें संग बिहँसे दोउ भाई।
पंथ कहत निज भगति अनूपा। मुनि-आश्रम पहुँचे सुर-भूपा।
तुरत सुतीच्छन गुरु पहिँ गएऊ। करि दंडवत कहत अस भएऊ।
नाथ कोसला-धीस-कुमारा। आयें मिलन जगत-आधारा।
राम अनुज समेत बैदेही। निसि दिनु देव जपत हहु जेही।
सुनत अगस्त तुरत उठि धाये। हरि बिलोकि लोचन जल छाये।
मुनि-पद-कमल परे दोउ भाई। रिषि अति प्रीति लिये उर लाई।
सादर कुसल पूछि मुनि ज्ञानी। आसन पर बैठारे आनी।
पुनि करि बहु प्रकार प्रभु–पूजा। मोहि सम भागवंत नहि दूजा।
जहँ लगि रहे अपर मुनि-बृंदा। हरषे सब बिलोकि सुख-कंदा।

दो०—मुनि-समूह महँ बैठे, सनमुख सब की ओर।
सरद-इंदु तन चितवत, मानहुँ निकर चकोर॥ ११॥

तब रघुबीर कहा मुनि पाहीं। तुम्ह सन प्रभु दुराउ कछु नाहीं।
तुम्ह जानहु जेहि कारन आयउँ। ता तें तात न कहि समुझायउँ।
अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारउँ मुनि-द्रोही।
है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचबटी तेहि नाऊँ।
बास करहु तहँ रघु-कुल-राया। कीजिय सकल मुनिन्ह पर दाया।
चले राम मुनि-आयसु पाई। तुरतहिँ पंचबटी नियराई।

दो०—गीध-राज सों भेंट भइ, बहु बिधि प्रीति दढ़ाइ।
गोदावरी निकट प्रभु, रहे परन-गृह छाइ॥ १२॥

जब तें राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भये मुनि बीती त्रासा।
गिरि बन नदी ताल छवि छाये। दिन दिन प्रति अति होहिँ सुहाये।

खग-मृग-बृंद अनंदित रहहीं । मधुप मधुर गुंजत छबि लहहीं ।
सो बन बरनि न सक अहि-राजा । जहाँ प्रगट रघुबीर बिराजा ।
बसत गये तहँ कछु दिन बीती । कहत बिराग ज्ञान गुन नीती ।
सूपनखा रावन कै बहिनी । दुष्ट-हृदय दारुन जसि अहिनी ।
पंचबटी सो गइ एक बारा । देखि बिकल भइ जुगल कुमारा ।
भ्राता पिता पुत्र उरगारी । पुरुष मनोहर निरखत नारी ।
होइ बिकल सक मनहिं न रोकी । जिमि रबि-मनि द्रव-रबिहिं बिलोकी ।
रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई । बोली बचन बहुत मुसुकाई ।
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी । यह सँजोग बिधि रचा बिचारी ।
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं । देखिउँ खोजि लोक तिहुँ नाहीं ।
ता तें अब लगि रहिउँ कुमारी । मन माना कछु तुम्हहिं निहारी ।
सीतहि चितइ कही प्रभु बाता । अहइ कुमार मोर लघु भ्राता ।
गइ लछिमन रिपु-भगिनी जानी । प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी ।
सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा । पराधीन नहिं तोर सुपासा ।
प्रभु समर्थ कोसल-पुर-राजा । जो कछु करहिं उन्हहिं सब छाजा ।
पुनि फिरि राम निकट सो आई । प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई ।
लछिमन कहा तोहि सो बरई । जो तृन तोरि लाज परिहरई ।
तब खिसिआनि राम पहिं गई । रूप भयंकर प्रगटत भई ।
सीतहि सभय देखि रघुराई । कहा अनुज सन सैन बुझाई ।

दो०—लछिमन अति लाघव सों, नाक कान बिनु कीन्हि ।
ता के कर रावन कहँ, मनहुँ चुनौती दीन्हि ॥१३॥

नाक कान बिनु भइ बिकरारा । जनु स्रव सैल गेरु कै धारा ।
खर-दूषन पहिं गइ बिलपाता । धिग धिग तव बल पौरुष भ्राता ।
तेहि पूछा सब कहेसि बुझाई । जातुधान सुनि सेन बनाई ।

धाए निसिचर बरन-बरूथा। जनु सपच्छ कज्जल-गिरि-जूथा।
नाना बाहन नानाकारा। नानायुध-धर घोर अपारा।
सूपनखा आगे करि लीन्ही। असुभ-रूप स्रुति-नासा-हीनी।
धूरि पूरि नभ-मंडल रहा। राम बोलाइ अनुज सन कहा।
लेइ जानकिहि जाहु गिरि-कंदर। आवा निसि-चर-कटकु भयंकर।
रहेहु सजुग सुनि प्रभु कै बानी। चले सहित श्री सर-धनु-पानी।
देखि राम रिपुदल चलि आवा। बिहँसि कठिन कोदंड चढ़ावा।

छंद—कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जटजूट बाँधत सोह क्यौं।
मरकत सैल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यौं।
कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिख सुधारि कै।
चितवत मनहुँ मृग-राज प्रभु गज-राज-घटा निहारि कै॥

सो०—आइ गये बगमेल, धरहु धरहु धावत सुभट।
जथा बिलोकि अकेल, बाल-रबिहिं घेरत दनुज॥१४॥

दो०—सावधान होइ धाये, जानि सबल आराति।
लागे बरषन राम पर, अस्त्र सस्त्र बहु भांति॥१५॥
तिन्ह के आयुध तिल सम, करि काटे रघुबीर।
तानि सरासन स्रवन लगि, पुनि छाड़े निज तीर॥१६॥

तो० छं०—तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल॥
कोपेउ समर श्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम॥
अवलोकि खरतर तीर। मुरि चले निसिचर बीर॥
भये क्रुद्ध तीनिउ भाइ। जो भागि रन तें जाइ॥
तेहि बधब हम निज पानि। फिरे मरन मन महुँ ठानि॥
आयुध अनेक प्रकार। सनमुख तें करहिं प्रहार॥
रिपु परम कोपे जानि। प्रभु धनुष सर संधानि॥

छाड़े विपुल नाराच। लगे कटन विकट पिसाच॥
उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि परन॥
चिक्करत लागत बान। धर परत कु-धर-समान॥
भट कटत तन सत-खंड। पुनि उठत करि पाखंड॥
नभ उड़त बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुंड॥
खग कंक काक सृगाल। कटकटहिं कठिन कराल॥

छंद—रघु-बीर-बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा।
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धरु धरु धरु करहिं भयंकर गिरा।
मारे पछारे उर बिदारे विपुल भट कहँरत परे।
अवलोकि निज दल विकट भट तिसिरादि खर दूषन फिरे॥
सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहिं बारहीं।
करि कोप श्री-रघु-बीर पर अगनित निसाचर डारहीं।
प्रभु निमिष महुँ रिपु-सर निवारि प्रचारि डारे सायका।
दस दस बिसिख उर माँझ मारे सकल निसि-चर-नायका॥
महि परत पुनि उठि भिरत मरत न करत माया अति घनी।
सुर डरत चौदह-सहस प्रेत बिलोकि एक अवध-धनी।
सुर मुनि सभय प्रभु देखि माया-नाथ अति कौतुक करयो।
देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपु-दल लरि मरयो॥

दो०—राम राम कहि तनु तजहिं, पावहिं पद निर्बान।
करि उपाय रिपु मारे, छन महुँ कृपा-निधान॥१७॥

जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सब के भय बीते।
तब लछिमनु सीतहिं लेइ आये। प्रभु पद परत हरषि उर लाये।
सीता चितव स्याम मृदु गाता। परम प्रेम लोचन न अघाता।
धुआँ देखि खर-दूषन केरा। जाइ सुपनखा रावनु प्रेरा।

बोली बचन क्रोध करि भारी। देस कोस कै सुरति बिसारी।
करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती।

दो०—सभा माँझ परि व्याकुल, बहु प्रकार कह रोइ।
तोहि जियत दस-कंधर, मोरि कि असि गति होइ ॥१८॥
सूपनखहि समुझाइ करि, बल बोलेसि बहु भाँति।
गयेउ भवन अति सोच-बस, नींद परइ नहिं राति ॥१९॥

सुर नर असुर नाग खग माहीं। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं।
खर-दूषन मोहिं सम बलवंता। तिन्हहिं को मारइ बिनु भगवंता।
सुर-रंजन भंजन महि-भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा।
तौ मैं जाइ बयरु हठि करऊँ। प्रभु-सर प्रान तजे भव तरऊँ।
होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा।
जौं नर-रूप भूप-सुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ।
दस-मुख गयउ जहाँ मारीचा। नाइ माथ स्वारथ-रत नीचा।
नवनि नीच कै अति दुखदाई। जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई।
भय-दायक खल कै प्रिय बानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी।

दो०—करि पूजा मारीच तब, सादर पूछी बात।
कवन हेतु मन व्यग्र अति, अकसर आयहु तात ॥२०॥

दस-मुख सकल कथा तेहि आगे। कही सहित अभिमान अभागे।
होहु कपट-मृग तुम्ह छलकारी। जेहि बिधि हरि आनउँ नृप-नारी।
तेहि पुनि कहा सुनहु दस-सीसा। ते नर-रूप चरा-चर-ईसा।
ता सों तात बयरु नहिं कीजै। मारे मरिय जिआयें जीजै।
मुनि-मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर सर रघु-पति मोहि मारा।
सत जोजन आयउँ छन माहीं। तिन्ह सन बयरु किये भल नाहीं।

भइ मति कीट भृंग की नाईं। जहँ तहँ मैं देखउँ दोउ भाई।
जौं नर तात तदपि अति सूरा। तिन्हहिं बिराधि न आइहि पूरा।

दो०—जेहि ताड़का सुबाहु हति, खंडेउ हर-कोदंड।
खर दूषन तिसिरा बधेउ, मनुज कि अस बरिबंड ॥२१॥

जाहु भवन कुल-कुसल बिचारी। सुनत जरा दीन्हेसि बहु गारी।
गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा। कहु जग मोहि समान को जोधा।
तब मारीच हृदय अनुमाना। नवहि बिरोधे नहिं कल्याना।
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद्य बंदि कबि मानस-गुनी।
उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकेसि रघु-नायक-सरना।
उतरु देत मोहि बधब अभागे। कस न मरउँ रघु-पति-सर लागे।
अस जिय जानि दसानन संगा। चला राम-पद-प्रेम अभंगा।
मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहउँ परम सनेही।

दो०—मम पाछे धर धावत, धरे सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहिं बिलोकिहउँ, धन्य न मो सम आन ॥२२॥

तेहि बन निकट दसानन गयऊ। तब मारीच कपट-मृग भयऊ॥
अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक-देह मनि-रचित बनाई।
सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेखा।
सुनहु देव रघुबीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुंदर छाला।
सत्य-संध प्रभु बध करि एही। आनहु चर्म कहत बैदेही।
तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर-काज सँवारन।
मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। करतल चाप रुचिर सर साँधा।
प्रभु लछिमनहिं कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई।
सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी।
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाये राम सरासन साजी।

कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छिपाई।
प्रगटत दुरत करत छल भूरी। एहि बिधि प्रभुहि गयउ लेइ दूरी।
तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा।
लछिमन कँ प्रथमहिं लै नामा। पाछे सुमिरेसि मन महँ रामा।
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि राम समेत सनेहा।
अंतर प्रेमु तासु पहिचाना। मुनि-दुर्लभ-गति दीन्हि सुजाना।

दो०—बिपुल सुमन सुर बरषहिं, गावहिं प्रभु-गुन-गाथ।
निज पद दीन्ह असुर कहुँ, दीन-बंधु रघुनाथ ॥२३॥

खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा। सोह चाप कर कटि तूनीरा।
आरत-गिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता।
जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहँसि कहा सुनु माता।
भृकुटि-बिलास सृष्टि-लय होई। सपनेहु संकट परइ कि सोई।
मरम-बचन जब सीता बोला। हरि-प्रेरित लछिमन-मन डोला।
बन-दिसि-देव सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावन-ससि-राहू।
सून बीच दस-कंधर देखा। आवा निकट जती के बेखा।
नाना बिधि कहि कथा सुहाई। राज-नीति भय प्रीति देखाई।
कह सीता सुनु जती गोसाईं। बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं।
तब रावन निज रूप देखावा। भई सभय जब नाम सुनावा।
कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा। आइ गयउ प्रभु खल रहु ठाढ़ा।
जिमि हरि-बधुहि छुद्र सस चाहा। भयसि काल-बस निसिचर-नाहा।
सुनत बचन दस-सीस लजाना। मन महुँ चरन बंदि सुख माना।

दो०—क्रोधवंत तब रावन, लीन्हेसि रथ बैठाइ।
चला गगन-पथ आतुर, भय रथ हाँकि न जाइ ॥२४॥

हा जगदेक बीर रघुराया। केहि अपराध बिसारेहु दाया।

आरति-हरन सरन-सुख-दायक । हा रघु-कुल-सरोज-दिन-नायक ।
हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा । सो फल पायउँ कीन्हेउँ रोसा ।
बिबिध बिलाप करति बैदेही । भूरि-कृपा प्रभु दूरि सनेही ।
बिपति मोरि को प्रभुहिँ सुनावा । पुरोडास चह रासभ खावा ।
सीता कै बिलाप सुनि भारी । भये चराचर जीव दुखारी ।
गीध-राज सुनि आरत बानी । रघु-कुल-तिलक-नारि पहिचानी ।
अधम निसाचर लीन्हे जाई । जिमि मलेछ-बस कपिला गाई ।
सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा । करिहउँ जातुधान कै नासा ।
धावा क्रोधवंत खग कैसे । छूटइ पवि पर्बत कहँ जैसे ।
रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही । निर्भय चलेसि न जानेसि मोही ।
उतरु न देत दसानन जोधा । तबहिं गीध धावा करि क्रोधा ।
धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा । सीतहिं राखि गीध पुनि फिरा ।
चोंचन मारि बिदारेसि देही । दंड एक भइ मुरुछा तेही ।
तब सक्रोध निसिचर खिसियाना । काढ़ेसि परम कराल कृपाना ।
काटेसि पंख परा खग धरनी । सुमिरि राम करि अद्भुत करनी ।
सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी । चला उताइल त्रास न थोरी ।
करति बिलाप जात नभ सीता । ब्याध-बिबस जनु मृगी सभीता ।
गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी । कहि हरि-नामु दीन्ह पट डारी ।
एहि बिधि सीतहि सो लेइ गयऊ । बन असोक महुँ राखत भयऊ ।

दो०—हारि परा खल बहु बिधि, भय अरु प्रीति देखाइ ।
नव असोक पादप तर, राखेसि जतनु कराइ ॥२५॥
जेहि बिधि कपट-कुरंग सँग, धाइ चले श्रीराम ।
सो छबि सीता राखि उर, रटति रहति हरि-नाम ॥२६॥

रघुपति अनुजहि आवत देखी । बाहिज चिंता कीन्हि बिसेखी ।

जनक-सुता परिहरेहु अकेली। आयहु तात बचन मम पेली।
निसि-चर-निकर फिरहिं बन माहीं। मम मन सीता आस्रम नाहीं।
गहि पद-कमल अनुज कर जोरी। कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी।
अनुज-समेत गये प्रभु तहवाँ। गोदावरि-तट आश्रम जहवाँ।
आस्रम देखि जानकी-हीना। भये बिकल जस प्राकृत दीना।
हा गुन-खानि जानकी सीता। रूप - सील - व्रत - नेम - पुनीता।
लछिमन समझाये बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाती।
हे खग मृग हे मधुकर-स्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृग-नैनी।
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप-निकर कोकिला प्रबीना।
कुंद - कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहि-भामिनी।
बरुन-पास मनोज-धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा।
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं।
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू।
किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं।
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी।
पूरन-काम राम सुख-रासी। मनुज-चरित कर अज अबिनासी।
आगे परा गीधपति देखा। सुमिरत राम-चरन जिन्ह रेखा।

दो०—कर-सरोज सिर परसेउ, कृपा-सिंधु रघुबीर।
निरखि राम-छबि-धाम-मुख, बिगत भई सब पीर ॥२७॥

तब कह गीध बचन धरि धीरा। सुनहु राम भंजन भव-भीरा।
नाथ दसानन यह गति कीन्ही। तेहि खल जनक-सुता हरि लीन्ही।
लेइ दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं।
दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपा-निधाना।
राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुसुकाइ कही तेहि बाता।

जा कर नाम मरत मुख आवा। अधमउँ मुकुत होइ स्रुति गावा।
सो मम लोचन-गोचर आगे। राखउँ देह नाथ केहि लागे।
जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात कर्म निज तें गति पाई।
पर-हित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरन-कामा।

दो०—अबिरल भगति माँगि बर, गीध गयउ हरि-धाम।
तेहि की क्रिया जथोचित, निज कर कीन्ही राम॥ २८॥

पुनि सीतहि खोजत दोउ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई।
संकुल लता बिटप घन कानन। बहु खग मृग तहँ गज पंचानन।
आवत पंथ कबंध निपाता। तेहि सब कही साप कै बाता।
ताहि देइ गति रामु उदारा। सबरी के आस्रम पगु धारा।
सबरी देखि रामु गृह आये। मुनि के बचन समुझि जिय भाये।
सरसिज-लोचन बाहु बिसाला। जटा-मुकुट सिर उर बन-माला।
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई।
प्रेम-मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद-सरोज सिरु नावा।
सादर जल लइ चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे।

दो०—कंद मूल फल सुरस अति, दिये राम कहँ आनि।
प्रेम-सहित प्रभु खाये, बारंबार बखानि॥ २९॥

चले राम त्यागा बन सोऊ। अ-तुलित-बल नर-केहरि दोऊ।
बिरही इव प्रभु करत बिषादा। कहत कथा अनेक संबादा।
तब प्रभु गये सरोवर तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा।
संत-हृदय-जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी।
जहँ तहँ पियहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार-गृह जाचक-भीरा।
बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा।

बोलत जल-कुक्कुट कल-हंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा।
चक्रबाक - बक - खग -समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिं जाई।
सुंदर खग-गन-गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बुलाई।
ताल-समीप मुनिन्ह गृह छाये। चहुँ दिसि कानन बिटप सुहाये।
चंपक बकुल कदंब तमाला। पाटल पनस परास रसाला।
नव-पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीक-पटली कर गाना।
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहइ मनोहर बाऊ।
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं।

दो०—फल भर नम्र बिटप सब, रहे भूमि नियराइ।
पर-उपकारी पुरुष जिमि, नवहिं सुसंपति पाइ॥ ३०॥

देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा।
देखी सुंदर तरु - बर - छाया। बैठे अनुज-सहित रघुराया।
बिरहवंत भगवंतहिं देखी। नारद-मन भा सोच बिसेखी।
मोर साप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख-भारा।
ऐसे प्रभुहिं बिलोकउँ जाई। पुनि न बनिहि अस अवसरु आई।
यह बिचारि नारद कर-बीना। गये जहाँ प्रभु सुख आसीना।
गावत राम-चरित मृदु-बानी। प्रेम-सहित बहु भाँति बखानी।
करत दंडवत लिये उठाई। राखे बहुत बार उर लाई।
स्वागत पूछि निकट बैठारे। लछिमन सादर चरन पखारे।

दो०—नाना बिधि बिनती करि, प्रभु प्रसन्न जिय जानि।
नारद बोले बचन तब, जोरि सरोरुह पानि॥ ३१॥

सुनहु उदार परम रघुनायक। सुंदर अगम सुगम बर-दायक।
देहु एक बरु माँगउँ स्वामी। जद्यपि जानत अंतरजामी।
जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ। जन सन कबहुँ कि करउँ दुराऊ।

कवन वस्तु असि प्रिय मोहि लागी । जो मुनि-बर न सकहु तुम्ह मागी ।
जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरे । अस बिस्वास तजहु जनि भोरे ।
तब नारद बोले हरषाई । अस बर मागउँ करउँ ढिठाई ।
जद्यपि प्रभु के नाम अनेका । स्रुति कह अधिक एक तें एका ।
राम सकल नामन्ह तें अधिका । होउ नाथ अघ-खग-गन-बधिका ।

दो०—राका-रजनी भगति तव, राम-नाम सोइ सोम ।
अपर नाम उडु-गन बिमल, बसहु भगत-उर-ब्योम ॥ ३२ ॥
एवमस्तु मुनि सन कहेउ, कृपा-सिंधु रघुनाथ ।
तब नारद मन हरष अति, प्रभु-पद नायेउ माथ ॥ ३३ ॥

सुनि रघुपति के बचन सुहाये । मुनि-तन पुलक नयन भरि आये ।
कहहु कवन प्रभु कै असि रीती । सेवक पर ममता अरु प्रीती ।
जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी । ज्ञान-रंक नर मंद अभागी ।
पुनि सादर बोले मुनि नारद । सुनहु राम बिज्ञान-बिसारद ।
संतन्ह के लच्छन रघुबीरा । कहहु नाथ भंजन भव-भीरा ।
सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ । जिन्ह तें मैं उन्ह के बस रहऊँ ।
षट-बिकार-जित अनघ अकामा । अचल अकिंचन सुचि सुख-धामा ।
अमित बोध अनीह मित-भोगी । सत्य-संध कबि कोबिद जोगी ।
सावधान मानद मद-हीना । धीर भगति-पथ परम प्रबीना ।

दो०—गुनागार संसार - दुख,-रहित बिगत संदेह ।
तजि मम चरन-सरोज प्रिय, जिन्ह कहुँ देह न गेह ॥ ३४ ॥

निज गुन स्रवन सुनत सकुचाहीं । परगुन सुनत अधिक हरषाहीं ।
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती । सरल सुभाव सबहिं सन प्रीती ।
जप तप ब्रत दम संजम नेमा । गुरु-गोबिंद बिप्र-पद - प्रेमा ।
स्रद्धा छमा मइत्री दाया । मुदिता मम पद-प्रीति अमाया ।

बिरति बिवेक बिनय बिज्ञाना। बोध जथारथ बेद-पुराना।
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ।
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु-रहित पर-हित-रत-सीला।
सुनु मुनि साधुन के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद स्रुति तेते।

छंद—कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद-पंकज गहे।
अस दीन-बंधु कृपाल अपने भगत-गुन निज मुख कहे।
सिरु नाइ बारहिं बार चरनन्हि ब्रह्म-पुर नारद गये।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि-रँग रये॥

किष्किंधा कांड।

सो०—मुक्तिजनम महि जानि, ज्ञान-खानि अघ-हानि-कर।
जहँ बस संभु-भवानि, सो कासी सेइय कस न॥ १॥
जरत सकल सुर-बृंद, विषम गरल जेहि पान किय।
तेहि न भजसि मन मंद, को कृपाल शंकर-सरिस॥ २॥

आगे चले बहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्वत नियराया।
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवाँ। आवत देखि अ-तुल-बल-सीवाँ।
अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष-जुगल बल-रूप-निधाना।
धरि बटु-रूप देखु तैं जाई। कहेसु जानि जिय सैन बुझाई।
पठये बालि होहि मन मैला। भागउँ तुरत तजउँ यह सैला।
विप्र-रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ।
को तुम्ह स्यामल-गौर-सरीरा। छत्री-रूप फिरहु बन बीरा।
कठिन-भूमि कोमल-पद-गामी। कवन हेतु विचरहु बन स्वामी।
मृदुल मनोहर सुंदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता।
की तुम्ह तीन देव महँ कोऊ। नर-नारायण की तुम्ह दोऊ।

दो०—जग-कारन तारन भव, भंजन धरनी-भार।
की तुम्ह अखिल-भुवन-पति, लीन्ह मनुज-अवतार॥ ३॥

कोसलेस दसरथ के जाये। हम पितु-बचन मानि बन आये।
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई।
इहाँ हरी निसिचर बैदेही। विप्र फिरहिँ हम खोजत तेही।
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु विप्र निज कथा बुझाई।

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिँ बरना।
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना।
पुनि धीरज धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदय निज नाथहिँ चीन्ही।
मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं।
तव माया-बस फिरउँ भुलाना। ता तें मैं नहिँ प्रभु पहिचाना।

दो०—एक मंद मैं मोहबस, कुटिल हृदय अज्ञान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ, दीन-बंधु भगवान ॥ ४ ॥

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरे। सेवक प्रभुहिँ परइ जन भोरे।
नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहि छोहा।
ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिँ कछु भजन-उपाई।
सेवक-सुत पति-मातु भरोसे। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसे।
अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई।
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज-लोचन-जल सींचि जुड़ावा।
सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन तें दूना।
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक-प्रिय अनन्य-गति सोऊ।

दो०—सो अनन्य जाके असि, मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवंत ॥ ५ ॥

देखि पवनसुत पति अनुकूला। हृदय हरष बीते सब सूला।
नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई।
तेहि सन नाथ मइत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे।
सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि।
एहि बिधि सकल कथा समुझाई। लिये दुअउ जन पीठि चढ़ाई।
जब सुग्रीवँ राम कहुँ देखा। अतिसय जनम धन्य करि लेखा।

सादर मिलेउ नाइ पद-माथा। भेंटेउ अनुज-सहित रघुनाथा।
कपि कर मन बिचार एहि रीती। करिहहिँ बिधि मो सन ये प्रीती।

दो०—तब हनुमंत उभय दिसि, कहि सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ॥ ६॥

कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा। लछिमन राम-चरित सब भाखा।
कह सुग्रीवँ नयन भरि बारी। मिलिहि नाथ मिथिलेस-कुमारी।
मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा। बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा।
गगन-पंथ देखी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता।
राम राम हा राम पुकारी। हमहिँ देखि दीन्हेउ पट डारी।
माँगा राम तुरत तेहि दीन्हा। पट उर लाइ सोच अति कीन्हा।
कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा।
सब प्रकार करिहउँ सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई।

दो०—सखा-बचन सुनि हरषे, कृपा-सिंधु बल-सींव।
कारन कवन बसहु बन, मोहि कहहु सुग्रीव॥ ७॥

नाथ बालि अरु मैं दोउ भाई। प्रीति रही कछु बरनि न जाई।
मय-सुत मायावी तेहि नाऊँ। आवा सो प्रभु हमरे गाऊं।
अर्ध राति पुर-द्वार पुकारा। बाली रिपु-बल सहइ न पारा।
धावा बालि देखि सो भागा। मैं पुनि गयउँ बंधु सँग लागा।
गिरि-बर-गुहा पैठ सो जाई। तब बाली मोहिँ कहा बुझाई।
परिखेसु मोहिँ एक पखवारा। नहिँ आवउँ तब जानेसु मारा।
मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी। निसरी रुधिर-धार तहँ भारी।
बालि हतेसि मोहि मारिहि आई। सिला देइ तहँ चलेउँ पराई।
मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं। दीन्हेउँ मोहि राज बरिआईं।
बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जिय भेद बढ़ावा।

रिपु-सम मोहि मारेसि अति भारी। हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी।
ता के भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरउँ बिहाला।
इहाँ साप-बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहउँ मन माहीं।
सुनि सेवक-दुख दीन-दयाला। फरकि उठीं दोउ भुजा बिसाला।

दो०—सुनु सुग्रीवँ मारिहउँ, बालिहि एकहि बान।
ब्रह्म-रुद्र-सरनागत, गयें न उबरिहि प्रान॥ ८॥

जे न मित्र दुख होहिँ दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी।
निज दुख गिरि-सम रज करि जाना। मित्र के दुख-रज मेरु-समाना।
जिन्ह के असि मति सहज न आई। ते सठ हठि कत करत मिताई।
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटइ अवगुनन्हि दुरावा।
देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई।
बिपति-काल कर सत-गुन नेहा। स्रुति कह संत मित्र गुन एहा।
आगे कह मृदु-बचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई।
जा कर चित अहि-गति-सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहि भलाई।
सेवक सठ नृप कृपिन कुनारी। कपटी मित्र सूल-सम चारी।
सखा सोच त्यागहु बल मोरे। सब बिधि करब काज मैं तोरे।
लेइ सुग्रीवँ संग रघुनाथा। चले चाप-सायक गहि हाथा।
तब रघुपति सुग्रीवँ पठावा। गर्जेसि जाइ निकट बल पावा।
सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहि कर चरन नारि समुझावा।
सुनु पति जिन्हहिँ मिलेउ सुग्रीवा। ते दोउ बंधु तेज-बल-सींवा।
कोसलेस-सुत लछिमन-रामा। कालहु जीति सकहिँ संग्रामा।

दो०—कहा बालि सुनु भीरु प्रिय, सम-दरसी रघुनाथ।
जौं कदाचि मोहि मारहिँ, तौ पुनि होउँ सनाथ॥ ९॥

अस कहि चला महा-अभिमानी। तृन-समान सुग्रीवँहि जानी।

भिरे उभौ बाली अति तरजा। मुठिका मारि महा-धुनि गरजा।
तब सुग्रीवँ विकल होइ भागा। मुष्टि-प्रहार बज्र-सम लागा।
मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बंधु न होइ मोर यह काला।
एक-रूप तुम्ह भ्राता दोऊ। तेहि भ्रम तें नहिँ मारेउँ सोऊ।
कर परसा सुग्रीवँ-सरीरा। तनु भा कुलिस गई सब पीरा।
मेली कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला।
पुनि नाना बिधि भई लराई। बिटप-ओट देखहिँ रघुराई।

दो०—बहु छल-बल सुग्रीवँ करि, हिय हारा भय मानि।
मारा बाली राम तब, हृदय माँझ सर तानि॥ १०॥

परा बिकल महि सर के लागे। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे।
स्याम-गात सिर जटा बनाये। अरुन-नयन सर चाप चढ़ाये।
पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा। सुफल जनम माना प्रभु चीन्हा।
हृदय प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा।
धर्म-हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याधा की नाईं।
मैं बैरी सुग्रीवँ पियारा। अवगुन कौन नाथ मोहि मारा।
अनुज-बधू भगिनी सुत-नारी। सुनु सठ ए कन्या सम चारी।
इन्हहिँ कुदिष्ट बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई।
मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि-सिखावन करेसि न काना।
मम भुज-बल-आस्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी।

दो०—सुनहु राम स्वामी सकल, चलन चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पातकी, अंत-काल गति तोरि॥ ११॥

सुनत राम अति कोमल बानी। बालि-सीस परसेउ निज पानी।
अचल करउँ तनु राखहु प्राना। बालि कहा सुनु कृपा-निधाना।
जनम जनम मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं।

जासु नाम-बल शंकर कासी। देत सबहिँ सम-गति अविनासी।
मम लोचन-गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा।
छंद—सो नयन-गोचर जासु गुन नित नेति कहि स्रुति गावहीँ।
जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीँ।
मोहि जानि अति-अभिमान-बस प्रभु कहेहु राखु सरीरही।
अस कवन सठ हठि काटि सुर-तरु बारि करिहि बबूरही॥
अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर माँगऊँ।
जेहि जोनि जनमउँ कर्म-बस तहँ राम-पद अनुरागऊँ।
यह तनय मम सम बिनय-बल कल्यान-पद प्रभु लीजिये।
गहि बाहँ सुर-नर-नाह आपन दास अंगद कीजिये॥
दो०—राम-चरन दृढ़ प्रीति करि, बालि कीन्ह तनु-त्याग।
सुमन-माल जिमि कंठ तें, गिरत न जानइ नाग॥ १२॥
राम बालि निज धाम पठावा। नगर-लोग सब व्याकुल धावा।
नाना बिधि बिलाप कर तारा। छूटे केस न देह सँभारा।
तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ज्ञान हरि लीन्ही माया।
उपजा ज्ञान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर माँगी।
उमा दारु-जोषित की नाईं। सबहिँ नचावत रामु गोसाईं।
तब सुग्रीवँहि आयसु दीन्हा। मृतक-कर्म बिधिवत सब कीन्हा।
राम कहा अनुजहि समुझाई। राज देहु सुग्रीवँहि जाई।
रघु-पति-चरन नाइ करि माथा। चले सकल प्रेरित रघुनाथा।
दो०—लछिमन तुरत बोलाये, पुर-जन बिप्र-समाज।
राज दीन्ह सुग्रीवँ कहुँ, अंगद कहँ जुबराज॥ १३॥
पुनि सुग्रीवँहि लीन्ह बोलाई। बहु प्रकार नृप-नीति सिखाई
कह प्रभु सुनु सुग्रीवँ हरीसा। पुर न जाउँ दस-चारि बरीसा

गत ग्रीषम बरषा-रितु आई। रहिहउँ निकट सैल पर छाई।
अंगद-सहित करहु तुम्ह राजू। संतत हृदय धरेहु मम काजू।
जब सुग्रीवँ भवन फिरि आये। रामु प्रबरषन गिरि पर छाये।
सुंदर बन कुसुमित अति शोभा। गुंजत मधुप-निकर मधु-लोभा।
कंद मूल फल पत्र सुहाये। भये बहुत जब तें प्रभु आये।
देखि मनोहर सैल अनूपा। रहे तहँ अनुज-सहित सुर-भूपा।
मंगल-रूप भयउ बन तब तें। कीन्ह निवास रमा-पति जब तें।
फटिक-सिला अति सुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहाँ दोउ भाई।
कहत अनुज सन कथा अनेका। भगति बिरति नृप-नीति बिबेका।
बरषा-काल मेघ नभ छाये। गर्जत लागत परम सुहाये।

दो०—लछिमन देखहु मोर-गन, नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति-रत हरष जस, बिष्णु-भगत कहुँ देखि ॥ १४ ॥

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया-हीन डरपत मन मोरा।
दामिनि दमकि रह न घन माहीँ। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीँ।
बरषहिँ जलद भूमि नियराये। जथा नवहिँ बुध बिद्या पाये।
बुंद अघात सहहिँ गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे।
छुद्र नदी भरि चली तोराई। जस थोरेहु धन खल इतराई।
भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी।
सिमिटि सिमिटि जल भरहि तलावा। जिमि सद-गुन सज्जन पहि आवा।
सरिता-जल जल-निधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई।

दो०—हरित भूमि तृन-संकुल, समुझि परहिँ नहिँ पंथ।
जिमि पाखंड-बाद तें, गुप्त होहिँ सद-ग्रंथ ॥ १५ ॥

दादुर-धुनि चहुँ दिसा सुहाई। बेद पढ़हिँ जनु बटु-समुदाई।
नव-पल्लव भये बिटप अनेका। साधक मन जस मिले बिबेका।

अर्क जवास पात विनु भयऊ । जस सुराज खल उद्यम गयऊ ।
खोजत कतहुँ मिलइ नहिँ धूरी । करइ क्रोध जिमि धर्महिँ दूरी ।
ससि-संपन्न सोह महि कैसी । उपकारी की संपति जैसी ।
निसि तम घन खद्योत बिराजा । जनु दंभिन कर मिला समाजा ।
महा वृष्टि चलि फूटि कियारी । जिमि सुतंत्र भये बिगरहिँ नारी ।
कृषी निरावहिँ चतुर किसाना । जिमि बुध तजहिँ मोह मद माना ।
देखियत चक्रवाक खग नाहीँ । कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीँ ।
ऊपर बरषइ तृन नहिँ जामा । जिमि हरि-जन-हिय उपज न कामा ।
बिबिध जंतु-संकुल महि भ्राजा । प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा ।
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना । जिमि इंद्रिय-गन उपजे ज्ञाना ।

दो०—कबहुँ प्रबल चल मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिँ ।
जिमि कपूत के उपजे, कुल सद्धर्म नसाहिँ ॥ १६ ॥
कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम, कबहुँक प्रगट पतंग ।
बिनसइ उपजइ ज्ञान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग ॥ १७ ॥

बरषा बिगत सरद-रितु आई । लछिमन देखहु परम सुहाई ।
फूले कास सकल महि छाई । जनु बरषाकृत प्रगट बुढ़ाई ।
उदित अगस्त पंथ-जल सोखा । जिमि लोभहि सोखइ संतोषा ।
सरिता सर निर्मल जल सोहा । संत-हृदय जस गत-मद-मोहा ।
रस रस सूख सरित-सर-पानी । ममता-त्याग करहिं जिमि ज्ञानी ।
जानि सरद-रितु खंजन आये । पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये ।
पंक न रेनु सोह असि धरनी । नीति-निपुन नृप कै जसि करनी ।
जल-संकोच बिकल भइ मीना । अबुध कुटुंबी जिमि धन-हीना ।
बिनु घन निर्मल सोह अकासा । हरि-जन इव परिहरि सब आसा ।
कहुँ कहुँ वृष्टि सारदी थोरी । कोउ एक पाव भगति जसि मोरी ।

दो०—चले हरषि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरि-भगति पाइ स्रम, तजहिं आस्रमी चारि॥ १८॥

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि-सरन न एकउ बाधा।
फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भये जैसा।
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुंदर खग-रव नाना रूपा।
चक्रवाक-मन दुख निसि पेखी। जिमि दुरजन पर-संपति देखी।
चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न शंकर-द्रोही।
सरदातप निसि ससि अपहरई। संत-दरस जिमि पातक टरई।
देखि इंदु चकोर-समुदाई। चितवहिं जिमि हरि-जन हरि पाई।
मसक-दंस बीते हिम-त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किये कुल-नासा।

दो०—भूमि जीव संकुल रहे, गये सरद-रितु पाइ।
सद-गुरु मिले जाहिं जिमि, संसय-भ्रम-समुदाइ॥ १९॥

बरषा-गत निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता कै पाई।
एक बार कैसेहुँ सुधि जानउँ। कालहु जीति निमिष महुँ आनउँ।
कतहुँ रहउ जौं जीवत होई। तात जतन करि आनउँ सोई।
सुग्रीवँहु सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी।
जेहि सायक मारा मैं बाली। तेहि सर हतहुँ मूढ़ कहुँ काली।
लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना।

दो०—तब अनुजहिँ समुझावा, रघुपति करुना-सीवँ।
भय देखाइ लेइ आवहु, तात सखा सुग्रीवँ॥ २०॥

इहाँ पवन-सुत हृदय बिचारा। राम-काज सुग्रीवँ बिसारा।
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा।
सुनि सुग्रीवँ परम भय माना। बिषय मोर हरि लीन्हेउ ज्ञाना।
अब मारुत-सुत दूत-समूहा। पठवहु जहँ तहँ बानर-जूहा।

कहेउ पाख महुँ आव न जोई। मोरे कर ता कर बध होई।
तब हनुमंत बोलाये दूता। सब कर करि सनमान बहूता।
भय अरु प्रीति नीति देखराई। चले सकल चरनन्हि सिरु नाई।
एहि अवसर लछिमन पुर आये। क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाये।

दो०—धनुष चढ़ाइ कहा तब, जारि करउँ पुर छार।
व्याकुल नगर देखि तब, आयउ बालि-कुमार॥ २१॥

चरन नाइ सिरु बिनती कीन्ही। लछिमन अभय-बाँह तेहि दीन्ही।
क्रोधवंत लछिमन सुनि काना। कह कपीस अति भय अकुलाना।
सुनु हनुमंत संग लेइ तारा। करि बिनती समुझाव कुमारा।
तारा-सहित जाइ हनुमाना। चरन बंदि प्रभु सुजसु बखाना।
करि बिनती मंदिर लेइ आये। चरन पखारि पलँग बैठाये।
तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा।
नाथ बिषय-सम मद कछु नाहीं। मुनि-मन मोह करइ छन माहीं।
सुनत बिनीत-बचन सुख पावा। लछिमन तेहि बहु बिधि समुझावा।
पवन-तनय सब कथा सुनाई। जेहि बिधि गये दूत-समुदाई।

दो०—हरषि चले सुग्रीवँ तब, अंगदादि-कपि साथ।
रामानुज आगे करि, आये जहँ रघुनाथ॥ २२॥

नाइ चरन सिरु कह कर जोरी। नाथ मोहि कछु नाहिँन खोरी।
अतिसय प्रबल देव तव माया। छूटइ राम करहु जौं दाया।
बिषय-बस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पामर पसु कपि अति कामी।
नारि-नयन-सर जाहि न लागा। घोर-क्रोध-तम-निसि जो जागा।
लोभ-पास जेहि गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया।
यह गुन साधन तें नहिँ होई। तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई।

तब रघुपति बोले मुसुकाई। तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई।
अब सोइ जतन करहु मन लाई। जेहि बिधि सीता कै सुधि पाई।

दो०—एहि बिधि होत बतकही, आये बानर-जूथ।
नाना बरन सकल दिसि, देखिय कीस-बरूथ॥ २३॥
बचन सुनत सब बानर, जहँ तहँ चले तुरंत।
तब सुग्रीवँ बोलाये, अंगद नल हनुमंत॥ २४॥

सुनहु नील अंगद हनुमाना। जामवंत मति-धीर सुजाना।
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता-सुधि पूछेहु सब काहू।
मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु। रामचंद्र कर काज सँवारेहु।
आयसु माँगि चरन सिरु नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई।
पाछें पवन-तनय सिरु नावा। जानि काजु प्रभु निकट बोलावा।
परसा सीस सरोरुह-पानी। कर-मुद्रिका दीन्हि जन जानी।
बहु प्रकार सीतहिँ समुझायेहु। कहि बल बिरह-बेगि तुम्ह आयेहु।
हनुमत जनम सुफल करि माना। चलेउ हृदय धरि कृपा-निधाना।
जद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राज-नीति राखत सुर-त्राता।

दो०—चले सकल बन खोजत, सरिता सर गिरि खोह।
राम-काज-लय-लीन मन, बिसरा तन कर छोह॥ २५॥

खोजत फिरहिँ सकल कपि बीरा। पहुँचे जाइ सिंधु के तीरा।
तहाँ बिचारहिँ कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं।
सब मिलि कहहिँ परसपर बाता। बिनु सुधि लये करब का भ्राता।
कह अंगद लोचन भरि बारी। दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी।
इहाँ न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गये मारिहि कपि-राई।
पिता बधे पर मारत मोही। राखा राम निहोर न ओही।

पुनि पुनि अंगद कह सब पाहीं। मरन भयेउ कछु संसय नाहीं।
अंगद-बचन सुनत कपि-बीरा। बोलि न सकहिँ नयन बह नीरा।
छन एक सोच-मगन होइ गयऊ। पुनि अस बचन कहत सब भयऊ।
हम सीता कै सोध-बिहीना। नहिँ जैहहिँ जुबराज प्रबीना।
अस कहि लवन-सिंधु-तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई।
जामवंत अंगद-दुख देखी। कही कथा उपदेस-बिसेखी।
तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन-ब्रह्म अजित अज जानहु।
हम सब सेवक अति-बड़-भागी। संतत स-गुन- ब्रह्म- अनुरागी।

दो०—निज इच्छा प्रभु अवतरइ, सुर - महि-गो-द्विज-लागि।
सगुन-उपासक संग तहँ, रहहिँ मोच्छ-सुख त्यागि॥ २६॥

एहि बिधि कथा कहहिँ बहु भाँती। गिरि-कंदरा सुनी संपाती।
बाहेर होइ देखे बहु कीसा। मोहि अहारु दीन्ह जगदीसा।
आजु सबहि कहँ भच्छन करऊँ। दिन बहु चल अहार बिनु मरऊँ।
कबहुँ न मिल भरि उदर अहारा। आजु दीन्ह बिधि एकहि बारा।
डरपे गीध-बचन सुनि काना। अब भा मरन सत्य हम जाना।
कपि सब उठे गीध कहँ देखी। जामवंत मन सोच बिसेखी।
कह अंगद बिचारि मन माहीं। धन्य जटायू - सम कोउ नाहीं।
राम - काज - कारन तनु त्यागी। हरि-पुर गयउ परम - बड़ - भागी।
सुनि खग हरष-सोक-जुत बानी। आवा निकट कपिन्ह भय मानी।
तिन्हहिँ अभय करि पूछेसि जाई। कथा सकल तिन्ह ताहि सुनाई।
सुनि संपाति बंधु कै करनी। रघु-पति-महिमा बहु बिधि बरनी।

दो०—मोहि लेइ जाहु सिंधु-तट, देउँ तिलांजलि ताहि।
बचन-सहाय करबि मैं, पैहहु खोजहु जाहि॥ २७॥



संपाती-मिलन ।

मैं देखउँ तुम्ह नाहीं, गीधहि दृष्टि अपार ।
बूढ़ भयउँ न त करतेउँ, कछुक सहाय तुम्हार ॥२८॥

जो नाँघइ सत-जोजन सागर । करइ सो राम-काज मति-आगर ।
मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा । राम-कृपा कस भयउ सरीरा ।
पापिउ जा कर नाम सुमिरहीं । अति अपार भव-सागर तरहीं ।
तासु दूत तुम्ह तजि कदराई । राम हृदय धरि करहु उपाई ।
अस कहि उमा गीध जब गयऊ । तिन्ह के मन अति बिसमय भयऊ ।
निज निज बल सब काहू भाखा । पार जाइ कर संसय राखा ।
जरठ भयउँ अब कहइ रिछेसा । नहिँ तनु रहा प्रथम-बल-लेसा ।
जबहिँ त्रिबिक्रम भयउ खरारी । तब मैं तरुन रहेउँ बल-भारी ।

दो०—बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ, सो तनु बरनि न जाइ ।
उभय घरी महँ दीन्ही, सात प्रदच्छिन धाइ ॥ २९ ॥

अंगद कहइ जाउँ मैं पारा । जिय संसय कछु फिरती बारा ।
जामवंत कह तुम्ह सब लायक । पठइय किमि सबही कर नायक ।
कहइ रिच्छपति सुनु हनुमाना । का चुप साधि रहेउ बलवाना ।
पवन - तनय-बल पवन - समाना । बुधि - बिबेक-बिज्ञान - निधाना ।
कवन सो काज कठिन जग माहीं । जो नहिँ तात होइ तुम्ह पाहीं ।
राम-काज लगि तव अवतारा । सुनतहिँ भयेउ पर्वताकारा ।
कनक-बरन-तन तेज बिराजा । मानहुं अपर गिरिन्ह कर राजा ।
सिंह-नाद करि बारहिँ बारा । लीलहिँ नाँघउँ जलधि अपारा ।
सहित सहाय रावनहिँ मारी । आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी ।
जामवंत मैं पूछउँ तोही । उचित सिखावन दीजेहु मोही ।
एतना करहु तात तुम्ह जाई । सीतहि देखि कहहु सुधि आई ।
तब निज-भुज-बल राजिव-नैना । कौतुक लागि संग कपि-सैना ।

छंद—कपि-सेन-संग सँघारि निसिचर रामु सीतहिं आनिहैं।
त्रै-लोक-पावन-सु-जस सुर मुनि नारदादि बखानिहैं।
जो सुनत गावत कहत समुझत परम-पद नर पावई।
रघु-बीर पद-पाथोज-मधुकर दास तुलसी गावई॥

सुंदर कांड।

जामवंत के बचन सुहाये। सुनि हनुमंत हृदय अति भाये।
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। सहि दुख कंद मूल फल खाई।
जब लगि आवउँ सीतहि देखी। होइ काज मोहि हरष बिसेखी।
अस कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा। चलेउ हरषि हिय धरि रघुनाथा।
सिंधु-तीर एक भूधर सुंदर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर।
बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवन-तनय बल-भारी।
राम कृपा मारुत-सुत बीरा। बारिधि-पार गयउ मति-धीरा।
तहाँ जाइ देखी बन-सोभा। गुंजत चंचरीक मधु-लोभा।
नाना तरु फल फूल सुहाये। खग-मृग-बृंद देखि मन भाये।
सैल बिसाल देखि एक आगे। ता पर धाइ चढ़ेउ भय त्यागे।
उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु-प्रताप जो कालहि खाई।
गिरि पर चढ़ि लंका तेहि देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेखी।
अति उतंग जल-निधि चहुँ पासा। कनक-कोट कर परम प्रकासा।

दो०—पुर-रखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरउँ निसि, नगर करउँ पइसार॥ १॥

अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना।
मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा।
गयउ दसानन-मंदिर माहीं। अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं।
सयन किये देखा कपि तेही। मंदिर महुँ न दीख बैदेही।
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि-मंदिर तहँ भिन्न बनावा।

दो०—रामायुध-अंकित गृह, सेभा बरनि न जाइ।
नव - तुलसिका-बृंद तहँ, देखि हरष कपि-राइ ॥ २ ॥

चौ०—लंका निसि-चर-निकर-निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर वासा।
मन महुँ तरक करइ कपि लागा। तेही समय विभीषनु जागा।
राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा। हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा।
एहि सनु हठि करिहउँ पहिचानी। साधु तें होइ न कारज-हानी।
बिप्र-रूप धरि बचन सुनाये। सुनत बिभीषन उठि तहँ आये।
करि प्रनाम पूछी कुसलाई। बिप्र कहहु निज कथा बुझाई।
की तुम्ह हरि-दासन्ह महँ कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई।
की तुम्ह राम-दीन-अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी।

दो०—तब हनुमंत कही सब, राम-कथा निज नाम।
सुनत जुगल-तन पुलक मन, मगन सुमिरि गुन-ग्राम ॥ ३ ॥

सुनहु पवन-सुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी।
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानु-कुल-नाथा।
तामस-तनु कछु साधन नाहीं। प्रीत न पद-सरोज मन माहीं।
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरि-कृपा मिलहिं नहिं संता।
जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा।
सुनहु बिभीषन प्रभु कइ रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती।
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबही बिधि हीना।
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलइ अहारा।

दो०—अस मैं अधम सखा सुनु, मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन, भरे बिलोचन नीर ॥ ४ ॥

जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी।
एहि बिधि करत राम-गुन-ग्रामा। पावा अनिर्वाच्य बिस्रामा।

पुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि विधि जनक-सुता तहँ रही।
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखा चहउँ जानकी माता।
जुगुति विभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवन-सुत बिदा कराई।
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ
देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा। बैठेहि बीति जात निसि जामा।
कृस-तन सीस जटा एक - बेनी। जपति हृदय रघु-पति-गुन-स्रेनी।

दो०—निज पद नयन दियें मन, राम-चरन महँ लीन।
परम दुखी भा पवन-सुत, देखि जानकी दीन॥ ५॥

तरु-पल्लव महुँ रहा लुकाई। करइ विचार करउँ का भाई।
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा। संग नारि बहु किये बनावा।
बहु विधि खल सीतहि समुझावा। साम दाम भय भेद देखावा।
कह रावन सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी।
तव अनुचरी करउँ पन मोरा। एक बार विलोकु मम ओरा।
तृन धरि ओट कहति वैदेही। सुमिरि अवध-पति परम सनेही।
सुनु दस-मुख खद्योत-प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा।
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघु-बीर-बान की।
सठ सूनें हरि आनेसि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही।

दो०—आपुहि सुनि खद्योत-सम, रामहिँ भानु-समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति खिसियान॥६॥

सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना।
नाहिँ त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होत न त जीवन हानी।
स्याम-सरोज-दाम-सम सुंदर। प्रभु-भुज करि-कर-सम दस कंधर।
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रमान - पन मोरा।
चंद्र-हास हर मम परितापं। रघु-पति - बिरह - अनल - संजातं।

सीतल निसि तव असि-बर-धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा।
सुनत बचन पुनि मारन धावा। मय-तनया कहि नीति बुझावा।
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई।
मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारब काढ़ि कृपाना।

दो०—भवन गयउ दसकंधर, इहाँ पिसाचिनि-बृंद।
सीतहिँ त्रास देखावहिं, धरहिं रूप बहु मंद॥ ७॥
जहँ तहँ गईं सकल जब, सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीते मोहि, मारिहि निसिचर पोच॥ ८॥

सो०—कपि करि हृदय बिचार, दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार, दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ॥ ९॥

तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम-नाम-अंकित अति सुंदर।
चकित चितव मुँदरी पहिचानी। हरष बिषाद हृदय अकुलानी।
जीति को सकइ अजय रघुराई। माया तें असि रचि नहिं जाई।
सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना।
राम-चंद्र-गुन बरनइ लागा। सुनतहि सीता कर दुख भागा।
लागी सुनइ स्रवन मन लाई। आदिहुँ ते सब कथा सुनाई।
स्रवनामृत जेहि कथा सुहाई। कहि सो प्रगट होत किन भाई।
तब हनुमंत निकट चलि गयऊ। फिरि बैठी मन बिसमय भयऊ।
राम-दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुना-निधान की।
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी।
नर बानरहि संग कहु कैसे। कही कथा भइ संगति जैसे।

दो०—कपि के बचन सप्रेम सुनि, उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम बचन यह, कृपा-सिंधु कर दास॥ १०॥

हरि-जन जानि प्रीति अति बाढ़ी । सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी ।
बूड़त बिरह-जलधि हनुमाना । भयहु तात मो कहँ जल-जाना ।
अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी । अनुज-सहित सुख- भवन खरारी ।
कोमल-चित कृपालु रघुराई । कपि केहि हेतु धरी निठुराई ।
सहज-बानि सेवक-सुख-दायक । कबहुँक सुरति करत रघु-नायक ।
कबहुँ नयन मम सीतल ताता । होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता ।
बचन न आव नयन भरि बारी । अहह नाथ हौं निपट बिसारी ।
देखि परम बिरहाकुल सीता । बोला कपि मृदु बचन बिनीता ।
मातु कुसल प्रभु अनुज-समेता । तव दुख दुखी सु-कृपा-निकेता ।
जनि जननी मानहु जिय ऊना । तुम्ह तें प्रेम राम के दूना ।

दो०—रघुपति कर संदेस अब, सुनु जननी धरि धीर ।
अस कहि कपि गदगद भयउ, भरे बिलोचन नीर ॥ ११ ॥

कहेउ राम बियोग तव सीता । मो कहँ सकल भये बिपरीता ।
नव-तरु-किसलय मनहुँ कृसानू । काल-निसा-सम निसि-ससि भानू ।
कुबलय-बिपिन कुंत-बन-सरिसा । बारिद तपत तेल जनु बरिसा ।
जे हित रहे करत तेइ पीरा । उरग-स्वास-सम त्रिबिध समीरा ।
कहेहू ते कछु दुख घटि होई । काहि कहउँ यह जान न कोई ।
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एक मन मोरा ।
सो मन सदा रहत तोहि पाहीं । जानु प्रीति- रस एतनहि माहीं ।
प्रभु-संदेस सुनत बैदेही । मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही ।
कह कपि हृदय धीर धरु माता । सुमिरु राम सेवक-सुख-दाता ।
उर आनहु रघु-पति-प्रभुताई । सुनि मम बचन तजहु कदराई ।

दो०—निसि-चर-निकर पतंग-सम, रघु-पति-बान कृसानु ।
जननी हृदय धीर धरु, जरे निसाचर जानु ॥ १२ ॥

जो रघुबीर होति सुधि पाई । करते नहिं बिलंबु रघुराई ।
राम-बान रबि उये जानकी । तम-बरूथ कहँ जातुधान की ।
अबहिं मातु मैं जाउँ लेवाई । प्रभु-आयसु नहिँ राम-दोहाई ।
कछुक दिवस जननी धरु धीरा । कपिन-सहित अइहहिँ रघुबीरा ।
निसिचर मारि तोहि लेइ जैहहिँ । तिहुँ पुर नारदादि जस गैहहिँ ।
हैं सुत कपि सब तुम्हहिँ समाना । जातुधान-भट अति बलवाना ।
मोरे हृदय परम संदेहा । सुनि कपि प्रगट कीन्ह निज देहा ।
कनक - भूधरा - कार - सरीरा । समर-भयंकर अति-बल-बीरा ।
सीता मन भरोस तब भयऊ । पुनि लघु रूप पवन-सुत लयऊ ।

दो०—सुनु माता साखा-मृग, नहिँ बल-बुद्धि-बिसाल ।
प्रभु-प्रताप तेँ गरुड़हिँ, खाइ परम लघु व्याल ॥ १३ ॥

मन संतोष सुनत कपि-बानी । भगति-प्रताप-तेज-बल-सानी ।
आसिष दीन्हि राम-प्रिय जाना । होहु तात बल-सील-निधाना ।
अजर अमर गुन-निधि सुत होहू । करहिँ बहुत रघु-नायक छोहू ।
करहिँ कृपा प्रभु अस सुनि काना । निर्भर प्रेम-मगन हनुमाना ।
बार बार नायेसि पद सीसा । बोला बचन जोरि कर कीसा ।
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता । आसिष तव अमोघ बिख्याता ।
सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा । लागि देखि सुंदर फल रूखा ।
सुनु सुत करहिँ बिपिन-रखवारी । परम-सुभट रजनीचर भारी ।
तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीँ । जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीँ ।

दो०—देखि बुद्धि-बल-निपुन कपि, कहेउ जानकी जाहु ।
रघु-पति-चरन हृदय धरि, तात मधुर फल खाहु ॥ १४ ॥

चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा । फल खायेसि तरु तोरइ लागा ।
रहे तहाँ बहु भट रखवारे । कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे ।

नाथ एक आवा कपि भारी। तेहि असोक-बाटिका उजारी।
खायेसि फल अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे।
सुनि रावन पठये भट नाना। तिन्हहिँ देखि गर्जेउ हनुमाना।
सब रजनीचर कपि संघारे। गये पुकारत कछु अध-मारे।
पुनि पठयेउ तेहि अछय-कुमारा। चला संग लेइ सुभट अपारा।
आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महा धुनि गर्जा।

दो०—कछु मारेसि कछु मर्देसि, कछु मिलयेसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे, प्रभु मर्कट बल-भूरि॥ १५॥

सुनि सुत-बध लंकेस रिसाना। पठयेसि मेघनाद बलवाना।
मारेसि जनि सुत बाँधे ताही। देखिय कपिहि कहाँ कर आही।
चला इंद्रजित अ-तुलित-जोधा। बंधु-निधन सुनि उपजा क्रोधा।
कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा।
अति बिसाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेस-कुमारा।
रहे महा-भट ता के संगा। गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा।
तिन्हहिँ निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुँ गज-राजा।
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई।
उठि बहोरि कीन्हेसि बहु माया। जीति न जाय प्रभंजन-जाया।

दो०—ब्रह्म अस्त्र तेहि साधा, कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्म-सर मानउँ, महिमा मिटइ अपार॥ १६॥

ब्रह्म-बान कपि कहँ तेहि मारा। परतिहुँ बार कटकु सँहारा।
तेहि देखा कपि मुरछित भयऊ। नाग-पास बाँधेसि लेइ गयऊ।
कपि-बंधन सुनि निसिचर धाये। कौतुक लागि सभा सब आये।
दस-मुख-सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई।

कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता।
देखि प्रताप न कपि-मन संका। जिमि अहि-गन महँ गरुड़ असंका।

दो०—कपिहि बिलोकि दसानन, बिहँसा कहि दुर्बाद।
सुत-बध-सुरति कीन्ह पुनि, उपजा हृदय बिषाद॥ १७॥

कह लंकेस कवन तैं कीसा। केहि के बल घालेहि बन खीसा।
कीधौं स्रवन सुने नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही।
मारे निसिचर केहि अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कै बाधा।
सुनु रावन ब्रह्मांड-निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया।
जा के बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दस-सीसा।
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन।
धरे जो बिबिध देह सुर-त्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावन-दाता।
हर-कोदंड कठिन जेहि भंजा। तेहि समेत नृप-दल-मद गंजा।
खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अ-तुलित-बल-साली।

दो०—जाके बल-लवलेश तें, जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि, हरि आनेहु प्रिय नारि॥ १८॥

जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई।
समर बालि सन करि जस पावा। सुनि कपि-बचन बिहँसि बहरावा।
खायउँ फल प्रभु लागी भूखा। कपि-सुभाव तें तोरेउँ रूखा।
सब के देह परम-प्रिय स्वामी। मारहिँ मोहि कु-मारग-गामी।
जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउ तनय तुम्हारे।
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा।
बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन।
देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तज भजहु भगत-भय-हारी।
जा के डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई।



लंका-दहन ।

ता सों बैर कबहुँ नहिँ कीजै। मोरे कहे जानकी दीजै।
जदपि कही कपि अतिहित बानी। भगति-बिबेक-बिरति-नय- सानी।
बोला बिहँसि महा अभिमानी। मिला हमहिँ कपि गुरु बड़ ज्ञानी।
मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही।
उलटा होइहि कह हनुमाना। मति-भ्रम तोहि प्रगट मैं जाना।
सुनि कपि-बचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना।
सुनत निसाचर मारन धाये। सचिवन्ह सहित बिभीषन आये।
नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति-बिरोध न मारिय दूता।
आन दंड कछु करिय गोसाईं। सबही कहा मंत्र भल भाई।
सुनत बिहँसि बोला दस-कंधर। अंग-भंग करि पठइय बंदर।

दो०—कपि कै ममता पूँछि पर, सबहिं कहेउ समुझाय।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि, पावक देहु लगाय ॥ १९ ॥

पूँछ-हीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहिं लेइ आइहि।
जिन्ह कै कीन्हेसि बहुत बड़ाई। देखउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई।
बचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना।
जातुधान सुनि रावन-बचना। लागे रचइ मूढ़ सोइ रचना।
रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछि कीन्ह कपि खेला।
कौतुक कहँ आयं पुर-बासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी।
बाजहिं ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछि प्रजारी।
पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघु रूप तुरंता।
निबुकि चढ़ेउ कपि कनक-अटारी। भईं सभीत निसा-चर-नारी।

दो०—हरि-प्रेरित तेहि अवसर, चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा, कपि बढ़ि लाग अकास ॥ २० ॥

देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई।

जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला।
तात मातु हा सुनिय पुकारा। एहि अवसर को हमहिं उबारा।
हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर-रूप धरे सुर कोई।
साधु-अवज्ञा कर फल ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा।
जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं।
ता कर दूत अनल जेहि सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा।
उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मँझारी।

दो०—पूँछि बुझाइ खोइ स्रम, धरि लघु रूप बहोरि।
जनक-सुता के आगे, ठाढ़ भयउ कर जोरि॥ २१॥

मातु मोहि दीजै कछु चीन्हा। जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा।
चूड़ा-मनि उतारि तब दयऊ। हरष-समेत पवन-सुत लयऊ।
कहेउ तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरन-कामा।
दीन-दयालु बिरुद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी।
तात सक्र-सुत-कथा सुनायहु। बान-प्रताप प्रभुहिं समुझायहु।
मास दिवस महुँ नाथ न आवा। तौ पुनि मोहि जियत नहिं पावा।
कहु कपि केहि बिधि राखउँ प्राना। तुम्हहूँ तात कहत अब जाना।
तोहि देखि सीतल भइ छाती। पुनि मो कहुँ सोइ दिनु सोइ राती।

दो०—जनक-सुतहिँ समुझाइ करि, बहु बिध धीरजु दीन्ह।
चरन-कमल सिरु नाइ कपि, गवनु राम पहिं कीन्ह॥ २२॥

चलत महा-धुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसि-चर-नारी।
नाँघि सिंधु एहि पारहिं आवा। सबद किलकिला कपिन्ह सुनावा।
हरषे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जनम कपिन्ह तब जाना।
मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा।
मिले सकल अति भये सुखारी। तलफत मीन पाव जनु बारी।

चले हरषि रघुनायक पासा । पूछत कहत नवल इतिहासा ।
आइ सबन्हि नावा पद सीसा । मिले सबन्हि अति प्रेम कपीसा ।
राम कपिन्ह जब आवत देखा । किये काजु मन हरष बिसेखा ।
फटिक-सिला बैठे दोउ भाई । परे सकल कपि चरनन्हि जाई ।

दो०—प्रीति-सहित सब भेंटे, रघुपति करुना-पुंज ।
पूछी कुसल नाथ अब, कुसल देखि पद-कंज ॥ २३ ॥

जामवंत कह सुनु रघुराया । जापर नाथ करहु तुम्ह दाया ।
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर । सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर ।
सोइ बिजई बिनई गुन-सागर । तासु सुजसु त्रय-लोक-उजागर ।
प्रभु की कृपा भयेउ सबु काजू । जनम हमार सुफल भा आजू ।
नाथ पवन-सुत कीन्हि जो करनी । सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी ।
पवन-तनय के चरित सुहाये । जामवंत रघुपतिहि सुनाये ।
सुनत कृपा-निधि मन अति भाये । पुनि हनुमान हरषि हिय लाये ।
कहहु तात केहि भाँति जानकी । रहति करति रच्छा स्व-प्रान की ।

दो०—नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज-पद-जंत्रित, जाहिँ प्रान केहि बाट ॥ २४ ॥

चलत मोहि चूड़ा-मनि दीन्ही । रघुपति हृदय लाइ सोइ लीन्ही ।
नाथ जुगल-लोचन भरि बारी । बचन कहे कछु जनक-कुमारी ।
अनुज-समेत गहेहु प्रभु-चरना । दीन-बंधु प्रनतारति-हरना ।
मन क्रम बचन चरन-अनुरागी । केहि अपराध नाथ हौं त्यागी ।
अवगुन एक मोर मैं जाना । बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना ।
नाथ सो नयनन्हि कर अपराधा । निसरत प्रान करहिँ हठि बाधा ।
बिरह अगिनि तनु तूल समीरा । स्वास जरइ छन माहँ सरीरा ।

नयन स्रवहिँ जल निज हित लागी । जरइ न पाव देह बिरहागी ।
सीता कै अति बिपति बिसाला । बिनहिँ कहे भलि दीन-दयाला ।
दो०—निमिष निमिष करुना-निधि, जाहिँ कलप-सम बीति ।
बेगि चलिय प्रभु आनिय, भुज-बल खल-दल जीति ॥ २५ ॥
सुनि सीता-दुख प्रभु सुख-अयना । भरि आये जल राजिव-नयना ।
सुनु कपि तोहि समान उपकारी । नहिँ कोउ सुर नर मुनि तनु-धारी ।
प्रति-उपकार करउँ का तोरा । सनमुख होइ न सकत मन मोरा ।
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं । देखेउँ करि बिचार मन माहीं ।
पुनि पुनि कपिहि चितव सुर-त्राता । लोचन नीर पुलक अति गाता ।
दो०—सुनि प्रभु-बचन बिलोकि मुख, गात हरषि हनुमंत ।
चरन परेउ प्रेमाकुल, त्राहि त्राहि भगवंत ॥२६॥
बार बार प्रभु चहहिं उठावा । प्रेम-मगन तेहि उठब न भावा ।
कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा । कर गहि परम निकट बैठावा ।
कहु कपि रावन-पालित लंका । केहि बिधि दहेहु दुर्ग अति बंका ।
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना । बोला बचन बि-गत-अभिमाना ।
साखा-मृग कै बड़ि मनुसाई । साखा ते साखा पर जाई ।
नाँघि सिंधु हाटकपुर जारा । निसि-चर-गन बधि बिपिन उजारा ।
सो सब तव प्रताप रघुराई । नाथ न कछु मोरी प्रभुताई ।
तब रघुपति कपि-पतिहिं बुलावा । कहा चलइ कर करहु बनावा ।
अब बिलंब केहि कारन कीजै । तुरत कपिन्ह कहँ आयसु दीजै ।
दो०—कपि-पति बेगि बोलाये, आये जूथप जूथ ।
नाना बरन अ-तुल-बल, बानर-भालु-बरूथ ॥२७॥
प्रभु-पद-पंकज नावहिं सीसा । गर्जहिं भालु महा बल कीसा ।
देखी राम सकल कपि-सैना । चितइ कृपा करि राजिव-नैना ।

राम - कृपा - बल पाइ कपिंदा । भये पच्छ-जुत मनहुँ गिरिंदा ।
हरषि राम तब कीन्ह पयाना । सगुन भये सुंदर सुभ नाना ।
चला कटकु को बरनइ पारा । गर्जहिं बानर भालु अपारा ।
नख-आयुध गिरि - पादप - धारी । चले गगन महि इच्छाचारी ।
केहरि-नाद भालु कपि करहीं । डगमगाहिं दिग्गज चिकरहीं ।

दो०—एहि बिधि जाइ कृपा-निधि, उतरे सागर तीर ।
जहँ तहँ लागे खान फल, भालु बिपुल कपि बीर ॥२८॥

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका । जब तें जारि गयउ कपि लंका ।
निज निज गृह सब करहिं बिचारा । नहि निसि-चर-कुल केर उबारा ।
जासु दूत-बल बरनि न जाई । तेहि आये पुर कवन भलाई ।
रावन सुना सेन सब आई । चलेउ सभा ममता अधिकाई ।
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू । ते सब हँसे मष्ट करि रहहू ।
अवसर जानि बिभीषनु आवा । भ्राता - चरन सीसु तेहि नावा ।
पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन । बोला बचन पाइ अनुसासन ।
जौं कृपालु पूँछेहु मोहि बाता । मति-अनुरूप कहउँ हित ताता ।
जो आपन चाहइ कल्याना । सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना ।
सो पर-नारि-लिलारु गोसाईं । तजइ चौथि के चंद कि नाईं ।
चौदह-भुवन एक पति होई । भूत-द्रोह तिष्ठइ नहिं सोई ।
गुन-सागर नागर नर जोऊ । अलप लोभ भल कहइ न कोऊ ।

दो०—तात चरन गहि माँगऊँ, राखहु मोर दुलार ।
सीता देहु राम कहुँ, अहित न होइ तुम्हार ॥२९॥

सुनत दसानन उठा रिसाई । खल तोहि निकट मृत्यु अब आई ।
जियसि सदा सठ मोर जियावा । रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा ।
कहसि न खल अस को जग माहीं । भुज-बल जेहि जीता मैं नाहीं ।

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहिं कहु नीती।
यह सुनि चला बिभीषनु जबहीं। आयू-हीन भये सब तबहीं।
रावन जबहिं बिभीषनु त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा।
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं।
कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपु-दूत बिसेखा।
ताहि राखि कपीस पहिं आये। समाचार सब ताहि सुनाये।
कह सुग्रीवँ सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई।
कह प्रभु सखा बूझिये काहा। कहइ कपीस सुनहु नर-नाहा।
जानि न जाय निसाचर-माया। काम-रूप केहि कारन आया।
भेद हमार लेन सठ आवा। राखिय बाँधि मोहि अस भावा।
सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत-भय-हारी।
सुनि प्रभु-बचन हरष हनुमाना। सरनागत-बच्छल भगवाना।
जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं।
सादर तेहि आगे करि बानर। चले जहाँ रघु-पति करुनाकर।
दूरहिं तें देखे दोउ भ्राता। नयनानंद-दान के दाता।
नयन नीर पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता।
नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर-बंस-जनम सुर-त्राता।
सहज-पाप-प्रिय तामस-देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा।

दो०—स्रवन सुजसु सुनि आयउँ, प्रभु भंजन भव-भीर।
त्राहि त्राहि आरति-हरन, सरन-सुखद रघुबीर ॥२०॥

अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिसेखा।
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदय लगावा।
अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले बचन भगत-भय-हारी।
कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा।

खल-मंडली बसहु दिनु राती । सखा धर्म निबहइ केहि भाँती ।
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती । अति-नय-निपुन न भाव अनीती ।
बरु भल बास नरक कर ताता । दुष्ट संग जनि देइ बिधाता ।
अब पद देखि कुसल रघुराया । जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दाया ।

दो०—तब लगि कुसल न जीव कहुँ, सपनेहुँ मन बिस्राम ।
जब लगि भजत न राम कहुँ, सोक धाम तजि काम ॥३१॥

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ । जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ ।
जौं नर होइ चराचर-द्रोही । आवइ सभय सरन तकि मोही ।
तजि मद मोह कपट छल नाना । करउँ सद्य तेहि साधु-समाना ।
सुनु लंकेस सकल गुन तोरे । ता तें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरे ।
सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी । नहिं अघात स्रवनामृत जानी ।
पद-अंबुज गहि बारहिं बारा । हृदय समात न प्रेमु अपारा ।
सुनहु देव स-चराचर-स्वामी । प्रनत-पाल उर-अंतर-जामी ।
उर कछु प्रथम बासना रही । प्रभु-पद-प्रीति-सरित सो बही ।
अब कृपाल निज भगति पावनी । देहु सदा सिव-मन-भावनी ।
एवमस्तु कहि प्रभु रन-धीरा । माँगा तुरत सिंधु कर नीरा ।
जदपि सखा तव इच्छा नाहीं । मोर दरसु अमोघ जग माहीं ।
अस कहि राम तिलक तेहि सारा । सुमन-वृष्टि नभ भई अपारा ।
पुनि सर्वज्ञ सर्ब-उर-बासी । सर्ब-रूप सब-रहित उदासी ।
बोले बचन नीति-प्रति-पालक । कारन-मनुज दनुज-कुल-घालक ।
सुनु कपीस लंका-पति बीरा । केहि बिधि तरिय जलधि गंभीरा ।
कह लंकेस सुनहु रघु-नायक । कोटि-सिंधु-सोषक तव सायक ।
जद्यपि तदपि नीति अस गाई । बिनय करिय सागर सन जाई ।

दो०—प्रभु तुम्हार कुल-गुरु जलधि, कहहि उपाय विचारि।
विनु प्रयास सागर तरिहि, सकल भालु-कपि-धारि ॥३२॥

सखा कही तुम्ह नीकि उपाई। करिय दैव जौं होइ सहाई।
मंत्र न यह लछिमन-मन भावा। राम-बचन सुनि अति दुख पावा।
नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोखिय सिंधु करिय मन रोसा।
कादर-मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा।
सुनत बिहँसि बोले रघुबीरा। ऐसइ करब धरहु मन धीरा।
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिंधु समीप गये रघुराई।
प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई।

दो०—बिनय न मानत जलधि जड़, गये तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति ॥ ३३ ॥

लछिमन बान-सरासन आनू। सोखउँ बारिधि बिसिख-कृसानू।
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपिन सन सुंदर नीती।
ममता-रत सन ज्ञान-कहानी। अति-लोभी सन बिरति बखानी।
क्रोधिहिं सम कामिहिं हरि-कथा। ऊसर बीज बयें फल जथा।
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमन के मन भावा।
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर-अंतर ज्वाला।
मकर-उरग-झष-गन अकुलाने। जरत जंतु जल-निधि जब जाने।
कनक-थार भरि मनि-गन नाना। बिप्र-रूप आयउ तजि माना।

दो०—काटेहि पइ कदली फरइ, कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु, डाँटेहि पै नव नीच ॥ ३४ ॥

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे।
गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी।
तव प्रेरित माया उपजाये। सृष्टि हेतु सब ग्रंथन्हि गाये।

प्रभु-आयसु जेहि कहँ जस अहई । सो तेहि भाँति रहे सुख लहई ।
प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही । मरजादा पुनि तुम्हरिय कीन्ही ।
ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी । सकल ताड़ना के अधिकारी ।
प्रभु-प्रताप मैं जाब सुखाई । उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई ।
प्रभु आज्ञा अपेल स्रुति गाई । करउँ सो बेगि जो तुम्हहिं सुहाई ।

दो०—सुनत बिनीत बचन अति, कह कृपाल मुसुकाइ ।
जेहि बिधि उतरइ कपि-कटकु, तात सो कहहु उपाय ॥ ३५ ॥

नाथ नील नल कपि दोउ भाई । लरिकाई रिषि-आसिष पाई ।
तिन्ह के परस किये गिरि भारे । तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे ।
मैं पुनि उर धरि प्रभु - प्रभुताई । करिहउँ बल-अनुमान सहाई ।
एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइय । जेहि यह सुजसु लोक तिहुँ गाइय ।
एहि सर मम उत्तर-तट-बासी । हतहु नाथ खल नर अघ-रासी ।
सुनि कृपाल सागर-मन-पीरा । तुरतहि हरी राम रन-धीरा ।
देखि राम-बल-पौरुष भारी । हरषि पयो-निधि भयउ सुखारी ।
सकल चरित कहि प्रभुहिं सुनावा । चरन बंदि पाथोधि सिधावा ।

लंका कांड ।

दो०—लव-निमेष परमान जुग, बरष कल्प सर चंड ।
भजसि न मन तेहि राम कहँ, काल जासु कोदंड ॥ १ ॥
सो०—सिंधु-बचन सुनि राम, सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ ।
अब बिलंबु केहि काम, करहु सेतु उतरइ कटक ॥ २ ॥

जामवंत बोले दोउ भाई । नल नीलहिं सब कथा सुनाई ।
राम-प्रताप सुमिरि मन माहीँ । करहु सेतु प्रयास कछु नाहीँ ।
बोलि लिये कपि-निकर बहोरी । सकल सुनहु बिनती कछु मोरी ।
राम-चरन-पंकज उर धरहू । कौतुक एक भालु कपि करहू ।
धावहु मरकट बिकट-बरूथा । आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा ।
सुनि कपि भालु चले करि हूहा । जय रघुबीर प्रताप-समूहा ।

दो०—अति उतंग तरु-सैल-गन, लीलहिँ लेहिँ उठाइ ।
आनि देहिँ नल नीलहि, रचहिँ ते सेतु बनाइ ॥ ३ ॥

सैल बिसाल आनि कपि देहीँ । कंदुक इव नल नील ते लेहीँ ।
देखि सेतु अति-सुंदर-रचना । बिहँसि कृपा-निधि बोले बचना ।
परम रम्य उत्तम यह धरनी । महिमा अमित जाइ नहिँ बरनी ।
करिहउँ इहाँ संभु-थापना । मोरे हृदय परम कलपना ।
सुनि कपीस बहु दूत पठाये । मुनि-बर सकल बोलि लेइ आये ।
लिंग थापि बिधिवत कर पूजा । सिव-समान प्रिय मोहि न दूजा ।
सिव-द्रोही मम भगत कहावा । सो नर सपनेहु मोहि न पावा ।
शंकर-बिमुख भगति चह मोरी । सो नारकी मूढ़ मति थोरी ।

दो०—शंकर-प्रिय मम द्रोही, सिव-द्रोही मम दास ।
ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक महँ बास ॥ ४ ॥

बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा । देखि कृपा-निधि के मन भावा ।
चली सेन कछु बरनि न जाई । गरजहिं मरकट-भट-समुदाई ।
सेतु-बंध ढिग चढ़ि रघुराई । चितव कृपाल सिंधु-बहुताई ।
देखन कहँ प्रभु करुना-कंदा । प्रगट भयं सब जल-चर-बृंदा ।
मकर नक्र झख नाना ब्याला । सत-जोजन-तन परम-बिसाला ।
ऐसेउ एक तिन्हहिं जे खाहीं । एकन्ह के डर तेपि डेराहीं ।
प्रभुहिं बिलोकहिं टरहिं न टारे । मन हरषित सब भयं सुखारे ।
तिन्ह की ओट न देखिय बारी । मगन भयं हरि-रूप निहारी ।
चला कटक कछु बरनि न जाई । को कहि सक कपि-दल-बिपुलाई ।

दो०—सेतुबंध भइ भीर अति, कपि नभ-पंथ उड़ाहिं ।
अपर जलचरन्हि ऊपर, चढ़ि चढ़ि पारहिं जाहिं ॥ ५ ॥

अस कौतुक बिलोकि दोउ भाई । बिहँसि चले कृपाल रघुराई ।
सेन-सहित उतरे रघुबीरा । कहि न जाइ कपि-जूथप-भीरा ।
सिंधु-पार प्रभु डेरा कीन्हा । सकल कपिन्ह कहँ आयसु दीन्हा ।
खाहु जाइ फल मूल सुहायं । सुनत भालु कपि जहँ तहँ धाये ।
सब तरु फरे राम-हित लागी । रितु अनरितु अकाल-गति त्यागी ।
खाहिं मधुर-फल बिटप हलावहिं । लंका सनमुख सिखर चलावहिं ।
जहँ कहुँ फिरत निसाचर पावहिं । घेरि सकल बहु नाच नचावहिं ।
दसनन्हि काटि नासिका काना । कहि प्रभु-सुजस देहिं तब जाना ।
जिन्ह कर नासा कान निपाता । तिन्ह रावनहिं कही सब बाता ।
सुनत स्रवन बारिधि-बंधाना । दस-मुख बोलि उठा अकुलाना ।

दो०—बाँधे बन-निधि नीर-निधि, जलधि सिंधु बारीस ।
सत्य तोय-निधि कंपती, उदधि पयोधि नदीस ॥ ६ ॥

व्याकुलता निज समुझि बहोरी । बिहँसि चला गृह करि भय भोरी ।
मंदोदरी सुनेउ प्रभु आयो । कौतुकहीं पाथोधि बँधायो ।
कर गहि पतिहि भवन निज आनी । बोली परम मनोहर बानी ।
चरन नाइ सिरु अंचल रोपा । सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा ।
नाथ बैर कीजै ताही सों । बुधि-बल सकिय जीति जाही सों ।
तुम्हहिं रघुपतिहिं अंतर कैसा । खल खद्योत दिनकरहिं जैसा ।
अति-बल मधुकैटभ जेहि मारे । महाबीर दिति-सुत संहारे ।
जेइ बलि बाँधि सहस-भुज मारा । सोइ अवतरेउ हरन महि-भारा ।
तासु बिरोध न कीजिय नाथा । काल करम जिव जा के हाथा ।

दो०—रामहिं सौंपिय जानकी, नाइ कमल-पद माथ ।
सुत कहँ राजु समर्पि बन, जाइ भजिय रघुनाथ ॥ ७ ॥

नाथ दीन-दयाल रघुराई । बाघउ सनमुख गये न खाई ।
चाहिय करन सो सब करि बीते । तुम्ह सुर असुर चराचर जीते ।
संत कहहिं असि नीति दसानन । चौथे पन जाइहि नृप कानन ।
तासु भजन कीजिय तहँ भरता । जो करता पालक संहरता ।
सोइ रघुबीर प्रनत-अनुरागी । भजहु नाथ ममता सब त्यागी ।
मुनि-बर जतन करहिं जेहि लागी । भूप राज तजि होहिं बिरागी ।
सोइ कोसलाधीस रघुराया । आयउ करन तोहि पर दाया ।
जो पिय मानहु मोर सिखावन । होइ सुजसु तिहुँ पुर अति पावन ।

दो०—अस कहि लोचन बारि भरि, गहि पद कंपित-गात ।
नाथ भजहु रघु-बीर-पद, अचल होइ अहिवात ॥ ८ ॥

तब रावन मय-सुता उठाई । कहइ लाग खल निज प्रभुताई ।

सुनु तैं प्रिया वृथा भय माना। जग जोधा को मोहि समाना।
बरुन कुबेर पवन जम काला। भुज-बल जितेउँ सकल दिग-पाला।
देव दनुज नर सब बस मोरे। कवन हेतु उपजा भय तोरे।
नाना बिधि तेहि कहेसि बुझाई। सभा बहोरि बैठि सो जाई।
मंदोदरी हृदय अस जाना। काल-बिवस उपजा अभिमाना।
सभा आइ मंत्रिन्ह तेहि बूझा। करब कवनि बिधि रिपु सैं जूझा।
कहहिँ सचिव सुनु निसिचर-नाहा। बार बार प्रभु पूछहु काहा।
कहहु कवन भय करिय बिचारा। नर कपि भालु अहार हमारा।

दो०—बचन सबहिँ के स्रवन सुनि, कह प्रहस्त कर जोरि।
नीति-बिरोध न करिय प्रभु, मंत्रिन्ह मति अति थोरि ॥९॥

कहहिँ सचिव सब ठकुर-सोहाती। नाथ न पूर आव एहि भाँती।
बारिध नाँघि एक कपि आवा। तासु चरित मन महँ सब गावा।
छुधा न रही तुम्हहिँ तब काहू। जारत नगर कस न धरि खाहू।
सुनत नीक आगे दुख पावा। सचिवन्ह अस मत प्रभुहिँ सुनावा।
जेहि बारीस बँधायउ हेला। उतरेउ सेन समेत सुबेला।
सो भनु मनुज खाव हम भाई। बचन कहहिँ सब गाल फुलाई।
तात बचन मम सुनु अति आदर। जनि मन गुनहुँ मोहि करि कादर।
प्रिय-बानी जे सुनहिँ कहहीँ। ऐसे नर निकाय जग अहहीँ।
बचन परम-हित सुनत कठोरे। सुनहिँ जे कहहिँ ते नर प्रभु थोरे।
प्रथम बसीठ पठव सुनु नीती। सीता देइ करहु पुनि प्रीती।

दो०—नारि पाइ फिरि जाहिँ जौं, तौ न बढ़ाइय रारि।
नाहिँ त सनमुख समर महि, तात करिय हठि मारि ॥ १० ॥

यह मत जौं मानहु प्रभु मोरा। उभय प्रकार सुजस जग तोरा।
सुत सन कह दसकंठ रिसाई। असि मति सठ केहि तोहि सिखाई।

अबहीं तें उर संसय होई । वेनु-मूल सुत भयउ घमोई ।
सुनि पितु-गिरा परुष अति घोरा । चला भवन कहि बचन कठोरा ।
हित-मत तोहि न लागत कैसे । काल-बिबस कहुँ भेषज जैसे ।
संध्या-समय जानि दससीसा । भवन चलेउ निरखत भुज-बीसा ।
लंका सिखर उपर आगारा । अति बिचित्र तहँ होइ अखारा ।
बैठ जाइ तेहि मंदिर रावन । लागे किन्नर गुन-गन गावन ।
बाजहिं ताल पखाउज बीना । नृत्य करहिं अपसरा प्रबीना ।

दो०—सुनासीर-सत-सरिस सोइ, संतत करइ बिलास ।
परम-प्रबल-रिपु सीस पर, तदपि न कछु मन त्रास ॥ ११ ॥

इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा । उतरे सेन-सहित अति भीरा ।
सैल-सृंग एक सुंदर देखी । अति उतंग सम सुभ्र बिसेखी ।
तहँ तरु-किसलय-सुमन सुहाये । लछिमन रचि निज हाथ डसाये ।
ता पर रुचिर मृदुल मृग-छाला । तेहि आसन आसीन कृपाला ।
प्रभु कृत सीस कपीस-उछंगा । बाम दहिन दिसि चाप निषंगा ।
दुहुँ कर-कमल सुधारत बाना । कह लंकेस मंत्र लगि काना ।
बड़-भागी अंगद हनुमाना । चरन-कमल चाँपत बिधि नाना ।
प्रभु पाछे लछिमन बीरासन । कटि निषंग कर बान सरासन ।

दो०—एहि बिधि करुनासील गुन,-धाम राम आसीन ।
ते नर धन्य जे ध्यान एहि, रहत सदा लयलीन ॥ १२ ॥
पूरब दिसा बिलोकि प्रभु, देखा उदित मयंक ।
कहत सबहिं देखहु ससिहि, मृग-पति-सरिस असंक ॥ १३ ॥

पूरब दिसि गिरि-गुहा-निवासी । परम - प्रताप तेज - बल-रासी ।
मत्त-नाग - तम - कुंभ - बिदारी । ससि केसरी गगन-बन-चारी ।
बिथुरे नभ मुकुताहल तारा । निसि सुंदरी केर सिंगारा ।

कह प्रभु ससि महँ मेचकताई। कहहु काह निज निज मति भाई।
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि महँ प्रगट भूमि कै झाँई।
मारेउ राहु ससिहि कह कोई। उर महँ परी स्यामता सोई।
कोउ कह जब बिधि रति-मुख कीन्हा। सार-भाग ससि कर हरि लीन्हा।
छिद्र सो प्रगट इंदु-उर माहीं। तेहि मग देखिय नभ परिछाहीं।
प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा।
बिष-संयुत कर-निकर पसारी। जारत बिरहवंत नर-नारी।

दो०—कह मारुत-सुत सुनहु प्रभु, ससि तुम्हार निज दास।
तव मूरति बिधु-उर बसति, सोइ स्यामता-अभास ॥ १४ ॥
पवन-तनय के बचन सुनि, बिहँसे राम सुजान।
दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु, बोले कृपा-निधान ॥ १५ ॥

देखु बिभीषन दच्छिन आसा। घन - घमंड दामिनी बिलासा।
मधुर मधुर गरजइ घन घोरा। होइ बृष्टि जनु उपल कठोरा।
कहइ बिभीषन सुनहु कृपाला। तड़ित न होइ न बारिद-माला।
लंका-सिखर रुचिर आगारा। तहँ दसकंधर देख अखारा।
छत्र मेघडंबर सिर धारी। सोइ जनु जलद-घटा अति कारी।
मंदोदरी - स्रवन - ताटंका। सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका।
बाजहिं ताल मृदंग अनूपा। सोइ रव मधुर सुनहु सुर-भूपा।
प्रभु मुसुकान समुझि अभिमाना। चाप चढ़ाइ बान संधाना।

दो०—छत्र मुकुट ताटंक तब, हते एकही बान।
सब के देखत महि परे, मरम न कोऊ जान ॥ १६ ॥
अस कौतुक करि राम-सर, प्रबिसेउ आइ निषंग।
रावन-सभा ससंक सब, देखि महा-रस-भंग ॥ १७ ॥

कंप न भूमि न मरुत बिसेखा। अस्त्र सस्त्र कछु नयन न देखा।

सोचहिँ सब निज हृदय मँझारी। असगुन भयउ भयंकर भारी।
दसमुख देखि सभा भय पाई। बिहँसि बचन कह जुगुति बनाई।
सिरउ गिरे संतत सुभ जाही। मुकुट खसे कस असगुन ताही।
सयन करहु निज निज गृह जाई। गवने भवन सकल सिर नाई।
इहाँ प्रात जागे रघुराई। पूछा मत सब सचिव बोलाई।
कहहु बेगि का करिय उपाई। जामवंत कह पद सिरु नाई।
सुनु सर्वज्ञ सकल-उर-बासी। बुधि-बल-तेज-धर्म-गुन-रासी।
मंत्र कहउँ निज-मति-अनुसारा। दूत पठाइय बालि-कुमारा।
नीक मंत्र सब के मन माना। अंगद सन कह कृपा-निधाना।
बालि-तनय बुधि-बल-गुन-धामा। लंका जाहु तात मम कामा।
बहुत बुझाइ तुम्हहिँ का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ।
काज हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई।

सो०—प्रभु-अज्ञा धरि सीस, चरन बंदि अंगद उठेउ।
सोइ गुन-सागर ईस, राम कृपा जा पर करहु ॥१८॥
स्वयं-सिद्ध सब काज, नाथ मोहि आदर दियेउ।
अस बिचारि जुवराज, तनु पुलकित हरषित हिये ॥१९॥

बंदि चरन उर धरि प्रभुताई। अंगद चलेउ सबहिँ सिरु नाई।
प्रभु-प्रताप उर सहज असंका। रन-बाँकुरा बालि-सुत बंका।
पुर पैठत रावन कर बेटा। खेलत रहा सो होइ गइ भेंटा।
बातहिँ बात करष बढ़ि आई। जुगल अतुल-बल पुनि तरुनाई।
तेहिँ अंगद कहँ लात उठाई। गहि पद पटकेउ भूमि भवाँई।
निसि-चर-निकर देखि भट भारी। जहँ तहँ चले न सकहिँ पुकारी।
एक एक सन मरम न कहहीं। समुझि तासु बध चुप करि रहहीं।
भयउ कोलाहल नगर मँझारी। आवा कपि लंका जेहि जारी।

अब धौं काह करिहि करतारा। अति सभीत सब करहिँ बिचारा।
बिनु पूछे मग देहिँ देखाई। जेहि बिलोक सोइ जाइ सुखाई।

दो०—गयउ सभा-दरबार तब, सुमिरि राम पद-कंज।
सिंह-ठवनि इत उत चितव, धीर-बीर-बल-पुंज॥ २०॥

तुरित निसाचर एक पठावा। समाचार रावनहिँ जनावा।
सुनत बिहँसि बोला दस-सीसा। आनहु बोलि कहाँ कर कीसा।
आयसु पाइ दूत बहु धाये। कपि-कुंजरहि बोलि लेइ आये।
अंगद दीख दसानन बैसा। सहित प्रान कज्जल-गिरि जैसा।
भुजा बिटप सिर सृंग समाना। रोमावली लता जनु नाना।
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि-कंदरा खोह अनुमाना।
गयउ सभा मन नेकु न मुरा। बालि-तनय अति-बल बाँकुरा।
उठे सभासद कपि कहँ देखी। रावन-उर भा क्रोध बिसेखी।

दो०—जथा मत्त-गज-जूथ महँ, पंचानन चलि जाइ।
राम-प्रताप सँभारि उर, बैठ सभा सिरु नाइ॥ २१॥

कह दसकंठ कवन तैं बंदर। मैं रघु-बीर-दूत दस-कंधर।
मम जनकहि तोहि रही मिताई। तव हित-कारन आयउँ भाई।
उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती। सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती।
बर पायहु कीन्हेहु सब काजा। जीतेहु लोक-पाल सब राजा।
नृप-अभिमान मोह-बस किंबा। हरि आनेहु सीता जगदंबा।
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा। सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा।
सादर जनक-सुता करि आगे। प्रभु पहँ चलहु सकल भय त्यागे।

दो०—प्रनत-पाल रघु-बंस-मनि, त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु, अभय करहिँगे तोहि॥ २२॥

रे कपि-पोत न बोलु सँभारी। मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी।

कहु निज नाम जनक कर भाई। केहि नाते मानिये मिताई।
अंगद नाम बालि कर बेटा। ता सों कबहुँ भई होइ भेंटा।
अंगद-बचन सुनत सकुचाना। रहा बालि बानर मैं जाना।
अंगद तहीं बालि कर बालक। उपजेहु बंस अनल कुल-घालक।
गर्भ न गयउ व्यर्थ तुम्ह जायहु। निज मुख तापस-दूत कहायहु।
अब कहु कुसल बालि कहँ अहई। बिहँसि बचन तब अंगद कहई।
दिन दस गये बालि पहँ जाई। बूझेहु कुसल सखा उर लाई।
राम-बिरोध कुसल जसि होई। सो सब तोहि सुनाइहि सोई।
सुनु सठ भेद होइ मन ता के। श्री-रघु-बीर हृदय नहिँ जा के।

दो०—हम कुल-घालक सत्य तुम्ह, कुल-पालक दस-सीस।
अँधउ बहिर न अस कहहिँ, नयन कान तव बीस॥ २३॥

सिव - बिरंचि - सुर-मुनि-समुदाई। चाहत जासु चरन-सेवकाई।
तासु दूत होइ हम कुल बोरा। ऐसिहु मति उर बिहरु न तोरा।
सुनि कठोर बानी कपि केरी। कहत दसानन नयन तरेरी।
खल तव कठिन बचन सब सहऊँ। नीति-धर्म मैं जानत अहऊँ।
कह कपि धर्म-सीलता तोरी। हमहु सुनी कृत पर - त्रिय-चोरी।
देखी नयन दूत - रखवारी। बूड़ि न मरहु धर्म-ब्रत-धारी।
कान नाक बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्ह तुम्ह धर्म बिचारी।
धर्म-सीलता तव जग जागी। पावा दरस हमहुँ बड़-भागी।

दो०—जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि, सठ बिलोकु मम बाहु।
लोक-पाल-बल-बिपुल-ससि, ग्रसन हेतु सब राहु॥२४॥
पुनि नभ-सर मम कर-निकर,-कमलन्हि पर करि बास।
सोभत भयउ मराल इव, संभु-सहित कैलास॥२५॥

तुम्हरे कटक माँझ सुनु अंगद। मो सन भिरिहि कवन जोधा बद।

तव प्रभु नारि-बिरह बल-हीना । अनुज तासु दुख दुखी मलीना ।
तुम्ह सुग्रीवँ कूल-द्रुम दोऊ । अनुज हमार भीरु अति सोऊ ।
जामवंत मंत्री अति बूढ़ा । सो कि होइ अब समर अरूढ़ा ।
सिल्प-कर्म जानहिं नल नीला । है कपि एक महा-बल-सीला ।
आवा प्रथम नगर जेहि जारा । सुनि हँसि बोलेउ बालि-कुमारा ।
सत्य बचन कहु निसि-चर-नाहा । सांचेउ कीस कीन्ह पुर-दाहा ।
रावन-नगर अलप कपि दहई । सुनि अस बचन सत्य को कहई ।
जो अति सुभट सराहेहु रावन । सो सुग्रीवँ केर लघु धावन ।
चलइ बहुत सो बीर न होई । पठवा खबरि लेन हम सोई ।

दो०—सत्य कहेहु दसकंठ अब, मोहि न सुनि कछु कोह ।
कोउ न हमारे कटक अस, तो मन लरत जो सोह ॥२६॥
प्रीति बिरोध समान सन, करिय नीति असि आहि ।
जौं मृग-पति बध मेडुकन्हि, भल कि कहइ कोउ ताहि ॥२७॥
जद्यपि लघुता राम कहँ, तोहि बधे बड़ दोष ।
तदपि कठिन दस-कंठ सुनु, छत्रि-जाति कर रोष ॥२८॥
बक्र-उक्ति धनु बचन सर, हृदय दहेउ रिपु कीस ।
प्रति-उत्तर सड़सिन्ह मनहुँ, काढ़त भट दस-सीस ॥२९॥
हँसि बोलेउ दस-मौलि तव, कपि कर बड़ गुन एक ।
जो प्रतिपालइ तासु हित, करइ उपाय अनेक ॥३०॥

धन्य कीस जो निज-प्रभु-काजा । जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा ।
नाचि कूदि करि लोग रिझाई । पति-हित करइ धर्म निपुनाई ।
अंगद स्वामि-भक्त तव जाती । प्रभु-गुन कस न कहसि एहि भाँती ।
मैं गुन-गाहक परम - सु - जाना । तव कटु रटनि करउँ नहिं काना ।
कह कपि तव गुन-गाहकताई । सत्य पवन-सुत मोहि सुनाई ।

वन बिधंसि सुत बधि पुर जारा। तदपि न तेहि कछु कृत अपकारा।
सोइ बिचारि तव प्रकृति सुहाई। दस-कंधर मैं कीन्हि ढिठाई।
देखेउँ आइ जो कछु कपि भाषा। तुम्हरे लाज न रोष न माषा।
जौं असि मति पितु खायेहु कीसा। कहि अस बचन हँसा दस-सीसा।
पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही। अबहीं समुझि परा कछु मोही।
बालि-बिमल-जस-भाजन जानी। हतउँ न तोहि अधम अभिमानी।
कहु रावन रावन जग केते। मैं निज स्रवन सुने सुनु जेते।
बलिहि जितन एकु गयउ पताला। राखा बाँधि सिसुन्ह हय-साला।
खेलहिं बालक मारहिं जाई। दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई।
एक बहोरि सहसभुज देखा। धाइ धरा जिमि जंतु-बिसेखा।
कौतुक लागि भवन लेइ आवा। सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा।
दो०—एक कहत मोहि सकुच अति, रहा बालि की काँख।
तिन्ह महँ रावन तैं कवन, सत्य बदहि तजि माख॥२१॥
सुनु सठ सोइ रावन बल-सीला। हर-गिरि जान जासु भुज-लीला।
जान उमा-पति जासु सुराई। पूजेउँ जेहि सिर-सुमन चढ़ाई।
सिर-सरोज निज करन्हि उतारी। पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी।
भुज-बिक्रम जानहिं दिग-पाला। सठ अजहूँ जिन्ह के उर साला।
जानहिं दिग्गज उर-कठिनाई। जब जब भिरेउँ जाइ बरिआई।
जिन्ह के दसन करालन फूटे। उर लागत मूलक इव टूटे।
जासु चलत डोलति इमि धरनी। चढ़त मत्त-गज जिमि लघु तरनी।
सोइ रावन जग-बिदित प्रतापी। सुनेहि न स्रवन अलीक-प्रलापी।
दो०—तेहि रावन कहँ लघु कहसि, नर कर करसि बखान।
रे कपि बर्बर खर्ब खल, अब जाना तव ज्ञान॥२२॥
सुनि अंगद सकोप कह बानी। बोलु सँभारि अधम अभिमानी।

सहस-बाहु-भुज-गहन अपारा । दहन अनल-सम जासु कुठारा ।
जासु परसु-सागर-खर-धारा । बूड़े नृप अगनित बहु बारा ।
तासु गर्व जेहि देखत भागा । सो नर क्यों दस-सीस अभागा ।
रामु मनुज कस रे सठ बंगा । धन्वी कामु नदी पुनि गंगा ।
पसु सुर-धेनु कलप-तरु रूखा । अन्न-दान अरु रस पीयूखा ।
बैनतेय खग अहि सहसानन । चिंतामनि पुनि उपल दसानन ।
सुनु मति-मंद लोक बैकुंठा । लाभु कि रघु-पति-भगति-अकुंठा ।

दो०—सेन-सहित तव मान मथि, बन उजारि पुर जारि ।
कस रे सठ हनुमान कपि, गयउ जो तव सुत मारि ॥३३॥

सुनु रावन परिहरि चतुराई । भजसि न कृपा-सिंधु रघुराई ।
जौं खल भयेसि राम कर द्रोही । ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही ।
मूढ़ बृथा जनि मारसि गाला । राम-बैर होइहि अस हाला ।
तव सिर-निकर कपिन्ह के आगे । परिहहिं धरनि राम-सर लागे ।
ते तव सिर कंदुक इव नाना । खेलिहहिं भालु कीस चौगाना ।
जबहिं समर कोपिहिं रघुनायक । छुटिहहिं अति कराल बहु सायक ।
तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा । अस बिचारि भजु राम उदारा ।
सुनत बचन रावनु परजरा । जरत महानल जनु घृत परा ।

दो०—कुंभकरन अस बंधु मम, सुत प्रसिद्ध सक्रारि ।
मोर पराक्रम नहिं सुनेहि, जितउँ चराचर झारि ॥३४॥

सठ साखा-मृग जोरि सहाई । बाँधा सिंधु इहइ प्रभुताई ।
नाघहिं खग अनेक बारीसा । सूर न होहिं ते सुनु जड़ कीसा ।
मम भुज - सागर - बल - जल-पूरा । जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा ।
बीस पयोधि अगाध अपारा । को अस बीर जो पाइहि पारा ।
दिग-पालन्ह मैं नीर भरावा । भूप-सुजसु खल मोहि सुनावा ।

जौं पै समर-सुभट तव नाथा। पुनि पुनि कहसि जासु गुन-गाथा।
तौ बसीठ पठवत केहि काजा। रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा।
हर-गिरि-मथन निरखु मम बाहू। पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू।

दो०—सूर कवन रावन सरिस, स्वकर काटि जेहि सीस।
हुने अनल महँ बार बहु, हरषि साषि गौरीस ॥३५॥

जरत बिलोकेउँ जबहिं कपाला। बिधि के लिखे अंक निज भाला।
नर के कर आपन बध बाँची। हँसेउँ जानि बिधि-गिरा असाँची।
सोउ मन समुझि त्रास नहिं मोरे। लिखा बिरंचि जरठ-मति भोरे।
आन बीर-बल सठ मम आगे। पुनि पुनि कहसि लाज पति त्यागे।
कह अंगद सलज्ज जग माहीं। रावन तोहि समान कोउ नाहीं।
लाजवंत तव सहज सुभाऊ। निज मुख निज गुन कहसि न काऊ।
सिर अरु सैल कथा चित रही। ता तें बार बीस तैं कही।
सो भुज-बल राखेहु उर घाली। जीतेहु सहसबाहु बलि बाली।
सुनु मति-मंद देहि अब पूरा। काटे सीस कि होइय सूरा।
इंद्रजालि कहँ कहिय न बीरा। काटइ निज कर सकल सरीरा।

दो०—जरहिं पतंग बिमोह-बस, भार बहहिं खर-बृंद।
ते नहिं सूर कहावहिं, समुझि देखु मति-मंद ॥३६॥

अब जनि बत-बढ़ाव खल करही। सुनु मम बचन मान परिहरई।
दस-मुख मैं न बसीठी आयेउँ। अस बिचारि रघुबीर पठायेउँ।
बार बार असि कहइ कृपाला। नहिं गजारि जस बधे सृगाला।
मन महँ समुझि बचन प्रभु केरे। सहेउँ कठोर बचन सठ तेरे।
नाहिं त करि मुख-भंजन तोरा। लेइ जातेउँ सीतहिं बरजोरा।
जानेउँ तव बल अधम सुरारी। सूने हरि आनेहि पर-नारी।

तैं निसि-चर-पति गर्व-बहूता। मैं रघु-पति-सेवक कर दूता।
जौं न राम-अपमानहिं डरऊँ। तोहि देखत अस कौतुक करऊँ।

दो०—तोहि पटकि महि सेन हति, चौपट करि तव गाउँ।
तव जुवतीन्ह समेत सठ, जनक-सुतहि लेइ जाउँ ॥३७॥

जौं अस करउँ तदपि न बड़ाई। मुयेहि बधे कछु नहिं मनुसाई।
कौल काम-बस कृपिन बिमूढ़ा। अति-दरिद्र अजसी अति-बूढ़ा।
सदा रोग-बस संतत-क्रोधी। विष्णु-बिमुख स्रुति-संत-बिरोधी।
तनु-पोषक निंदक अघ-खानी। जीवत सव-सम चौदह प्रानी।
अस बिचारि खल बधउँ न तोही। अब जनि रिस उपजावसि मोही।
सुनि सकोप कह निसि-चर-नाथा। अधर दसन दसि मींजत हाथा।
रे कपि-अधम मरन अब चहसी। छोटे बदन बात बड़ि कहसी।
कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाके। बल प्रताप बुधि तेज न ता के।

दो०—अगुन अमान बिचारि तेहि, दीन्ह पिता बन-बास।
सो दुख अरु जुवती-बिरह, पुनि निसि दिन मम त्रास ॥३८॥
जिन्ह के बल कर गर्व तोहि, ऐसे मनुज अनेक।
खाहिं निसाचर दिवस निसि, मूढ़ समुझु तजि टेक ॥३९॥

जब तेहि कीन्ह राम कै निंदा। क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा।
हरि-हर-निंदा सुनइ जो काना। होइ पाप गो-घात-समाना।
कटकटान कपि-कुंजर भारी। दुहुँ भुज-दंड तमकि महि मारी।
डोलत धरनि सभासद खसे। चले भागि भय मारुत ग्रसे।
गिरत सँभारि उठा दस-कंधर। भूतल परे मुकुट अति सुंदर।
कछु तेहि लेइ निज सिरन्हि सँवारे। कछु अंगद प्रभु पास पँवारे।
आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिनहीं लूक परन बिधि लागे।
की रावन करि कोप चलाये। कुलिस चारि आवत अति धाये।

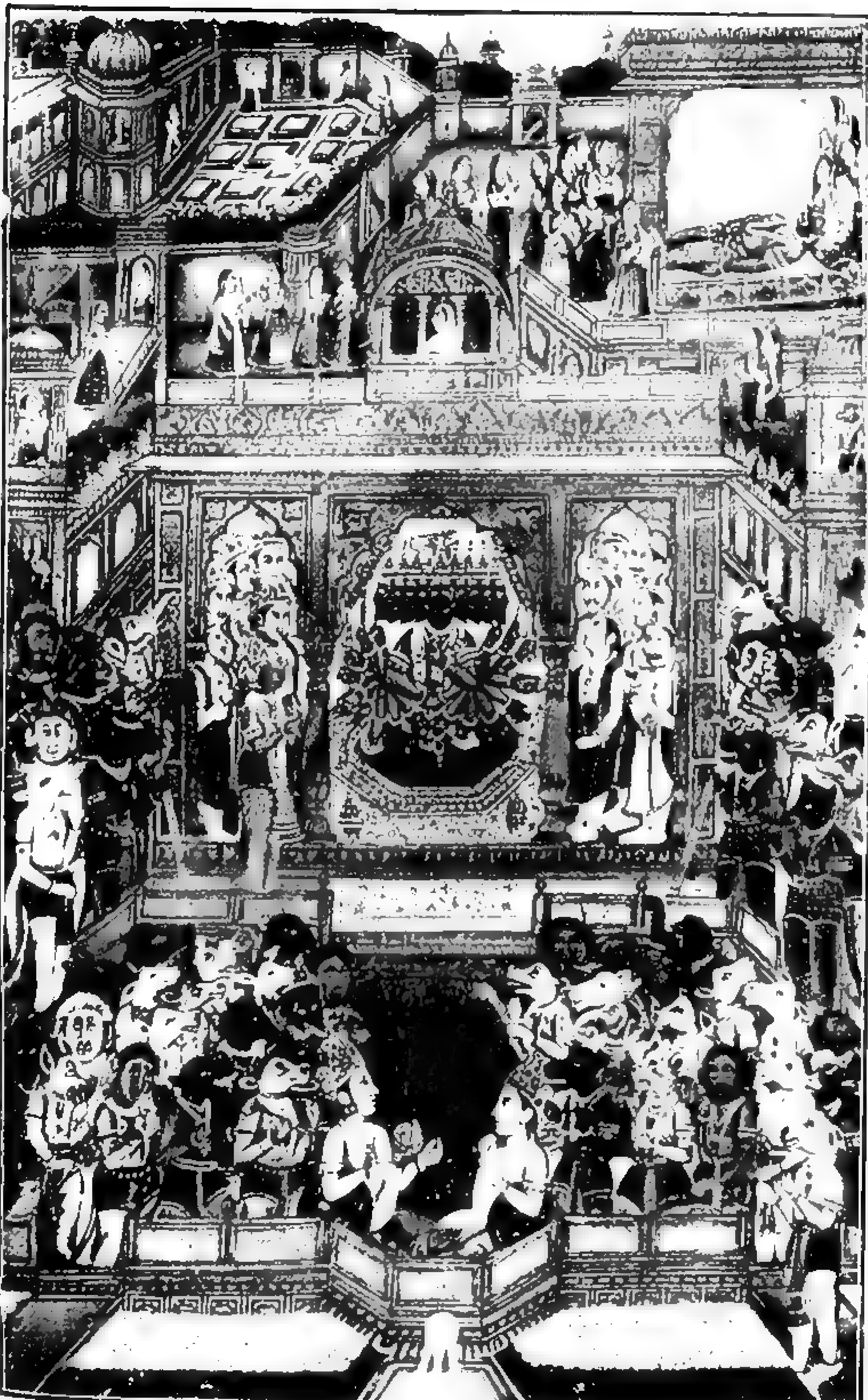
कह प्रभु हँसि जनि हृदय डेराहू। लूक न असनि केतु नहिं राहू।
ए किरीट दस-कंधर केरे। आवत बालि-तनय के प्रेरे।

दो०—तरकि पवन-सुत कर गहेउ, आनि धरे प्रभु-पास।
कौतुक देखहिं भालु कपि, दिन-कर-सरिस प्रकास॥४०॥
उहाँ सकोप दसानन, सब सन कहत रिसाइ।
धरहु कपिहि धरि मारहु, सुनि अंगद मुसुकाइ॥४१॥

एहि बधि बेगि सुभट सब धावहु। खाहु भालु कपि जहँ तहँ पावहु।
मरकट-हीन करहु महि जाई। जिअत धरहु तापस दोउ भाई।
रामप्रताप समुझि कपि कोपा। सभा माँझ पन करि पद रोपा।
जौं मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिँ राम सीता मैं हारी।
सुनहु सुभट सब कह दस-सीसा। पद गहि धरनि पछारहु कीसा।
इंद्र - जीत आदिक बलवाना। हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना।
झपटहिँ करि बल बिपुल उपाई। पद न टरइ बैठहिँ सिरु नाई।
पुनि उठि झपटहिँ सुर-आराती। टरइ न कीस-चरन एहि भाँती।
पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह-बिटप नहिँ सकहिँ उपारी।

दो०—भूमि न छाड़त कपि-चरन, देखत रिपु-मद भाग।
कोटि बिघ्न तेँ संत कर, मन जिमि नीति न त्याग॥ ४२॥

कपि-बल देखि सकल हिय हारे। उठा आपु कपि के परचारे।
गहत चरन कह बालि-कुमारा। मम पद गहे न तोर उबारा।
गहसि न राम-चरन सठ जाई। सुनत फिरा मन अति सकुचाई।
भयउ तेज-हत श्री सब गई। मध्य दिवस जिमि ससि सोहई।
सिंहासन बैठेउ सिर नाई। मानहुँ संपति सकल गवाँई।
जगदातमा प्रान-पति रामा। तासु बिमुख किमि लह बिस्रामा।
उमा राम की भृकुटि-बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा।



अंगद-पैंज।

तृन तें कुलिस कुलिस तृन करई। तासु दूत-पन कहु किमि टरई।
पुनि कपि कही नीति बिधि नाना। मान न तासु काल नियराना।
रिपु-मद मथि प्रभु-सु-जस सुनायो। यह कहि चलेउ बालि-नृप-जायो।
हतउँ न खेत खेलाइ खेलाई। तोहि अबहिँ का करउँ बड़ाई।
प्रथमहिँ तासु तनय कपि मारा। सो सुनि रावन भयउ दुखारा।
जातुधान अंगद-पन देखी। भय-ब्याकुल सब भये बिसेखी।

दो०—रिपु-बल धरषि हरषि कपि, बालि-तनय बल-पुंज।
पुलक सरीर नयन-जल, गहे राम-पद-कंज॥ ४३॥

रिपु के समाचार जब पायें। राम सचिव सब निकट बोलाये।
लंका बाँके चारि दुआरा। केहि बिधि लागिय करहु बिचारा।
तब कपीस रिच्छेस बिभीषन। सुमिरि हृदय दिन-कर-कुल-भूषन।
करि बिचार तिन्ह मंत्र दृढ़ावा। चारि अनी कपि-कटक बनावा।
जथा-जोग सेनापति कीन्हे। जूथप सकल बोलि तब लीन्हे।
प्रभु-प्रताप कहि सब समुझाये। सुनि कपि सिंह-नाद करि धाये।
हरषित राम-चरन सिर नावहिँ। गहि गिरि-सिखर बीर सब धावहिँ।
गर्जहिँ तर्जहिँ भालु कपीसा। जय रघुबीर कोसलाधीसा।
जानत परम-दुर्ग अति लंका। प्रभु-प्रताप कपि चले असंका।
घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी। मुखहिँ निसान बजावहिँ भेरी।

दो०—जयति राम जय लछिमन, जय कपीस सुग्रीव।
गर्जहिँ केहरि-नाद कपि, भालु महा-बल-सीवँ॥ ४४॥

लंका भयउ कोलाहल भारी। सुना दसानन अति अहँकारी।
देखहु बनरन्ह केरि ढिठाई। बिहँसि निसा-चर-सेन बोलाई।
आये कीस काल के प्रेरे। छुधावंत सब निसिचर मेरे।
अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा। गृह बैठे अहार बिधि दीन्हा।

सुभट सकल चारिहु दिसि जाहू । धरि धरि भालु कीस सब खाहू ।
उमा रावनहि अस अभिमाना । जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना ।
चले निसाचर आयसु माँगी । गहि कर भिंडिपाल बर साँगी ।
तोमर मुद्गर परिघ प्रचंडा । सूल कृपान परसु गिरि-खंडा ।
जिमि अरुनोपल-निकर निहारी । धावहिं सठ खग मांस-अहारी ।
चोंच-भंग-दुख तिन्हहिं न सूझा । तिमि धाये मनुजाद अबूझा ।

दो०—नानायुद्ध सर-चाप-धर , जातुधान बल-बीर ।
कोट-कँगूरनि चढ़ि गये , कोटि कोटि रन-धीर ॥ ४५ ॥

कोट-कँगूरन्हि सोहहिँ कैसे । मेरु के सृंगनि जनु घन बैसे ।
बाजहिँ ढोल निसान जुझाऊ । सुनि धुनि होय भटन्ह मन चाऊ ।
बाजहिँ भेरि नफीरि अपारा । सुनि कादर-उर जाहिँ दरारा ।
देखि न जाइ कपिन्ह के ठट्टा । अति बिसाल तनु भालु सुभट्टा ।
धावहिँ मनहिं न अवघट घाटा । पर्वत फोरि करहिँ गहि बाटा ।
कटकटाहिँ कोटिन्ह भट गर्जहिँ । दसन ओठ काटहिँ अति तर्जहिँ ।
उत रावन इत राम दोहाई । जयति जयति जय परी लराई ।
निसिचर सिखर-समूह ढहावहिँ । कूदि धरहिँ कपि फेरि चलावहिँ ।

छंद—धरि कु-धर-खंड प्रचंड मर्कट भालु गढ़ पर डारहीँ ।
झपटहिँ चरन गहि पटकि महि भजि चलत बहुरि प्रचारहीँ ॥
अति-तरल तरुन प्रताप तर्जहिँ तमकि गढ़ चढ़ि चढ़ि गये ।
कपि भालु चढ़ि मंदरन्हि जहँ तहँ राम-जसु गावत भये ॥

दो०—एक एक गहि निसिचर, पुनि कपि चले पराइ ।
ऊपर आपुनु हेठ भट, गिरहिँ धरनि पर आइ ॥ ४६ ॥
बहु-आयुध-धर सुभट सब, भिरहिँ प्रचारि प्रचारि ।
कीन्हे ब्याकुल भालु कपि, परिघ त्रिसूलन्ह मारि ॥ ४७ ॥

अंगद सुनेउ कि पवन-सुत, गढ़ पर गयउ अकेल ।
समर-बाँकुरा बालि-सुत, तरकि चढ़ेउ कपि-खेल ॥ ४८ ॥

जुद्ध-बिरुद्ध क्रुद्ध दोउ बानर । राम-प्रताप सुमिरि उर अंतर ।
रावन-भवन चढ़े दोउ धाई । करहिँ कोसलाधीस-दोहाई ।
कलस-सहित गहि भवन ढहावा । देखि निसा-चर-पति भय पावा ।
नारि-बृंद कर पीटहिँ छाती । अब दुइ कपि आये उतपाती ।
कपि-लीला करि तिन्हहिँ डेरावहिँ । रामचंद्र कर सुजस सुनावहिँ ।
पुनि कर गहि कंचन के खंभा । कहेन्हि करिय उतपात-अरंभा ।
गर्जि परे रिपु-कटक मँझारी । लागे मर्दइ भुज-बल भारी ।
काहुहि लात चपेटन्हि केहू । भजहु न रामहिँ सो फल लेहू ।

दो०—एक एक सों मर्दहिँ, तोरि चलावहिँ मुंड ।
रावन आगे परहिँ ते, जनु फूटहिँ दधि-कुंड ॥ ४९ ॥
भुज-बल रिपु-दल दलमलि, देखि दिवस कर अंत ।
कूदे जुगल बिगत-स्रम, आये जहँ भगवंत ॥ ५० ॥

निसा जानि-कपि-चारिउ-अनी । आये जहाँ कोसला-धनी ।
राम कृपा करि चितवा जबहीं । भये बिगत-स्रम बानर तबहीं ।
उहाँ दसानन सचिव हँकारे । सब सन कहेसि सुभट जे मारे ।
आधा कटक कपिन्ह संहारा । कहहु बेगि का करिय बिचारा ।
माल्यवंत अति जरठ निसाचर । रावनु-मातु-पिता-मंत्री-बर ।
बोला बचन नीति अति पावन । सुनहु तात कछु मोर सिखावन ।
जब तें तुम्ह सीता हरि आनी । असगुन होहिं न जाहिं बखानी ।
बेद पुरान जासु जस गावा । राम-बिमुख काहु न सुख पावा ।
परिहरि बैर देहु बैदेही । भजहु कृपा-निधि परम-सनेही ।
ता के बचन बान-सम लागे । करिया मुख करि जाहि अभागे ।

बूढ़ भयसि न त मरतेउँ तोही । अब जनि नयन देखावसि मोही ।
तेहि अपने मन अस अनुमाना । बध्यो चहत एहि कृपा-निधाना ।
सो उठि गयउ कहत दुर्बादा । तब सकोप बोलेउ घननादा ।
कौतुक प्रात देखियहु मोरा । करिहउँ बहुत कहउँ का थोरा ।
सुनि सुत-बचन भरोसा आवा । प्रीति-समेत अंक बैठावा ।
करत बिचार भयउ भिनुसारा । लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा ।
कोपि कपिन्ह दुरघट गढ़ घेरा । नगर कोलाहल भयउ घनेरा ।
बिबिधायुध-धर निसि-चर धाये । गढ़ तें पर्वत-सिखर ढहाये ।

दो०—मेघनाद सुनि स्रवन अस, गढ़ पुनि छेंका आइ ।
उतरि दुर्ग तें बीर-बर, सनमुख चलेउ बजाइ ॥ ५१ ॥
दस दस सर सब मारेसि, परे भूमि कपि बीर ।
सिंह-नाद करि गर्जा, मेघनाद बल-धीर ॥ ५२ ॥
आयसु मांगि राम पहिं, अंगदादि कपि साथ ।
लछिमन चले सकोप अति, बान सरासन हाथ ॥ ५३ ॥

छत-ज-नयन उर बाहु बिसाला । हिम-गिरि-निभ तनु कछु एक लाला ।
इहाँ दसानन सुभट पठाये । नाना सस्त्र अस्त्र गहि धाये ।
भू-धर-नख-बिटपायुध धारी । धाये कपि जय राम पुकारी ।
भिरे सकल जोरिहि सन जोरी । इत उत जय इच्छा नहिं थोरी ।
मुठिकन्ह लातन्ह दाँतन्ह काटहिं । कपि जय-सील मारि पुनि डाटहिं ।
मारु मारु धरु धरु धरु मारू । सीस तोरि गहि भुजा उपारू ।
अस रव पूर रहा नव खंडा । धावहिं जहँ तहँ रुंड प्रचंडा ।
देखहिं कौतुक नभ सुर-बृंदा । कबहुँक बिसमय कबहुँ अनंदा ।

दो०—रुधिर गाढ़ भरि भरि जमेउ, ऊपर धूरि उड़ाइ ।
जिमि अँगार-रासीन्ह पर, मृतक-धूम रह छाइ ॥ ५४ ॥

घायल बीर बिराजहिं कैसे। कुसुमित किंसुक के तरु जैसे।
लछिमन मेघनाद दोउ जोधा। भिरहिं परस्पर करि अति क्रोधा।
एकहिं एक सकहिं नहिं जीती। निसिचर छल बल करइ अनीती।
क्रोधवंत तब भयउ अनंता। भंजेउ रथ सारथी तुरंता।
नाना बिधि प्रहार कर सेषा। राच्छस भयउ प्रान-अवसेषा।
रावन-सुत-निज मन अनुमाना। संकट भयउ हरिहि मम प्राना।
बीर-घातिनी छाड़ेसि साँगी। तेज-पुंज लछिमन - उर लागी।
मुरछा भई शक्ति के लागे। तब चलि गयउ निकट भय त्यागे।

दो०—मेघ-नाद-सम कोटि-सत, जोधा रहे उठाय।
जगदाधार अनंत किमि, उठइ चले खिसिआइ॥ ५५॥

सुनि गिरिजा क्रोधानल जासू। जारइ भुवन चारि दस आसू।
सक संग्राम जीति को ताही। सेवहिं सुर नर अग जग जाही।
यह कौतूहल जानइ सोई। जा पर कृपा राम कै होई।
संध्या भई फिरी दोउ बाहिनी। लगे सँभारन निज निज अनी।
ब्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर। लछिमनु कहाँ बूझ करुनाकर।
तब लगि लेइ आयउ हनुमाना। अनुज देखि प्रभु अति दुख माना।
जामवंत कह बैद सुषेना। लंका रहइ को पठइय लेना।
धरि लघु रूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवन-समेत तुरंता।

दो०—रघु-पति-चरन-सरो-ज सिरु, नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी, जाहु पवन-सुत लेन॥ ५६॥

राम-चरन-सरसि-ज उर राखी। चलेउ प्रभंजन-सुत बल भाखी।
देखा सैल न औषध चीन्हा। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा।
गहि गिरि निसि नभ ऊपर गयऊ। तुरत राम पहँ धावत भयऊ।
वहाँ राम लछिमनहिं निहारी। बोले बचन मनुज-अनुहारी।

अर्ध-राति गइ कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ।
सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ।
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेउ विपिन हिम आतप बाता।
सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच-बिकलाई।
जौ जनतेउँ बन बंधु-बिछोहू। पिता-बचन मनतेउँ नहिं ओहू।
सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहि जग बारहिं बारा।
अस बिचारि जिय जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।
जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करि-बर कर-हीना।
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जियावइ मोही।
जैहउँ अवध कवन मुँह लाई। नारि-हेतु प्रिय भाइ गवाँई।
बरु अपजसु सहतेउँ जग माहीं। नारि-हानि बिसेष छति नाहीं।
अब अपलोक सोक सुत तोरा। सहिहि निठुर कठोर उर मोरा।
निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम्ह प्रान-अधारा।
सौंपेसि मोहि तुम्हहिं गहि पानी। सब बिधि सुखद परम हित जानी।
उतरु कहा दैहउँ तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई।
बहु बिधि सोचत सोच-बिमोचन। स्रवत सलिल राजिव-दल-लोचन।
सो०—प्रभु-बिलाप सुनि कान, बिकल भये बानर-निकर।
आइ गयउ हनुमान, जिमि करुना महँ बीर रस ॥५७॥
हरषि राम भेंटेउ हनुमाना। अति कृतज्ञ प्रभु परम सुजाना।
तुरत बैद तब कीन्हि उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई।
हृदय लाइ भेंटेउ प्रभु भ्राता। हरषे सकल भालु-कपि-व्राता।
पुनि कपि बैद तहाँ पहुँचावा। जेहि बिधि तबहिं ताहि लेइ आवा।
यह बृत्तांत दसानन सुनेऊ। अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ।
ब्याकुल कुंभकरन पहिं आवा। बिबिध जतन करि ताहि जगावा।

जागा निसिचर देखिय कैसा। मानहुँ काल देह धरि वैसा।
कुंभकरन बूझा सुनु भाई। काहे तव मुख रहे सुखाई।
कथा कही सब तेहि अभिमानी। जेहि प्रकार सीता हरि आनी।
तात कपिन्ह सब निसिचर मारे। महा-महा-जोधा संहारे।
दुर्मुख सुररिपु अनुज-अहारी। भट अतिकाय अकंपन भारी।
अपर महोदर आदिक वीरा। परे समर-महि सब रन-धीरा।

दो०—सुनि दस-कंधर-बचन तब, कुंभकरन बिलखान।
जगदंबा हरि आनि अब, सठ चाहत कल्यान ॥५८॥

भल न कीन तैं निसि-चर-नाहा। अब मोहि आइ जगावेहि काहा।
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना।
हैं दस-सीस मनुज रघुनायक। जा के हनूमान से पायक।
अहह बंधु तैं कीन्हि खोटाई। प्रथमहिं मोहि न सुनायेहि आई।
कीन्हेहु प्रभु विरोध तेहि देव क। सिव बिरंचि सुर जाके सेवक।
नारद मुनि मोहि ज्ञान जो कहा। कहतेउँ तोहि समय निरबहा।
अब भरि अंक भेंटु मोहि भाई। लोचन सुफल करउँ मैं जाई।
श्याम-गात सरसी-रुह-लोचन। देखउँ जाइ ताप-त्रय-मोचन।

दो०—राम-रूप-गुन सुमिर मन, मगन भयउ छन एक।
रावन माँगेउ कोटि घट, मद अरु महिष अनेक ॥५९॥

महिष खाइ करि मदिरा-पाना। गर्जा बज्राघात-समाना।
कुंभकरन रन-रंग बिरुद्धा। सनमुख चला काल जनु क्रुद्धा।
कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई। जनु टीड़ी गिरि-गुहा समाई।
कोटिन्ह गहि सरीर मन मर्दा। कोटिन्ह मींजि मिलव महि गर्दा।
मुख नासा स्रवनन्हि की बाटा। निसरि पराहिं भालु-कपि-ठाटा।
रन-मद-मत्त निसाचर दर्पा। बिस्व ग्रसिहि जनु एहि बिधि अर्पा।

मुरे सुभट सब फिरहिं न फेरे। सूझ न नयन सुनहिं नहिं टेरे।
कुंभकरन कपि फौज बिडारी। सुनि धाई रजनी-चर-धारी।
देखी राम बिकल कटकाई। रिपु-अनीक नाना बिधि आई।

दो०—सुनु सुग्रीवँ बिभीषन, अनुज सँभारेहु सैन।
मैं देखउँ खल-बल-दलहि, बोले राजिव-नैन॥ ६०॥

कर सारंग साजि कटि भाथा। अरि-दल-दलनि चले रघुनाथा।
प्रथम कीन्हि प्रभु धनुष टकोरा। रिपु-दल बधिर भयउ सुनि सोरा।
सत्य-संध छाड़े सर लच्छा। काल-सर्प जनु चले सपच्छा।
जहँ तहँ चले बिपुल नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिसाचा।
कटहिं चरन उर सिर भुज-दंडा। बहुतक बीर होहिं सत खंडा।
घुर्मि घुर्मि घायल महि परहीं। उठि संभारि सुभट पुनि लरहीं।
लागत बान जलद जिमि गाजहिँ। बहुतक देखि कठिन सर भाजहिँ।
रुंड प्रचंड मुंड बिनु धावहिँ। धरु धरु मारु मारु धुनि गावहिँ।

दो०—छन महँ प्रभु के सायकन्हि, काटे बिकट पिसाच।
पुनि रघुबीर निषंग महँ, प्रबिसे सब नाराच॥ ६१॥

कुंभकरन मन दीख बिचारी। हति छन माँझ निसा-चर-धारी।
भयउ क्रुद्ध दारुन बल बीरा। करि मृग-नायक-नाद गँभीरा।
कोपि महीधर लेइ उपारी। डारइ जहँ मर्कट-भट भारी।
आवत देखि सैल प्रभु भारे। सरन्हि काटि रज-सम करि डारे।
पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक। छाड़े अति कराल बहु सायक।
तन महँ प्रबिसि निसरि सर जाहीं। जनु दामिनि घन माँझ समाहीं।
सोनित स्रवत सोह तन कारे। जनु कज्जल-गिरि गेरु-पनारे।
बिकल बिलोकि भालु कपि धाये। बिहँसा जबहिँ निकट कपि आये।

दो०—महानाद करि गर्जा, कोटि कोटि गहि कीस।
महि पटकइ गज-राज इव, सपथ करइ दससीस॥६२॥

भागे भालु-बलीमुख-जूथा। बृक बिलोकि जिमि मेष-बरूथा।
चले भागि कपि भालु भवानी। बिकल पुकारत आरत-बानी।
यह निसिचर दु-काल सम अहई। कपि-कुल देस परन अब चहई।
कृपा-बारि-धर राम खरारी। पाहि पाहि प्रनतारति-हारी।
स-करुन-बचन सुनत भगवाना। चले सुधारि सरासन-बाना।
राम सेन निज पाछे घाली। चले सकोप महा-बल-साली।
खैंचि धनुष सर-सत संधाने। छूटे तीर सरीर समाने।
लागत सर धावा रिस-भरा। कु-धर डगमगत डोलति धरा।
लीन्ह एक तेहि सैल उपाटी। रघु-कुल-तिलक भुजा सोइ काटी।
धावा बाम-बाहु गिरि धारी। प्रभु सोउ भुजा काटि महि पारी।
काटे भुजा सोह खल कैसा। पच्छ-हीन मंदर-गिरि जैसा।
उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका। ग्रसन चहत मानहुँ त्रय-लोका।

दो०—करि चिक्कार घोर अति, धावा बदन पसारि।
गगन सिद्ध सुर त्रासित, हा हा होति पुकारि॥६३॥

सभय देव करुना-निधि जानेउ। स्रवन प्रजंत सरासन तानेउ।
बिसिख निकर निसि-चर मुख भरेऊ। तदपि महा-बल भूमि न परेऊ।
सरन्हि भरा मुख सनमुख धावा। काल-त्रोन सजीव जनु आवा।
तब प्रभु कोपि तीब्र सर लीन्हा। घर तें भिन्न तासु सिर कीन्हा।
सो सिर परेउ दसानन आगे। बिकल भयउ जिमि फनि मनि त्यागे।
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा।
परे भूमि जिमि नभ तें भूधर। हेठ दाबि कपि भालु निसाचर।
तासु तेज प्रभु बदन समाना। सुर मुनि सबहिँ अचंभी माना।

राम-कृपा कपि-दल-बल बाढ़ा। जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा।
छीजहिँ निसिचर दिन अरु राती। निज मुख कहे सुकृत जेहि भाँती।
बहु बिलाप दस-कंधर करई। बंधु-सीस पुनि पुनि उर धरई।
रोवहिँ नारि हृदय हति पानी। तासु तेज बल बिपुल बखानी।
मेघनाद तेहि अवसर आवा। कहि बहु कथा पिता समुझावा।
देखेहु कालि मोरि मनुसाई। अबहिँ बहुत का करउँ बड़ाई।
इष्ट-देव सोँ बल रथ पायउँ। सो बल तात न तोहि देखायउँ।
एहि बिधि जलपत भयउ बिहाना। चहुँ दुआर लागे कपि नाना।
इत कपि भालु काल-सम बीरा। उत रजनीचर अति-रन-धीरा।
लरहिँ सुभट निज निज जय हेतू। बरनि न जाइ समर खग-केतू।

दो०—मेघनाद माया-मय, रथ चढ़ि गयउ अकास।
गर्जेउ अट्टहास करि, भइ कपि कटकहि त्रास ॥ ६४ ॥

सक्ति सूल तरबारि कृपाना। अस्त्र सस्त्र कुलिसायुध नाना।
डारइ परसु परिघ पाषाना। लागेउ बृष्टि करइ बहु बाना।
दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहुँ मघा मेघ झरि लाई।
धरु धरु मारु सुनिय धुनि काना। जो मारइ तेहि कोउ न जाना।
गहि गिरि तरु अकास कपि धावहिँ। देखहिँ तेहि न दुखित फिरि आवहिँ।
अवघट घाट बाट गिरि कंदर। माया-बल कीन्हेसि सर-पंजर।
जाहिँ कहाँ भये व्याकुल बंदर। सुर-पति बंदि परे जनु मंदर।
मारुत-सुत अंगद नल नीला। कीन्हेसि बिकल सकल बल-सीला।
पुनि लछिमन सुग्रीवँ बिभीषन। सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर-तन।
पुनि रघुपति सन जूझइ लागा। सर छाड़इ होइ लागहिं नागा।
व्याल-पास-बस भयउ खरारी। स्वबस अनंत एक अबिकारी।
व्याकुल कटक कीन्ह घननादा। पुनि भा प्रगट कहइ दुर्बादा।

जामवंत कह खल रहु ठाढ़ा। सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा।
बूढ़ जानि सठ छाड़ेउँ तोही। लागसि अधम पचारइ मोही।
अस कहि तीव्र त्रिसूल चलावा। जामवंत सो कर गहि धावा।
मारेसि मेघनाद कै छाती। परा धरनि घुर्मित सुर-घाती।
पुनि रिसान गहि चरन फिरावा। महि पछारि निज बल देखरावा।
बर-प्रसाद सो मरइ न मारा। तब गहि पद लंका पर डारा।
इहाँ देव-रिषि गरुड़ पठावा। राम-समीप सपदि सो आवा।

दो०—खग-पति सब धरि खाये, माया-नाग-बरूथ।
माया बिगत भये सब, हरषे बानर-जूथ॥ ६५॥

गहि गिरि पादप उपल नख, धाये कीस रिसाइ।
चले तमीचर बिकलतर, गढ़ पर चढ़े पराइ॥ ६६॥

मेघनाद कै मुरछा जागी। पितहि बिलोकि लाज अति लागी।
तुरत गयेउ गिरि-बर-कंदरा। करउँ अजय मख अस मन धरा।
इहाँ बिभीषन मंत्र बिचारा। सुनहु नाथ बल अतुल उदारा।
मेघनाद मख करइ अपावन। खल मायावी देव-सतावन।
जौं प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि। नाथ बेगि पुनि जीति न जाइहि।
सुनि रघुपति अति-सय सुख माना। बोले अंगदादि कपि नाना।
लछिमन संग जाउ सब भाई। करहु बिधंस जज्ञ कर जाई।
तुम्ह लछिमन मारेहु रन ओही। देखि सभय सुर दुख अति मोही।
मारेहु तेहि बल बुद्धि उपाई। जेहि छीजइ निसिचर सुनु भाई।
जामवंत सुग्रीवँ बिभीषन। सेन समेत रहेहु तीनिउँ जन।
जब रघुबीर दीन्ह अनुसासन। कटि निषंग कसि साजि सरासन।
प्रभु-प्रताप उर धरि रन-धीरा। बोले घन इव गिरा गँभीरा।

जौं तेहि आजु बधे बिनु आवउँ। तौ रघु-पति-सेवक न कहावउँ।
जौं सत शंकर करहिं सहाई। तदपि हतउँ रघु-बीर-दोहाई।

दो०—रघु-पति-चरन नाइ सिर, चलेउ तुरंत अनंत।
अंगद नील मयंद नल, संग सुभट हनुमंत॥ ६७॥

जाइ कपिन्ह सो देखा बैसा। आहुति देत रुधिर अरु भैंसा।
कीन्ह कपिन्ह सब जज्ञ बिधंसा। जब न उठइ तब करहिं प्रसंसा।
तदपि न उठइ धरेन्हि कच जाई। लातन्हि हति हति चले पराई।
लेइ त्रिसूल धावा कपि भागे। आये जहँ रामानुज आगे।
आवा परम क्रोध कर मारा। गर्ज घोर रव बारहिँ बारा।
कोपि मरुत-सुत अंगद धाये। हति त्रिसूल उर धरनि गिराये।
प्रभु कहँ छाड़ेसि सूल प्रचंडा। सर हति कृत अनंत जुग खंडा।
उठि बहोरि मारुति जुबराजा। हतहिं कोपि तेहि घाउ न बाजा।
फिरे बीर रिपु मरइ न मारा। तब धावा करि घोर चिकारा।
आवत देखि क्रुद्ध जनु काला। लछिमन छाँड़े बिसिख कराला।
देखिस आवत पबि-सम बाना। तुरत भयउ खल अंतरधाना।
बिबिध बेष धरि करइ लराई। कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई।
देखि अजय रिपु डरपे कीसा। परम क्रुद्ध तब भयउ अहीसा।
एहि पापिहिं मैं बहुत खेलावा। लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा।
सुमिरि कोसला-धीस-प्रतापा। सर-संधान कीन्ह करि दापा।
छाँड़ेउ बान माँझ उर लागा। मरती बार कपट सब त्यागा।

दो०—रामानुज कहँ राम कहँ, अस कहि छाड़ेसि प्रान।
धन्य धन्य तव जननी, कह अंगद हनुमान॥६८॥

सुत-बध सुना दसानन जबहीं। मुरछित भयउ परेउ महि तबहीं।
मंदोदरी रुदन करि भारी। उर ताड़त बहु भाँति पुकारी।

नगर लोग सब व्याकुल सोचा। सकल कहहिं दस-कंधर पोचा।
तिन्हहिं ज्ञान उपदेसा रावन। आपुन मंद कथा सुभ भावन।
पर-उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे।
निसा सिरानि भयउ भिनुसारा। लगे भालु कपि चारिहुँ द्वारा।
सुभट बोलाइ दसानन बोला। रन-सनमुख जा कर मन डोला।
सो अबहीं बरु जाउ पराई। संजुग-बिमुख भयं न भलाई।
निज-भुज-बल मैं बैर बढ़ावा। देइहउँ उतरु जो रिपु चढ़ि आवा।
अस कहि मरुत-बेग रथ साजा। बाजे सकल जुझाऊ बाजा।
चलेउ निसा-चर-कटक अपारा। चतुरंगिनी अनी बहु धारा।
बिबिध भांति बाहन रथ जाना। बिपुल बरन पताक ध्वज नाना।
चले मत्त गज-जूथ घनेरे। प्राबिट-जलद मरुत जनु प्रेरे।
बरन बरन बिरदैत निकाया। समर-सूर जानहिं बहु माया।
अति बिचित्र बाहनी बिराजी। बीर बसंत सेन जनु साजी।
चलत कटकु दिग-सिंधुर डगहीं। छुभित पयोधि कुधर डगमगहीं।
उठी रेनु रबि गयउ छपाई। पवन थकित बसुधा अकुलाई।
पनव निसान घोर रव बाजहिं। प्रलय-समय के घन जनु गाजहिं।
भेरि नफीर बाज सहनाई। मारू राग सुभट सुखदाई।
केहरि-नाद बीर सब करहीं। निज निज बल पौरुष उच्चरहीं।
कहइ दसानन सुनहु सुभट्टा। मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा।
हौं मारिहउँ भूप दोउ भाई। अस कहि सनमुख फौज रेंगाई।
यह सुधि सकल कपिन्ह जब पाई। धाये करि रघु-बीर-दोहाई।

दो०—दुहुँ दिस जय जयकार करि, निज निज जोरी जानि।
भिरे बीर इत रघुपतिहिं, उत रावनहिं बखानि ॥६८॥

देवन प्रभुहिं पयादे देखा। उपजा उर अति छोभ बिसेखा।

सुर-पति निज रथ तुरत पठावा। हरष-सहित मातलि लेइ आवा।
तेज-पुंज रथ दिव्य अनूपा। हरषि चढ़े कोसल-पुर-भूपा।
चंचल तुरग मनोहर चारी। अजर अमर मन-सम-गति-कारी।
रथारूढ़ रघुनाथहिं देखी। धाये कपि बल पाइ बिसेखी।
सही न जाइ कपिन्ह कै मारी। तब रावन माया बिस्तारी।
सो माया रघुबीरहि बाँची। सब काहू मानी करि साँची।
देखी कपिन्ह निसा-चर-अनी। अनुज-सहित बहु कोसल-धनी।

छंद—बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे।
जनु चित्र-लिखित समेत लछिमन जहँ सो तहँ चितवहिं खरे।
निज सेन चकित बिलोक हँसि सर चाप सजि कोसल-धनी।
माया हरी हरि निमिष महँ हरषो सकल मरकट-अनी॥

दो०—बहुरि राम सब तन चितइ, बोले बचन गँभीर।
द्वंद-जुद्ध देखहु सकल, स्रमित भये अति बीर॥ ७०॥

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा। बिप्र-चरन-पंक-ज सिरु नावा।
तब लंकेस क्रोध उर छावा। गर्जत तर्जत सनमुख धावा।
जीतेहु जे भट संजुग माहीं। सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाहीं।
रावन नाम जगत जस जाना। लोकप जा के बंदीखाना।
खर-दूषन-कबंध तुम्ह मारा। बधेहु ब्याध इव बालि बिचारा।
निसि-चर-निकर सुभट संहारेहु। कुंभकरन घननादहिं मारेहु।
आजु बैरु सब लेउँ निबाही। जौं रन भूप भाजि नहिं जाही।
आजु करउँ खलु काल-हवाले। परेहु कठिन रावन के पाले।
सुनि दुर्बचन काल-बस जाना। बिहँसि बचन कह कृपा-निधाना।
सत्य सत्य सब तव प्रभुताई। जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई।

दो०—राम-बचन सुनि बिहँसि कह, मोहि सिखावत ज्ञान।
बैरु करत नहिं तब डरेहु, अब लागे प्रिय प्रान॥ ७१॥

कहि दुर्बचन क्रुद्ध दस-कंधर। कुलिस-समान लाग छाड़इ सर।
नानाकार सिलीमुख धाये। दिसि अरु बिदिसि गगन महि छाये।
अनल-बान छाड़ेउ रघुबीरा। छन महँ जरे निसा-चर-तीरा।
छाड़ेसि तीब्र सक्ति खिसि-आई। बान-संग प्रभु फेरि पठाई।
कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारइ। बिनु प्रयास प्रभु काटि निबारइ।
निफल होहिँ रावन-सर कैसे। खल के सकल मनोरथ जैसे।
तब सत-बान सारथी मारेसि। परेउ भूमि जय राम पुकारेसि।
राम कृपा करि सूत उठावा। तब प्रभु परम क्रोध कहँ पावा।

छंद—भये क्रुद्ध जुद्ध-बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदंड-धुनि अति चंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे।
मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे॥

दो०—तानेउ चाप स्रवन लगि, छाड़े बिसिख कराल।
राम-मारगन-गन चले, लहलहात जनु ब्याल॥ ७२॥

चले बान सपच्छ जनु उरगा। प्रथमहिं हतेउ सारथी तुरगा।
रथ बिभंजि हति केतु पताका। गर्जा अति अंतर बल थाका।
तुरत आन रथ चढ़ि खिसिआना। अस्त्र सस्त्र छाड़ेसि बिधि नाना।
बिफल होहिँ सब उद्यम ता के। जिमि पर-द्रोह-निरत-मनसा के।
तब रावन दस सूल चलावा। बाजि चारि महि मारि गिरावा।
तुरग उठाइ कोपि रघुनायक। खैंचि सरासन छाड़े सायक।
रावन-सिर-सरोज-बन-चारी। चलि रघुबीर सिलीमुख धारी।
दस दस बान भाल दस मारे। निसरि गये चले रुधिर-पनारे।

स्रवत रुधिर धायउ बलवाना। प्रभु पुनि कृत धनु-सर-संधाना।
तीस तीर रघुबीर पवारे। भुजन्ह समेत सीस महि पारे।
काटतही पुनि भये नबीने। राम बहोरि भुजा-सिर छीने।
कटत झटिति पुनि नूतन भये। प्रभु बहु बार बाहु सिर हये।
पुनि पुनि प्रभु काटत भुज सीसा। अति - कौतुकी कोसलाधीसा।
रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू। मानहुँ अमित केतु अरु राहू।

दो० —जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर, तिमि तिमि होहिं अपार।
संवत बिषय बिबर्ध जिमि, नित नित नूतन मार ॥७३॥

काटत बढ़हिं सीस समुदाई। जिमि प्रति-लाभ लोभ अधिकाई।
मरइ न रिपु स्रम भयउ बिसेखा। राम बिभीषन-तन तब देखा।
उमा काल मरु जाकी ईछा। सोइ प्रभु जन कर प्रीति-परीछा।
सुनु सर्बज्ञ चराचर-नायक। प्रनत-पाल सुर-मुनि-सुख-दायक।
नाभी-कुंड सुधा बस याके। नाथ जियत रावन बल ताके।
सुनत बिभीषन-बचन कृपाला। हरषि गहे कर बान कराला।

दो०—खैंचि सरासन स्रवन लगि, छाड़े सर एकतीस।
रघुनायक - सायक चले, मानहुँ काल फनीस ॥ ७४ ॥

सायक एक नाभि-सर सोखा। अपर लगे सिर भुज करि रोखा।
लेइ सिर बाहु चले नाराचा। सिर-भुज-हीन रुंड महि नाचा।
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु सर हति कृत जुग खंडा।
गर्जेउ मरत घोर-रव भारी। कहाँ राम रन हतउँ प्रचारी।
डोली भूमि गिरत दसकंधर। छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर।
धरनि परेउ दोउ खंड बढ़ाई। चापि भालु - मर्कट - समुदाई।
मंदोदरि आगे भुज सीसा। धरि सर चले जहाँ जगदीसा।
प्रबिसे सब निषंग महँ जाई। देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाई।

तासु तेज समान प्रभु-आनन। हरषे देखि संभु चतुरानन।
जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा। जय रघुबीर प्रबल-भुज-दंडा।
बरषहिं सुमन देव-मुनि-बृंदा। जय कृपाल जय जयति मुकुंदा।

छंद—जय कृपाकंद मुकुंद द्वंद-हरन सरन-सुख-प्रद प्रभो।
खल-दल-बिदारन परम कारन कारुनीक सदा बिभो।
सुर सुमन बरषहिं हरष संकुल बाज दुंदुभि गहगही।
संग्राम-अंगन राम-अंग अनंग बहु सोभा लही॥
सिर जटा-मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजहीं।
जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उडुगन भ्राजहीं॥
भुज-दंड सर-कोदंड फेरत रुधिर-कन तन अति बने।
जनु रायमुनी तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने॥

दो०—कृपा दृष्टि करि वृष्टि प्रभु, अभय किये सुर-बृंद।
भालु कीस सब हरषे, जय सुख-धाम मुकुंद॥ ७१॥

पति-सिर देखत मंदोदरी। मुरछित बिकल धरनि खसि परी।
जुबति-बृंद रोवत उठि धाईं। तेहि उठाय रावन पहिं आईं।
पति-गति देखि ते करहिं पुकारा। छूटे कच नहिं बपुष सँभारा।
उर-ताड़ना करहिं बिधि नाना। रोवत करहिं प्रताप बखाना।
तव बल नाथ डोल नित धरनी। तेज-हीन पावक ससि तरनी।
सेष कमठ सहि सकहिं न भारा। सो तनु भूमि परेउ भरि छारा।
बरुन कुबेर सुरेस समीरा। रन-सनमुख धरि काहु न धीरा।
भुज-बल जितेहु काल जम साईं। आजु परेहु अनाथ की नाईं।
जगत-बिदित तुम्हारि प्रभुताई। सुत परि-जन बल बरनि न जाई।
राम-बिमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनि-हारा।
तव बस बिधि प्रपंच सब नाथा। सभय दिसिप नित नावहिं माथा।

अब तव सिर-भुज जंबुक खाहीं। राम-बिमुख यह अनुचित नाहीं।
काल-बिवस पति कहा न माना। अग-जग-नाथु मनुज करि जाना।
रुदन करत बिलोकि सब नारी। गयउ बिभीषन मन दुख भारी।
बंधु-दसा देखत दुख कीन्हा। राम अनुज कहँ आयसु दीन्हा।
लछिमन जाइ ताहि समुझायउ। बहुरि बिभीषन प्रभु पहिं आयउ।
कृपा-दृष्टि प्रभु ताहि बिलोका। करहु क्रिया परिहरि सब सोका।
कीन्हि क्रिया प्रभु-आयसु मानी। बिधिवत देस काल जिय जानी।

दो०—मंदोदरी आदि सब, देइ तिलांजलि ताहि।
भवन गईं रघुपति गुन,-गन बरनत मन माहिं॥७६॥

आइ बिभीषन पुनि सिर नायउ। कृपा-सिंधु तब अनुज बोलायउ।
तुम्ह कपीस अंगद नल नीला। जामवंत मारुति नय-सीला।
सब मिलि जाहु बिभीषन साथा। सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथा।
पिता-बचन मैं नगर न आवउँ। आपु सरिस कपि अनुज पठावउँ।
तुरत चले कपि सुनि प्रभु-बचना। कीन्ही जाइ तिलक कै रचना।
सादर सिंहासन बैठारी। तिलक सारि अस्तुति अनुसारी।
जोरि पानि सबहीं सिर नाये। सहित बिभीषन प्रभु पहिं आये।
तब रघुबीर बोलि कपि लीन्हे। कहि प्रिय बचन सुखी सब कीन्हे।

छंद—किये सुखी कहि बानी सुधासम बल तुम्हारे रिपु हयो।
पायो बिभीषन राजु तिहुँ पुर जस तुम्हारो नित नयो।
मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जे गाइहैं।
संसार-सिंधु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं।

दो०—प्रभु के बचन स्रवन सुनि, नहिं अघाहिं कपि-पुंज।
बार बार सिर नावहीं, गहहिं सकल पद-कंज॥७७॥

पुनि प्रभु बोलि लियउ हनुमाना। लंका जाउ कहेउ भगवाना।

समाचार जानकिहिं सुनावहु। तासु कुसल लेइ तुम्ह चलि आवहु।
तब हनुमंत नगर महँ आये। सुनि निसिचरी निसाचर धाये।
बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्ही। जनक-सुता दिखाइ पुनि दीन्ही।
दूरिहिं तें प्रनाम कपि कीन्हा। रघु-पति-दूत जानकी चीन्हा।
कहहु तात प्रभु कृपा-निकेता। कुसल अनुज-कपि-सेन-समेता।
सब बिधि कुसल कोसलाधीसा। मातु समर जीतेउ दस-सीसा।
अबिचल राज बिभीषन पावा। सुनि कपि-बचन हरष उर छावा।

छंद—अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा।
का देउँ तोहि त्रैलोक महँ कपि किमपि नहिं बानी समा।
सुनु मातु मैं पायउँ अखिल - जग - राज आजु न संसयं।
रन जीति रिपु-दल बंधु-गत पस्यामि राममनामयं॥

दो०—सुनु सुत सद-गुन सकल तव, हृदय बसहु हनुमंत।
सानुकूल कोसल - पति, रहहु समेत अनंत॥७८॥

अब सोइ जतन करहु तुम्ह ताता। देखउँ नयन स्याम मृदु गाता।
तब हनुमान राम पहिं जाई। जनक-सुता कै कुसल सुनाई।
सुनि संदेस भानु - कुल - भूषन। बोलि लिये जुबराज बिभीषन।
मारुत-सुत के संग सिधावहु। सादर जनक-सुतहिं लेइ आवहु।
तुरतहिं सकल गये जहँ सीता। सेवहिं सब निसिचरी बिनीता।
बेगि बिभीषन तिन्हहिं सिखावा। सादर तिन्ह सीतहिं अन्हवावा।
बहु प्रकार भूषन पहिराये। सिबिका रुचिर साजि पुनि लाये।
ता पर हरषि चढ़ी बैदेही। सुमिरि राम सुख-धाम सनेही।
बेत-पानि रच्छक चहुँ पासा। चले सकल मन परम हुलासा।
देखन भालु कीस सब आये। रच्छक कोपि निवारन धाये।
कह रघुबीर कहा मम मानहु। सीतहिं सखा पयादे आनहु।

देखहिं कपि जननी की नाईं। बिहँसि कहा रघुनाथ गुसाईं।
सुनि प्रभु-बचन भालु कपि हरषे। नभ तें सुरन्ह सुमन बहु बरषे।
सीता प्रथम अनल महुँ राखी। प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी।

दो०—तेहि कारन करुना-निधि, कहे कछुक दुर्बाद।
सुनत जातुधानी सब, लागीं करइ बिषाद ॥७९॥

प्रभु के बचन सीस धरि सीता। बोली मन - क्रम - बचन - पुनीता।
लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी।
सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह - बिबेक - धरम-जुति-सानी।
लोचन सजल जोरि कर दोऊ। प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ।
देखि राम-रुख लछिमन धाये। पावक प्रगटि काठ बहु लाये।
पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदय हरष कछु भय नहिं तेही।
जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं।
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मो कहँ होहु श्रिखंड समाना।

छंद—श्री-खंड-सम पावक प्रवेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोसलेस महेस-बंदित-चरन रति अति निर्मली।
प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महँ जरे।
प्रभु-चरित काहु न लखे सुर नभ सिद्ध मुनि देखहिं खरे ॥
धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य स्रुति जग बिदित जो।
जिमि छीर-सागर इंदिरा रामहिं समर्पी आनि सो।
सो राम बाम बिभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।
नव-नील-नीर-ज निकट मानहुँ कनक-पंक-ज की कली ॥

दो०—बरषहिं सुमन हरषि सुर, बाजहिं गगन निसान।
गावहिं किंनर सुर-बधू, नाचहिं चढ़ी बिमान ॥८०॥

श्री - जानकी-समेत प्रभु, सोभा अमित अपार ।
देखत हरषे भालु कपि, जय रघुपति सुख-सार ॥८१॥

तब रघु - पति - अनुसासन पाई । मातलि चलेउ चरन सिरु नाई ।
तब प्रभु निकट बिभीषन आये । बिनती करि चरनन सिर नाये ।
नाइ चरन सिर कह मृदु बानी । बिनय सुनहु प्रभु सारँग-पानी ।
सकुल सदल प्रभु रावन मारा । पावन जसु त्रि-भुवन बिस्तारा ।
दीन मलीन हीन-मति जाती । मो पर कृपा कीन्हि बहु भाँती ।
अब जन-गृह पुनीत प्रभु कीजै । मज्जन करिय समर-स्रम छीजै ।
देखि कोस मंदिर संपदा । देहु कृपाल कपिन्ह कहँ मुदा ।
सब बिधि नाथ मोहि अपनाइय । पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइय ।
सुनत बचन मृदु दीन-दयाला । सजल भये दोउ नयन बिसाला ।

दो०—तोर कोस गृह मोर सब, सत्य बचन सुनु भ्रात ।
दसा भरत सुमिरत मोहि, निमिष कल्प-सम जात ॥८२॥
तापस बेष गात कृस, जपत निरंतर मोहि ।
देखउँ बेगि सो जतन करु, सखा निहोरउँ तोहि ॥ ८३ ॥
बीते अवधि जाउँ जौं, जियत न पावउँ बीर ।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु, पुनि पुनि पुलक सरीर ॥ ८४ ॥
करेहु कल्प भरि राज तुम्ह, मोहि सुमिरेहु मन माहिँ ।
पुनि मम धाम पाइहहु, जहाँ संत सब जाहिं ॥ ८५ ॥

सुनत बिभीषन बचन राम के । हरषि गहे पद कृपा-धाम के ।
बानर भालु सकल हरषाने । गहि प्रभु-पद गुन बिमल बखाने ।
बहुरि बिभीषन भवन सिधावा । मनि-गन-बसन बिमान भरावा ।
लेइ पुष्पक प्रभु आगे राखा । हँसि करि कृपा-सिंधु तब भाखा ।
चढ़ि बिमान सुनु सखा बिभीषन । गगन जाइ बरषहु पट भूषन ।

नभ पर जाइ बिभीषन तबहीं । बरषि दिये मनि अंबर सबहीं ।
जोइ जोइ मन भावइ सोइ लेहीं । मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं ।
हँसे राम श्री—अनुज—समेता । परम कौतुकी कृपा-निकेता ।
भालु कपिन्ह पट भूषन पाये । पहिरि पहिरि रघुपति पहिँ आये ।
नाना जिनिस देखि प्रभु कीसा । पुनि पुनि हँसत कोसलाधीसा ।
चितइ सबन्ह पर कीन्ही दाया । बोले मृदुल बचन रघुराया ।
तुम्हरे बल मैं रावन मारा । तिलक बिभीषन कहँ पुनि सारा ।
निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू । सुमिरेहु मोहि डरपेहु जनि काहू ।
बचन सुनत प्रेमाकुल बानर । जोरि पानि बोले सब सादर ।
प्रभु जोइ कहहु तुम्हहिँ सब सोहा । हमरें होत बचन सुनि मोहा ।
दीन जानि कपि किये सनाथा । तुम्ह त्रैलोक ईस रघुनाथा ।
सुनि प्रभु-बचन लाज हम मरहीं । मसक कतहुँ खग-पति-हित-करहीं ।
देखि राम-रुख बानर रीछा । प्रेम-मगन नहिँ गृह कै ईछा ।

दो०—प्रभु-प्रेरित कपि भालु सब, राम-रूप उर राखि ।
हरष बिषाद सहित चले, बिनय बिबिधि बिधि भाखि ॥ ८६ ॥
कपि-पति नील रीछ-पति, अंगद नल हनुमान ।
सहित बिभीषन अपर जे, जूथप कपि बलवान ॥ ८७ ॥
कहि न सकहिँ कछु प्रेम-बस, भरि भरि लोचन बारि ।
सनमुख चितवहिँ राम-तन, नयन-निमेष निवारि ॥ ८८ ॥

अतिसय प्रीति देखि रघुराई । लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई ।
मन महँ बिप्र-चरन सिर नावा । उत्तर दिसिहिँ बिमान चलावा ।
चलत बिमान कोलाहल होई । जय रघुबीर कहहिँ सब कोई ।
सिंहासनु अति उच्च मनोहर । श्री-समेत प्रभु बैठे ता पर ।
राजत राम-सहित भामिनी । मेरु-सृंग जनु घनु दामिनी ।

रुचिर-बिमान चलेउ अति आतुर । कीन्ही सुमन-वृष्टि हरषे सुर ।
परम सुखद चलि त्रिबिधि बयारी । सागर सर सरि निर्मल बारी ।
सगुन होहिं सुंदर चहुँ पासा । मन प्रसन्न निर्मल सुभ आसा ।
कह रघुबीर देखु रन सीता । लछिमन इहाँ हतेउ इँद्रजीता ।
हनूमान अंगद के मारे । रन महि परे निसाचर भारे ।
कुंभकरन रावन दोउ भाई । इहाँ हते सुर-मुनि-दुख-दाई ।
दो०—इहाँ सेतु जहँ बाँधेउँ, अरु थापेउँ सुख-धाम ।
सीता-सहित कृपा-निधि, संभुहि कीन्ह प्रनाम ॥८९॥
जहँ जहँ करुना-सिंधु बन, कीन्ह बास बिस्राम ।
सकल देखायं जानकिहिँ, कहे सबन्हि के नाम ॥ ९० ॥
सपदि बिमान तहाँ चलि आवा । दंडक-बन जहँ परम सुहावा ।
कुंभजादि मुनि-नायक नाना । गये राम सब के अस्थाना ।
सकल रिषिन्ह सन पाइ असीसा । चित्रकूट आयउ जगदीसा ।
तहँ करि मुनिन्ह केर संतोखा । चला बिमान तहाँ ते चोखा ।
बहुरि राम जानकिहि देखाई । जमुना कलि-मल-हरनि सुहाई ।
पुनि देखी सुरसरी पुनीता । राम कहा प्रनाम करु सीता ।
तीरथ-पति पुनि देखि पयागा । देखत जनम-कोटि-अघ भागा ।
देखु परम पावनि पुनि बेनी । हरनि सोक हरि-लोक-निसेनी ।
पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि । त्रिबिध-ताप-भव-रोग-नसावनि ।
दो०—सीता-सहित अवध कहँ, कीन्ह कृपाल प्रनाम ।
सजल नयन तन पुलकित, पुनि पुनि हरषत राम ॥९१॥
बहुरि त्रिबेनी आइ प्रभु, हरषित मज्जनु कीन्ह ।
कपिन्ह समेत बिप्रन कहँ, दान बिबिध बिधि दीन्ह ॥९२॥
प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई । धरि बटु-रूप अवधपुर जाई ।

भरतहिँ कुसल हमारि सुनायहु। समाचार लेइ तुम्ह चलि आयउ।
तुरत पवन-सुत गवनत भयऊ। तब प्रभु भरद्वाज पहिँ गयऊ।
नाना विधि मुनि-पूजा कीन्ही। अस्तुति करि पुनि आसिष दीन्ही।
मुनि-पद वंदि जुगल कर जोरी। चढ़ि विमान प्रभु चले बहोरी।
इहाँ निषाद सुना हरि आये। नाव नाव कहँ लोग बोलाये।
सुरसरि नाँघि जान जब आवा। उतरेउ तट-प्रभु-आयसु पावा।
तब सीता पूजी सुरसरी। बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी।
दीन्हि असीस हरषि मन गंगा। सुंदरि तव अहिवात अभंगा।
सुनत गुहा धायेउ प्रेमाकुल। आयउ निकट परम-सुख-संकुल।
प्रभुहि सहित बिलोकि वैदेही। परेउ अवनि तन सुधि नहिँ तेही।
प्रीति परम बिलोकि रघुराई। हरषि उठाइ लियो उर लाई।

छंद—लियो हृदय लाइ कृपा-निधान सुजान राय रमा-पती।
बैठारि परम समीप बूझी कुसल सो कर बानती।
अब कुसल पद-पंकज बिलोकि बिरंचि-शंकर-सेव्य जे।
सुख-धाम पूरन-काम राम नमामि राम नमामि ते।

—:०:—

उत्तर कांड ।

दो०—रहा एक दिन अवधि कर, अति आरत पुर-लोग ।
जहँ तहँ सोचहिँ नारि नर, कृस-तन राम-वियोग ॥ १ ॥
सगुन होहिँ सुंदर सकल, मन प्रसन्न सब केर ।
प्रभु-आगमन जनाव जनु, नगर रम्य चहुँ फेर ॥ २ ॥
कौसल्यादि मातु सब, मन अनंद अस होइ ।
आयउ प्रभु सिय-अनुज-युत, कहन चहत अब कोइ ॥३॥
भरत-नयन-भुज दच्छिन, फरकत बारहिँ बार ।
जानि सगुन मन हरष अति, लागे करन बिचार ॥ ४ ॥

रहेउ एक दिन अवधि अधारा । समुझत मन दुख भयउ अपारा ।
कारन कवन नाथ नहिँ आये । जानि कुटिल किधौं मोहि बिसराये ।
अहह धन्य लछिमन बड़ भागी । राम - पदार - विंदु - अनुरागी ।
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा । ता तें नाथ संग नहिँ लीन्हा ।
जौं करनी समुझहिँ प्रभु मोरी । नहिँ निस्तार कलप-सत-कोरी ।
जन-अवगुन प्रभु मान न काऊ । दीन-बंधु अति मृदुल सुभाऊ ।
मोरे जिय भरोस दृढ़ सोई । मिलिहहिँ राम सगुन सुभ होई ।
बीते अवधि रहहिँ जौं प्राना । अधम कवन जग मोहि समाना ।

दो०—राम-बिरह-सागर महँ, भरत मगन मन होत ।
बिप्र-रूप धरि पवन-सुत, आइ गयउ जनु पोत ॥ ५ ॥
बैठे देखि कुसासन, जटा-मुकुट कृस-गात ।
राम राम रघुपति जपत, स्रवत नयन जल-जात ॥ ६ ॥

देखत हनूमान अति हरषेउ । पुलक-गात लोचन-जल बरषेउ ।
मन महँ बहुत भाँति सुख मानी । बोलेउ स्रवन-सुधा-सम बानी ।

जासु बिरह सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन-गन-पाँती।
रघु-कुल-तिलक सु-जन-सुख-दाता। आयउ कुसल देव-मुनि-त्राता।
रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता-अनुज-सहित पुर आवत।
सुनत बचन बिसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाव पियूखा।
को तुम्ह तात कहाँ तें आये। मोहि परम प्रिय बचन सुनाये।
मारुत-सुत मैं कपि हनुमाना। नाम मोर सुनु कृपा-निधाना।
दीन-बंधु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर।
मिलत प्रेम नहिँ हृदय समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता।
कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहि राम पिरीते।
बार बार बूझी कुसलाता। तो कहँ देउँ काह सुनु भ्राता।
एहि संदेस-सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं।
नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु-चरित सुनावहु मोही।
तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघु-पति-गुन-गाथा।
कहु कपि कबहुँ कृपाल गुसाईं। सुमिरहिँ मोहि दास की नाईं।

छंद—निज दास ज्यों रघु-बंस-भूषन कबहुँ मम सुमिरन करयो।
सुनि भरत बचन बिनीत अति कपि पुलकि तन चरनन्हि परयो।
रघुबीर निज मुख जासु गुन-गन कहत अग-जग-नाथ जो।
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सद-गुन-सिंधु सो।

दो०—राम प्रान-प्रिय नाथ तुम्ह, सत्य बचन मम तात।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि, हरष न हृदय समात॥ ७॥

सो० भरत चरन सिरु नाइ, तुरित गयउ कपि राम पहिँ।
कही कुसल सब जाइ, हरषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि॥८॥

हरषि भरत कोसलपुर आये। समाचार सब गुरहिँ सुनाये।
पुनि मंदिर महँ बात जनाई। आवत नगर कुसल रघुराई।

सुनत सकल जननी उठि धाईं। कहि प्रभु-कुसल भरत समुझाईं।
समाचार पुर-बासिन्ह पाये। नर अरु नारि हरषि सब धाये।
दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसी-दल मंगल-मूला।
भरि भरि हेम-थार भामिनी। गावत चलीं सिंधुर-गामिनी।
जो जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं। बाल बृद्ध कहँ संग न लावहिं।
एक एकन्ह कहँ बूझहिं भाई। तुम्ह देखे दयाल रघुराई।
अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा कै खानी।
भई सरजू अति-निर्मल-नीरा। बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा।

दो०—हरषित गुरु परिजन अनुज, भू-सुर-बृंद-समेत।
चले भरत अति प्रेम मन, सनमुख कृपा-निकेत॥ ९॥
बहुतक चढ़ी अटारिन्ह, निरखहिं गगन बिमान।
देखि मधुर सुर हरषित, करहिं सुमंगल गान॥ १०॥
राका-ससि रघुपति पुर, सिंधु देखि हरषान।
बढ़ेउ कोलाहल करत जनु, नारि-तरंग-समान॥ ११॥

इहाँ भानु-कुल-कमल-दिवा-कर। कपिन्ह देखावत नगर मनोहर।
सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर यह देसा।
जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। बेद-पुरान-बिदित जग जाना।
अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ।
जनम-भूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि।
जा मज्जन तें बिनहिं प्रयासा। मम समीप पावहिं नर बासा।
अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुख-रासी।
हरषे सब कपि सुनि प्रभु-बानी। धन्य अवध जो राम बखानी।

दो०—आवत देखि लोग सब, कृपा-सिंधु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ, उतरेउ भूमि बिमान॥ १२॥

उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहिं, तुम्ह कुबेर पहिँ जाहु
प्रेरित राम चलेउ सो, हरष विरहु अति ताहु ॥ १३ ॥

आये भरत संग सब लोगा। कृस-तन श्री-रघु-बीर-वियोगा।
बामदेव बसिष्ठ मुनि-नायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक।
धाइ धरे गुरु-चरन-सरोरुह। अनुज-सहित अति-पुलक-तनोरुह।
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरे कुसल तुम्हारिहि दाया।
सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा। धरम-धुरं-धर रघु-कुल-नाथा।
गहे भरत पुनि प्रभु-पद-पंक-ज। नमत जिन्हहिं सुर मुनि शंकर अज।
परे भूमि नहिं उठत उठाये। बर करि कृपा-सिंधु उर लाये।
स्यामल-गात राम भये ठाढे। नव-राजीव-नयन जल बाढे।

छंद—राजीव-लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदय लगाइ अनुजहिं मिले प्रभु त्रि-भुवन-धनी।
प्रभु मिलत अनुजहिं सोह मो पहिं जाति नहिँ उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुखमा लही॥
बूझत कृपा-निधि कुसल भरतहिं बचन बेगि न आवई।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन तेँ भिन्न जान जो पावई।
अब कुसल कोसल-नाथ आरत जानि जन दरसन दियो।
बूड़त बिरह-बारीस कृपा-निधान मोहि कर गहि लियो॥

दो०—पुनि प्रभु हरषित सत्रुहन, भेंटे हृदय लगाइ।
लछिमनु भरत मिले तब, परम प्रेम दोउ भाइ॥१४॥

भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे। दुसह बिरह-संभव दुख मेटे।
सीता-चरन भरत सिरु नावा। अनुज-समेत परम सुख पावा।
प्रभु बिलोकि हरषे पुर-बासी। जनित बियोग बिपति सब नासी।

प्रेमातुर सब लोग निहारी । कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी ।
अमित रूप प्रगटे तेहि काला । जथा-जोग मिले सबहिं कृपाला ।
कृपा-दृष्टि रघुवीर बिलोकी । किये सकल नर नारि बिसोकी ।
छन महँ सबहिं मिले भगवाना । उमा मरम यह काहु न जाना ।
एहि बिधि सबहिं सुखी करि रामा । आगे चले सील-गुन-धामा ।
कौसल्यादि मातु सब धाईं । निरखि बच्छ जनु धेनु लवाईं ।

छंद—जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृह चरन बन परबस गईं ।
दिन-अंत पुर-रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं ।
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेंटी बचन मृदु बहु बिधि कहे ।
गइ बिषम बिपति बियोग-भव तिन्ह हरष सुख अगिनित लहे ।।

दो०—भेंटेउ तनय सुमित्रा, राम-चरन-रति जानि ।
रामहिं मिलत कैकई, हृदय बहुत सकुचानि ।।१५।।
लछिमन सब मातन्ह मिलि, हरषे आसिष पाइ ।
कैकइ कहँ पुनि पुनि मिले, मन कर छोभ न जाय ।।१६।।

सासुन्ह सबन्ह मिली बैदेही । चरननिह लागि हरष अति तेही ।
देहिं असीस बूझि कुसलाता । होहु अचल तुम्हार अहिवाता ।
सब रघु-पति-मुख-कमल बिलोकहिं । मंगल जानि नयन-जल रोकहिं ।
कनक-थार आरती उतारहिं । बार बार प्रभु-गात निहारहिं ।
नाना भाँति निछावरि करहीं । परमानंद हरष उर भरहीं ।
कौसल्या पुनि पुनि रघुवीरहिं । चितवति कृपा-सिंधु रन-धीरहिं ।
हृदय बिचारति बारहिं बारा । कवन भाँति लंकापति मारा ।
अति सुकुमार जुगल मेरे बारे । निसिचर सुभट महा-बल भारे ।

दो०—लछिमन अरु सीता-सहित, प्रभुहिं बिलोकति मात ।
परमानंद - मगन - मन, पुनि पुनि पुलकित गात ।।१७।।

लंका-पति कपीस नल नीला। जामवंत अंगद सुभ-सीला।
हनुमदादि सब बानर बीरा। धरे मनोहर मनुज-सरीरा।
भरत - सनेह - सील - व्रत - नेमा। सादर सब बरनहिं अति प्रेमा।
देखि नगर-बासिन्ह कै रीती। सकल सराहहिं प्रभु-पद-प्रीती।
पुनि रघुपति सब सखा बोलाये। मुनि-पद लागहु सकल सिखाये।
गुरु बसिष्ठ कुल-पूज्य हमारे। इन्ह की कृपा दनुज रन मारे।
ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भये समर-सागर कहँ बेरे।
मम हित लागि जनम इन्ह हारे। भरतहुँ तें मोहि अधिक पियारे।
सुनि प्रभु-बचन मगन सब भये। निमिष निमिष उपजत सुख नये।

दो०—कौसल्या के चरनन्हि, पुनि तिन्ह नायेउ माथ।
आसिष दीन्ही हरषि तुम्ह, प्रिय मम जिमि रघुनाथ ॥१८॥
सुमन-बृष्टि नभ संकुल, भवन चले सुख-कंद।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं, नगर - नारि-बर-बृंद ॥१९॥

कंचन-कलस बिचित्र सँवारे। सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे।
बंदनवार पताका केतू। सबन्हि बनाये मंगल-हेतू।
बीथी सकल सुगंध सिंचाई। गज-मनि रचि बहु चौक पुराई।
नाना भाँति सुमंगल साजे। हरषि नगर निसान बहु बाजे।
जहँ तहँ नारि निछावर करहीं। देहिं असीस हरष उर भरहीं।
कंचन-थार आरती नाना। जुवती सजे करहिं सुभ गाना।
करहिं आरती आरति-हर कै। रघु-कुल-कमल-बिपिन-दिन-कर कै।
पुर-सोभा - संपति - कल्याना। निगम सेष सारदा बखाना।
तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं। उमा तासु गुन नर किमि कहहीं।

दो०—नारि कुमुदिनी अवध सर, रघु-पति-बिरह दिनेस।
अस्त भये बिगसत भईं, निरखि राम राकेस ॥२०॥

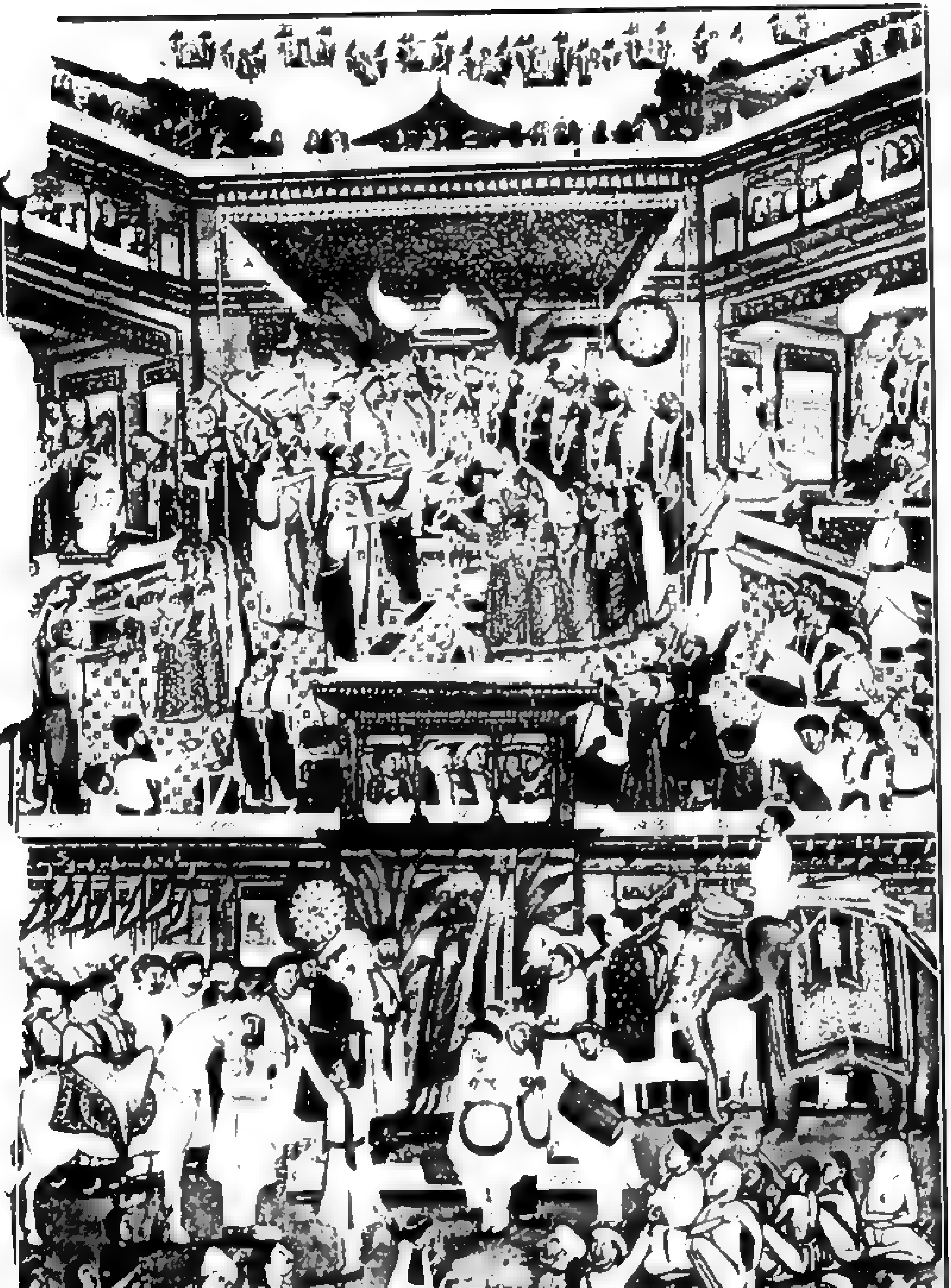
होहिं सगुन सुभ विविध बिधि, बाजहिं गगन निसान ।
पुर-नर-नारि सनाथ करि, भवन चले भगवान ॥२१॥
प्रभु जानी कैकई लजानी । प्रथम तासु गृह गये भवानी ।
ताहि प्रबोध बहुत सुख दीन्हा । पुनि निज भवन गवन हरि कीन्हा ।
कृपा-सिंधु जब मंदिर गये । पुर-नर-नारि सुखी सब भये ।
गुरु वसिष्ठ द्विज लिये बोलाई । आज सु-घरी सु-दिन सुभदाई ।
सब द्विज देहु हरषि अनुसासन । रामचंद्र बैठहिं सिंहासन ।
मुनि वसिष्ठ के बचन सुहाये । सुनत सकल बिप्रन्ह अति भाये ।
कहहिं बचन मृदु बिप्र अनेका । जग-अभिराम राम-अभिषेका ।
अब मुनि-वर बिलंबु नहिं कीजै । महाराज कहँ तिलक करीजै ।
दो०—तब मुनि कहेउ सुमंत सन, सुनत चलेउ हरषाइ ।
रथ अनेक बहु बाजि गज, तुरत सँवारेउ जाइ ॥२२॥
जहँ तहँ धावन पठइ पुनि, मंगल द्रव्य मँगाइ ।
हरष समेत वसिष्ठ पद, पुनि सिरु नायेउ आइ ॥२३॥
अवधपुरी अति रुचिर बनाई । देवन्ह सुमन-बृष्टि-झरि लाई ।
राम कहा सेवकन्ह बोलाई । प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई ।
सुनत बचन जहँ तहँ जन धाये । सुग्रीवादि तुरत अन्हवाये ।
पुनि करुना-निधि भरत हँकारे । निज कर राम जटा निरुवारे ।
अन्हवाये प्रभु तीनिउँ भाई । भगत-बछल कृपाल रघुराई ।
भरत-भाग्य प्रभु-कोमल-ताई । सेष कोटि सत सकहिं न गाई ।
पुनि निज जटा राम बिबराये । गुरु - अनुसासन माँगि नहाये ।
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे । अंग अनंग कोटि छबि छाजे ।
दो०—सासुन्ह सादर जानकिहि, मज्जन तुरत कराइ ।
दिव्य बसन बर भूषन, अँग अँग सजे बनाइ ॥२४॥

राम-बाम-दिसि सोभित, रमा-रूप गुन-खानि ।
देखि मातु सब हरषीं, जनम सुफल निज जानि ॥२५॥
सुनु खगेस तेहि अवसर, ब्रह्मा सिव मुनि-बृंद ।
चढ़ि बिमान आये सब, सुर देखन सुखकंद ॥२६॥

प्रभु बिलोक मुनि-मन अनुरागा । तुरत दिव्य सिंहासन माँगा ।
रबि-सम तेज सो बरनि न जाई । बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई ।
जनक - सुता - समेत रघुराई । पेखि प्रहरषे मुनि-समुदाई ।
बेद-मंत्र तब द्विजन्ह उचारे । नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे ।
प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा । पुनि सब बिप्रन्ह आयसु कीन्हा ।
सुत बिलोकि हरषीं महतारी । बार बार आरती उतारी ।
बिप्रन्ह दान बिबिध बिधि दीन्हे । जाचक सकल अजाचक कीन्हे ।
सिंहासन पर त्रि-भुवन-साईं । देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाईं ।

छंद—नभ दुंदुभी बाजहिं बिपुल गंधर्ब किन्नर गावहीं ।
नाचहिं अपछरा-बृंद परमानंद सुर मुनि पावहीं ।
भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते ।
गहे छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म सक्ति बिराजते ॥
श्री-सहित दिन-कर-बंस-भूषन काम बहु छबि सोहई ।
नव-अंबु-धर-बर-गात अंबर पीत मुनि-मन मोहई ।
मुकुटांगदादि बिचित्र भूषन अंग अंगिन्ह प्रति सजे ।
अंभोज-नयन बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंत जे ।

दो०—वह सोभा सु-समाज सुख, कहत न बनइ खगेस ।
बरनइ सारद सेष स्रुति, सो रस जान महेस ॥ २७ ॥
बैनतेय सुनु संभु तब, आये जहँ रघुबीर ।
बिनय करत गदगद गिरा, पूरित पुलक सरीर ॥ २८ ॥



राज-तिलक ।

छंद—जय राम रमा-रमनं समनं । भव-ताप-भयाकुल पाहि जनं ॥
अवधेस सुरेस रमेस बिभो । सरनागत माँगत पाहि प्रभो ॥
दस-सीस-बिनासन बीस भुजा । कृत दूरि महा-महि-भूरि-रुजा ॥
रजनी - चर - बृंद - पतंग रहे । सर-पावक-तेज प्रचंड दहे ॥
महि - मंडल - मंडन चारुतरं । धृत - सायक - चाप - निषंग-बरं ॥
मद मोह महा ममता रजनी । तम-पुंज दिवाकर-तेज-अनी ॥
मनजात किरात निपात किये । मृग लोग कुभोग सरेन हिये ॥
हति नाथ अनाथन्हि पाहि हरे । विषया-बन पाँवर भूलि परे ॥
बहु रोग बियोगन्हि लोग हये । भवदंघ्रि-निरादर के फल ये ॥
भव-सिंधु अगाध परे नर ते । पद-पंकज-प्रेम न जे करते ॥
अति दीन मलीन दुखी नितहीं । जिन्ह के पद-पंकज प्रीति नहीं ॥
अवलंब भवंत कथा जिन्ह के । प्रिय संत अनंत सदा तिन्ह के ॥
नहिं राग न लोभ न मान मदा । तिन्ह के सम वैभव वा बिपदा ॥
एहि ते तव सेवक होत मुदा । मुनि त्यागत जोग भरोस सदा ॥
करि प्रेम निरंतर नेम लियें । पद-पंकज सेवित सुद्ध हिये ॥
सम मानि निरादर आदरहीं । सब संत सुखी बिचरंति महीं ॥
मुनि-मानस-पंकज-भृंग भजे । रघुबीर महा रन धीर अजे ॥
तव नाम जपामि नमामि हरी । भव-रोग महा-मद-मान - अरी ॥
गुन - सील - कृपा - परमायतनं । प्रनमामि निरंतर श्री-रमनं ॥
रघुनंद निकंदय द्वंदघनं । महिपाल बिलोकय दीन जनं ॥

दो०—बार बार बर माँगउँ, हरषि देहु श्री-रंग ।
पद-सरोज अनपायनी, भगति सदा सत-संग ॥ २९ ॥
बरनि उमा-पति राम-गुन, हरषि गये कैलास ।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाये, सब बिधि सुख-प्रद बास ॥३०॥

दो०—ब्रह्मानंद मगन कपि, सब के प्रभु-पद-प्रीति ।
जात न जाने दिवस तिन्ह, गये मास षट बीति ॥ ३१ ॥

बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं । जिमि परद्रोह संत मन माहीं ।
तब रघुपति सब सखा बोलाये । आइ सबन्हि सादर सिर नाये ।
परम प्रीति समीप बैठारे । भरत-सुखद मृदु बचन उचारे ।
तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई । मुख पर केहि बिधि करउँ बड़ाई ।
ता तें मोहि तुम्ह अति प्रिय लागे । मम हित लागि भवन-सुख त्यागे ।
अनुज राज संपति बैदेही । देह गेह परिवार सनेही ।
सब मम प्रिय नहिं तुम्हहिं समाना । मृषा न कहउँ मोर यह बाना ।
सब के प्रिय सेवक यें नीती । मोरे अधिक दास पर प्रीती ।

दो०—अब गृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहि दृढ़ नेम ।
सदा सर्ब-गत सर्ब-हित, जानि करेहु अति प्रेम ॥ ३२ ॥

सुनि प्रभु-बचन मगन सब भये । को हम कहाँ बिसरि तन गये ।
एकटक रहे जोरि कर आगे । सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे ।
परम प्रेम तिन्ह कर प्रभु देखा । कहा बिबिध बिधि ज्ञान बिसेखा ।
प्रभु सनमुख कछु कहइ न पारहिं । पुनि पुनि चरन-सरोज निहारहिं ।
तब प्रभु भूषन बसन मँगाये । नाना रंग अनूप सुहाये ।
सुग्रीवहिँ प्रथमहिँ पहिराये । बसन भरत निज हाथ बनाये ।
प्रभु-प्रेरित लछिमन पहिराये । लंका-पति रघुपति मन भाये ।
अंगद बैठि रहा नहिँ डोला । प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला ।

दो०—जामवंत नीलादि सब, पहिराये रघु-नाथ ।
हिय धरि राम-रूप सब, चले नाइ पद माथ ॥ ३३ ॥
तब अंगद उठि नाइ सिरु, सजल नयन कर जोरि ।
अति बिनीत बोलेउ बचन, मनहुँ प्रेम-रस बोरि ॥ ३४ ॥

सुनु सर्वज्ञ कृपा - सुख - सिंधो। दीन - दया - कर आरत-बंधो।
मरती बार नाथ मोहि बाली। गयेउ तुम्हारेहिँ कोछे घाली।
अ - सरन - सरन बिरद-संभारी। मोहि जनि तजहु भगत-हितकारी।
मोरे तुम्ह प्रभु गुरु पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद-जल-जाता।
तुम्हइँ बिचारि कहहु नर-नाहा। प्रभु तजि भवन काजु मम काहा।
बालक ज्ञान - बुद्धि - बल - हीना। राखहु सरन जानि जन दीना।
नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। पद-पंक-ज बिलोकि भव तरिहउँ।
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही।

दो०—अंगद-बचन बिनीत सुनि, रघुपति करुना-सींव।
प्रभु उठाइ उर लायेउ, सजल-नयन-राजीव॥ ३५॥
निज उर-माल बसन मनि, बालि-तनय पहिराइ।
बिदा कीन्ह भयवान तब, बहु प्रकार समुझाइ॥ ३६॥

भरत - अनुज - सौमित्रि-समेता। पठवन चले भगत-कृत - चेता।
अंगद-हृदय प्रेम नहिँ थोरा। फिरि फिरि चितव राम की ओरा।
बार बार कर दंड-प्रनामा। मन अस रहन कहहिँ मोहि रामा।
राम बिलोकनि बोलनि चलनी। सुमिरि सुमिरि सोचत हँसि मिलनी।
प्रभु-रुख देखि बिनय बहु भाखी। चलेउ हृदय पद-पंक-ज राखी।
अति आदर सब कपि पहुँचाये। भाइन्ह सहित भरत पुनि आये।
तब सुग्रीवँ चरन गहि नाना। भाँति बिनय कीन्ही हनुमाना।
दिन दस करि रघु-पति-पद-सेवा। पुनि तब चरन देखिहउँ देवा।
पुन्य-पुंज तुम्ह पवन-कुमारा। सेवहु जाइ कृपा-आगारा।
अस कहि कपि सब चले तुरंता। अंगद कहइ सुनहु हनुमंता।

दो०—कहहु दंडवत प्रभु सन, तुम्हहिँ कहउँ कर जोरि।
बार बार रघुनायकहिँ, सुरति करायेहु मोरि॥ ३७॥

अस कहि चलेउ बालि-सुत, फिरि आयेउ हनुमंत।
तासु प्रीति प्रभु सन कही, मगन भये भगवंत॥ ३८॥
कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।
चित खगेस अस राम कर, समुझि परइ कहु काहि॥३९॥

पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा। दीन्हे भूषन बसन प्रसादा।
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू।
तुम्ह मम सखा भरत-सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता।
बचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरि लोचन बारी।
चरन-नलिन उर धरि गृह आवा। प्रभु-सुभाउ परिजनन्हि सुनावा।
रघुपति-चरित देखि पुर-बासी। पुनि पुनि कहहिँ धन्य सुख-रासी।
राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भये गये सब सोका।
बयरु न कर काहू सन कोई। राम-प्रताप विषमता खोई।

दो०—बरनास्रम निज निज धरम, निरत बेद-पथ लोग।
चलहिँ सदा पावहिँ सुख, नहिँ भय सोक न रोग॥ ४०॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम-राज नहिँ काहुहि व्यापा।
सब नर करहिँ परसपर प्रीती। चलहिँ स्वधर्म निरत स्रुति-रीती।
चारिहु चरन धरम जग माहीँ। पूरि रहा सपनेहु अघ नाहीँ।
राम - भगति - रत सब नर नारी। सकल परम गति के अधिकारी।
अल्प मृत्यु नहिँ कवनिउँ पीरा। सब सुंदर सब विरुज सरीरा।
नहिँ दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिँ कोउ अबुध न लच्छन-हीना।
सब निर्दंभ धर्म-रत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।
सब गुनज्ञ पंडित सब ज्ञानी। सब कृतज्ञ नहिँ कपट सयानी।

दो०—राम-राज नभगेस सुनु, सचराचर जग माहिँ।
काल कर्म सुभाव गुन, कृत दुख काहुहि नाहिँ॥४१॥

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला।
भुवन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू।
सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी।
सो महिमा खगेस जिन्ह जानी। फिरि एहि चरित तिन्हहुँ रति मानी।
सो जाने कर फल यह लीला। कहहिँ महा मुनि-बर दम-सीला।
राम-राज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा।
सब उदार सब पर-उपकारी। बिप्र-चरन-सेवक नर-नारी।
एक-नारि-व्रत-रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति-हित-कारी।

दो०—दंड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्त्तक नृत्य-समाज।
जितहु मनहिँ अस सुनिय जग, रामचंद्र के राज॥ ४२॥

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहि एक सँग गज पंचानन।
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परसपर प्रीति बढ़ाई।
कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा।
सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लेइ चलि मकरंदा।
लता बिटप माँगे मधु चवहीं। मन-भावतो धेनु पय स्रवहीं।
सस-संपन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृत-जुग कै करनी।
प्रगटी गिरिन्ह बिबिध मनि-खानी। जगदातमा भूप जग जानी।
सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वादु सुखकारी।
सागर निज मरजादा रहहीं। डारहिं रतन तटन्हि नर लहहीं।
सरसि-ज-संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस-दिसा-बिभागा।

दो०—बिधु महि पूर मयूखन्हि, रबि तप जेतनेहिं काज।
माँगे बारिद देहिं जल, रामचंद्र के राज॥ ४३॥
रमा-नाथ जहँ राजा, सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक-सुख-संपदा, रही अवध सब छाइ॥ ४४॥

जहँ तहँ नर रघु-पति-गुन गावहिं । बैठि परसपर इहइ सिखावहिं ।
भजहु प्रनत-प्रति-पालक रामहि । सोभा-सील-रूप - गुन - धामहि ।
जल-ज-बिलोचन स्यामल गातहिं । पलक नयन इव सेवक-त्रातहिं ।
धृत-सर-रुचिर - चाँप - तूनीरहिं । संत-कंज-बन रबि-रन-धीरहिं ।
काल-कराल-ब्याल - खग - राजहिं । नमत राम अकाम ममता जहिं ।
लोभ-मोह-मृग - जूथ-किरातहि । मनसि-ज-करि-हरि-जन-सुख-दातहिं ।
संसय-सोक-निबिड़-तम - भानुहिं । दनुज-गहन-घन-दहन - कृसानुहिं ।
जनक - सुता-समेत रघुबीरहिं । कस न भजहु भंजन भव-भीरहि ।
बहु-बासना-मसक-हिम - रासिहि । सदा एक-रस अज अबिनासिहि ।
मुनि-रंजन भंजन महि-भारहि । तुलसिदास के प्रभुहि उदारहि ।

दो०—एहि बिधि नगर-नारि-नर, करहि राम-गुन-गान ।
सानुकूल सब पर रहहिं, संतत कृपानिधान ॥ ४५ ॥

राम-कथा गिरजा मैं बरनी । कलि-मल-हरनि मनो-मल-हरनी ।
संसृति-रोग सजीवन मूरी । राम-कथा गावहिं स्रुति भूरी ।
अति हरि-कृपा जासु पर होई । पाउँ देहि एहि मारग सोई ।
मन-कामना-सिद्धि नर पावा । जो यह कथा कपट तजि गावा ।
कहहिं सुनहि अनुमोदन करहीं । ते भव-निधि गो-पद इव तरहीं ।
सुनि सुभ कथा हृदय अति भाई । गिरिजा बोली गिरा सोहाई ।

दो०—मैं कृतकृत्य भइउँ अब, तव प्रसाद बिस्वेस ।
राम-भगति दृढ़ उपजी, बीते सकल कलेस ॥ ४६ ॥

यह सुभ संभु-उमा-संबादा । सुख-संपादन समन बिषादा ।
भव-भंजन गंजन संदेहा । जन-रंजन सज्जन-प्रिय एहा ।
राम-उपासक जे जग माहीं । एहि सम प्रिय तिनके कछु नाहीं ।
रघु-पति-कृपा जथा-मति गावा । मैं यह पावन चरित सुहावा ।

एहि कलि-काल न साधन दूजा। जोग जज्ञ जप तप व्रत पूजा।
रामहिं सुमिरिय गाइय रामहि। संतत सुनिय राम-गुन-ग्रामहिं।
जासु पतित-पावन बड़ बाना। गावहिं कबि स्रुति संत पुराना।
ताहि भजहिं मन तजि कुटिलाई। राम भजे गति के नहिं पाई।

छंद—पाई न केहि गति पतित-पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना।
आभीर जवन किरात खस स्वपचादि अति अघ-रूप जे।
कहि नाम बारक तेऽपि पावन होहिं राम नमामि ते॥
रघु-वंस-भूषन-चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलि-मल मनो-मल धोइ बिनु स्रम राम-धाम सिधावहीं।
दोहा सु चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरहिं।
दारुन-अविद्या-पंच-जनित बिकार श्री-रघु-बर हरहिं॥
सुंदर सुजान कृपा-निधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अ-काम-हित निर्बान-प्रद सम आन को॥
जा की कृपा-लव-लेस तेँ मति-मंद तुलसीदासहूँ।
पायउ परम-बिस्राम राम-समान प्रभु नाहीं कहूँ॥

दो०—मो सम दीन न दीन-हित, तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघु-वंस-मनि, हरहु बिषम-भव भीर॥ ४७॥
कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुबंस निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम॥ ४८॥

—:०:—